वीरसिंह देव चरित

[सटीक]

श्याम सुन्दर द्विवेदी
लेक्चरर सेन्ट टॉमस इटर कालेज
शाहगंज, जौनपुर

प्रकाशक
मातृ-भाषा-मंदिर, दारागंज प्रयाग

प्रथमबार] २०१३ [मूल्य ४॥)

महाकवि केशवदास रचित

वीरसिंह देव चरित

प्रस्तावना

रचनाकाल :—इस ग्रन्थ को लिखना केशव ने बसत ऋतु के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, दिन बुधवार, संवत् १६६४ मे शुरू किया था।

२—'संवत् सोरह सै तैंसठा। बीति गए प्रगटे चौसठा॥
अनल नाम सवत्सर लग्यौ। भाग्यो दुख सब सुख जगमग्यो॥
ऋतु बसत है स्वच्छ विचार। सिद्धि जोग मिति वसु बुधवार॥
सुकुल पच्छ कवि केशवदास। कीनो "वीरचरित्र प्रकास"॥

केशव के अन्य ग्रन्थों के आधार पर उनकी आलोचना न करके वीरसिंह देव चरित ग्रन्थ के आधार पर आलोचना प्रस्तुत करना ठीक समझा। इसी हेतु वीरसिंह देव चरित पर विहगम दृष्टि डालकर उसे सक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। ग्रन्थ मे किन-किन विषयों पर प्रकाश पडता है इसे ही थोडे शब्दों में प्रस्तुत कर रहा हू।

जीवनी—केशव अपने जीवन के सम्बन्ध मे स्वयं कुछ भी कहना उचित नहीं समझते थे। इसीलिये उन्होंने कहीं पर भी अपने सम्बन्ध मे कुछ भो नहीं कहा और उन्हे इस बात का आश्चर्य है कि व्यक्ति अपने मुँह से अपनी बात कहते हुए लज्जा का अनुभव कैसे नहीं करते हैं।

अपनी आन न अपनी बात। अचरज यहै न कहत लजात

वीरसिंह देवचरित ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है कि रामशाह

तथा वीरसिंह देव दोनों ही केशव पर पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा रखते थे क्योंकि जिस समय रामशाह और वीरसिंह देव मे युद्ध छिड़ा, उस समय रामशाह की आज्ञा से केशव वीरसिंह के पास संधि प्रस्ताव लेकर गये थे और उसमें उन्हे आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई थी।

'मगद पायक प्रेम बनाय पठये केशव मिश्र बुलाय।
जो कछु करि आवहु सु प्रमान, यों कहि पठये राम सुजान।'

वीरसिंह

कासीसनि के तुम कुलदेव, जानत हौ सबही के भेव।
जानत भूत भविष्य विचार, वर्तमान को समुझत सार।
जिहि मग होय दुहुन को भलो, तेहि मग होंहि चलावौ चलौ।

केशव

यह सुनि केशवदास विचारि, बात कही सुनिये सुखकारि।
नृपति मुकुट मनि मधुकर साहि, तिनके सुत द्वै दिन दुख दारि।
दुहु भांति सुख के फर फरे, परमेश्वर तुम राजा करे।
तुम नरहरि नृप कीने नाउ, कहौ कौन पर मेटे जाउ।
हैं द्वै बाट भलो अनभली, चलिबौ कुसल कौन को गली।
बाईं एक दाहिनी ओर सुखद दाहिनी बांई घोर।

वीरसिंह

वीरसिंह तजि बोले मौन, कौन दाहिनी बाईं कौन।

केशव

सकल बुद्धि तेरे नरनाथ, द्रव बल दीरघ देख्यौ साथ।
देह दाम बल दीसहि घनै, धर्म कर्म बल गुन आपनै।
सोधि सील बल दीनो ईस, सकल साहि बल तेरे सीस।
तुमहि मित्र अकपट बलवन्त, जुद्ध रिद्धि बल अरु क्रमवन्त।

इनके रन मे एक न आज कीने चित्त जुद्ध को साज।
जुद्ध परे ते जानि न परै, को जानै को हारै मरै।
इत को उत को दल दल मँघरै, तुमको दुहू भाँति घटिपरै
उन आगे भुवपाल अजीत, सो जूझै जूझै इन्द्रजीत।
इन्द्रजीत बिन राजा मरै राजा बिन पुर जौहर करै।
पुर में ब्राह्मन बसत अपार, कीजै राज जु परै विचार।
यह मैं बाट बताई बाम, महा विषम जाके परिनाम।

भैया राजा ब्राह्मनि मारे यह फल होय।
स्वारथ परमारथ मिटै बुरो कहै सब कोय।

सुनिये बाट दच्छ दाहिनी, जो दिन दुःसह दुःख दाहिनी।
इक पुरिखा अरु राजा वृद्ध, दूहूं दीन दीरघ परसिद्ध।
नैन विहीन रोग सयुक्त, जोवन नाहीं जेठो पुत्र।
ताके द्रोह बड़ाई कौन, सुख दैके बैठारो भौन।
सेवा कै सुख दे सुखदानि, पांव पखा।रि आपने पानि।
भोजन कीजौ तिनके साथ, टारौ चौर आपने हाथ।
पूजा यों कीजे नरदेव, जो कीजे श्रीपति की सेव।
जौ लगि राम माहि जग जियै, बनिहै राज सेव ही कियै।
पीछे है सब तुमहो लाज, लीबो पद, अन, माज समाज।
निपटहि बालक भारत साहि, तिन तन कृपा दृग चाहि।
भारत साहि राउ भूपाल, उग्रसेन सब बुद्धि बिसाल।
इनको तुम्हैं सुनौ नरनाथ, राजा सौंपे अपने हाथ।
तब तुम जानौ ज्यों त्यों करौ, राज ताज अपने सिर धरौ।
अपने कुल की कीरति रलो, यहई बाट दाहिनी भलो।

वीरसिंह

यह सुनि सुख पायौ नरनाथ, कह्रा आपन जिय की गाथ।
राजहि मोहि धरौ इक ठौर, विविध विचारनि की तजि दौर।

मैं मानी, जो मानै राज, सफल होहिं सबही के काज, ।

विषय :—ग्रन्थ को रोचक तथा विश्वस्त ग्रन्थ बनाने के लिये लेखक ने दान लोभ और ओड़छा नगर की विंध्यवासिनी देवी के संवाद के रूप मे किया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे तैंतीस प्रकाश हैं।

प्रकाश १, २ मे दान और लोभ ने अपने-अपने महत्व का वर्णन किया है। द्वितीय प्रकाश के अंत मे ओड़छा नरेशों की वशावली वर्णित है प्रकाश ३ से १४ तक मे ओड़छा नरेश मधुकर शाह के पुत्रों का विशद वर्णन है और वे आपस मे किस प्रकार अपनी शक्ति बाढने के लिए शत्रुता रखते थे, इसका सजीव वर्णन केशव करने मे सफल हुए हैं।

अकबर और वीरसिंह के बीच मे जो अनेक युद्ध हुए हैं उनका वर्णन अन्त मे अकबर की मृत्यु और उसके सिंहासनाधिस्थ जहाँगीर का कृपापात्र वीरसिंह का होना वर्णित है। यह वर्णन इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

प्रकाश १५ से ३३ तक मे वीरसिंह के ऐश्वर्य और तेज, नगर शोभा, सरोवर, वाटिका आदि का वर्णन है। ग्रन्थ के अंतिम प्रकाशों मे कवि ने राजा के कर्तव्य तथा राजनीति का वर्णन किया है।

जन्मस्थान प्रेम :— मनुष्य जिस स्थान पर जन्म लेता है उस स्थान से उसे स्वाभाविक प्रेम होता है केशव को भी अपने स्थान की सभी वस्तुये प्रिय थीं। केशव ने वेतवा नदी को गंगा और यमुना से कम महत्व नहीं दिया है। गंगा यमुना मे स्नान करने पर पापों

का विनाश होता है और बेतवा नदी को देखने मात्र से तनताप नष्ट हो जाता है और स्नान कर लेने से हृदय में ज्ञानोदय हो जाता है।

मित्र :—केशव के सबसे बड़े मित्र महेशदास दुबे उपनाम बीरबल थे। केशव ने बीरबल को वीरसिंह देव चरित में "मोरेहित" विशषण से सम्बोधित किया है।

समय-समय पर केशव बीरबल जी से मुलाकात करने आया करते थे। बीरबल के कारण से अकबर के दरबार में आने जाने से कोई केशव को रोकना नहीं था।

केशवदास टोडरमल से भी भली प्रकार परिचित थे। टोडरमल को केशव अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। यह बात दान लोभ के के वार्तालाप से स्पष्ट होती है —

> 'टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सोयो।
> मोरे हित बरबीर मरे दुख दीननि रोयो'।
> 'योंही कह्यो जु बीरबर माँगु जु मन मे होय'।
> माँग्यो तब दरबार मे मोहिं न रोके कोय॥१९॥

केशव का ज्ञान

संगीत :—नृत्य के अनेक भेद है। वीरसिंहदेव चरित नाद ग्राम स्वर, ताल, लय, गमक आदि संगीत शास्त्र सम्बन्धी विशेषताये तथा अडलि, टेकी, ढल त ग हुरमति आदि नृत्य के भेदों का वर्णन किया है।

'प्रभु आगे कुसुमाजलि छाड़ि। नृत्यति नृत्य कलनि कौ माड़ि॥
नाद ग्राम स्वर पाद विधि ताल। गर्भविविधि लय आलति काल॥
जानति गुन गमकनि बड़ भाग। जो रति कला मूरछना राग॥

जोरति अरु वचन अकासहि चालि । तीवट उर पति रय अडाल ॥
राग डाट अनुरागत गाल । शब्द चालि जानै सुप ताल ॥
ढेकी उलथा आलम डिंड । हुरमति संकति पटरी डिंड ॥
तिनकी भ्रमी देखि मति धीर । सीरत मिस सत चक्र समीर' ॥

राजनीति :—केशव के अनुसार राजधर्म यह है :—

अविचारी दड़न संचरै । मंत्र न कहू प्रकाशित करै ॥
लोभी निधन न सौंपिय जीति । अपकारिनि सों करै न प्रीति ॥
लोभ मोह मद तै जौ करै । जग तब करता कौ घटि परै' ॥

धर्मशास्त्र :—वीरसिंह देव चरित के २७वें प्रकाश मे केशव ने अनेक भेद गिनाये हैं। सात्विक दान के संबध मे केशव का विचार है :—

'आपु न देय देय जुग दान । तासौं कहियै राजसुदान ।
बिन श्रद्धा अरु वे॰ विधान । दान देहि ते तामस दान ॥
तीन्यो तीनि तीनि अनुसार । उत्तम मध्यम अधम विचार ।
उत्तम द्विज बर दीजै जाइ । मध्यम निज घर देह बुलाइ ॥
मागै दीजे अधम सुदान । सेवा कौ सब निष्फल जान' ।

अश्व ज्ञान :—वीरसिंह देव चरित के १७वे प्रकाश मे केशव ने हयशाला का वर्णन किया। इसी अवसर पर केशव ने घोड़ों के गुणों और दुर्गुणों का विशद वर्णन किया है। उदाहरण के लिये :—

'रात औठ जौगरी हीन । राती जीभ सुगधनि लीन ।
राती तरवा कोमल खाल । ऐसो घोरो सुभ सब काल' ॥[४]

रस विवेचन :—वीरसिंह देव चरित मे वीररस ही प्रमुख है। शृंगार रस गौण रूप मे नखशिख के वर्णन के प्रसग पर किया है। चेत्रपाल अकबर की सेना से मुठभेड़ करने मे असफल रहा है। इसलिये कुमार भूपाल राय चेत्रपाल से कहता है :—

'मीत करहि जनि मीति वंस रनजीति हमारो।
व्रतधारी जस अमल ताहि अब करो न कारो।
राजनि के कुल राज कहा फिरि फिरि अवतरियौ।
अब तब जर कब करन कहत अब ही किनि मरियौ।
सुर सरज मंडलभेदि ज्यों विना गये से हरि सरन।
सब सूरनि मडल भेदि त्यौं रामदेव देरैं सरन'॥

रौद्ररस :—का वर्णन बड़ा ही सुन्दर वीरसिंह देवचरित में केशव ने किया है। वीरसिंह की सेना युद्ध करने के लिए चली है। उसके चलने से संसार भर में खलबली मच गयी है।

'भूतल सकल अभितर्ह्व गयो। लोक लोक कोलाहल भयो।
गाजि उठे दिग्गज तिहि काल। संकित सकल अंक दिगपाल।
रौर परी सुरपुरी अपार। गाढे सुरपति चित्त विचार।
कल्पवृक्ष गज बाजि समेत। सौंपे सुरगुरु को इहि हेत।
धर्म राज के धक पक भई। नंदनीति कुंभज को दई।
चिंता लग्न वग्न उर गुनी। तबही उतरि गई वारनी॥

वीभत्स रस :—ओड़छा मे युद्ध समाप्त हो जाने के बाद क्या अवस्था हो गयी थी।

'अति भरी राजत रन थली। जुझि परे तहं हय गय बली।
खण्डनि खण्ड लसैं गज कुम्भ। श्रोनित भर भभकन्त भसुण्ड।
X × ×
घन घाइनि घाइल धर परैं। जोगनि जोरि जट सिर धरैं।
अचल मुख पोंछति जगमगी। षण्ठ श्रोन पिय मारग लगी॥

प्रकृति वर्णन :—केशव के अधिकांश प्रकृति वर्णन परम्परा युक्त हैं। किन्तु कुछ वर्णनों मे केशव ने बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा की है। शाब्दिक चित्र खींचने मे केशव को पूर्ण सफलता प्राप्त हुयी है।

गरजत व्याजनि बजै निसान। जङ्गपात निर्वात निधान।
इन्द्र धनुष घन मञ्जल धार। चातक मोर सुभट किलकार।
सद्योतन को विपदा भई। इन्द्रवधू घर घरनिहि दई"॥

युद्ध वर्णन :—ऐसा लगता है केशव ने युद्धों को बड़े ही निकट से देखा था। इसीलिए युद्धों का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है।

'जंगम जीवन को जल राइ। उमगि चल्यो जनु कालहि पाइ।
देस देस के राजा घनै। मुगल पठाननि कौ को गनै।
जहाँ तहाँ गज गाजत घनै। पुरवाई के जन घन बनै।

× × ×

या रङ्ग एक चलेई जात। एक देखिए पीवत खात।
उलहत ऊँट एक देखिये। लादत् माजु एक पेखिए।
एक तंबू दियो गिराय। रसत उठावत एक बनाइ।
बनिक चलत इक लादि अपार। एकनि के बैठे बाजार।
एल मे सबको चित्त भुलाइ। कूच मुकाम न जान्यौ जाइ"॥

भाषा :—वीरसिंह देव चरित में केशव ने बुन्देलखण्ड के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। स्यों, ममदों, भांड्यों, थोक, गौरमदाइन, आनिवी, जानिवी आदि शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। सच तो यह है केशव की भाषा को बुन्देलखण्डी मिश्रित ब्रजभाषा कहना चाहिये।

कुछ स्थानों पर अवधी के शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा कि अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा वीरसिंह देवचरित में अवधी के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं।

'मैं तरी बलि बधु बधायो बावन यह ठें'।
'यहै मुक्ति जग जाहिय'।

अरबी फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

'सोवहिं सातहु सिंधु सात हज्जार रसातल'।

'हौ गरीब तुम प्रगट हो सदा गरीब निवाज'।

'हजरत सों जो मिलिहै आज'।

'साहि सलेम कियो फरमान'।

'हमसै दीनन दीनी दादि'।

'करौ नवाजसु वाको जाइ'।

केशव ने कुछ अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। आज ये शब्द प्राप्त नहीं होते हैं। इस प्रकार के शब्द वीरसिंह देव चरित में अधिक है। बिवूचे, उनमान, औसिला, साथी आदि ऐसे शब्द हैं जो कि आज प्रयुक्त नहीं होते है।

'बहुत बिवूचे तांसे बने'।
'बात कहहि अपने उनमान'।
'कहि धौं कछू औसिलौ भयो।
दस नगर साथर गढ़ ग्रामा'।
फूल्यो अङ्ग न समाय।

अलंकार :—वीरसिंह देव ने प्रयाग में जो हाथी का दान किया है उसका वर्णन उत्प्रेक्षा अलंकार की सहायता से किया है, किन्तु हाथी की उपमा तुलसी वृक्ष से देना उपहासास्पद हो गया है।

'जब गज गंगाजल महं गयो। बहुत भांति करि सोभित भयो।
स्वेत कुसुम चौसर मय स्वच्छ। सोहत तुलसी कैसो वृच्छ'।

एक स्थान पर वर्षा के वर्णन के प्रसंग पर उपमा अनुसूया से की है, जिसका कोई साम्य नहीं है।

'अनुसूया सी सुनौ सुदेस। चारु चन्द्रमा गर्व सुवेस।
पादप पति सो दल देखियो। स्वग सामुहो गनि लेखियो।

× ×

द्रुपद सुता कैसो द्रुति धरे। भोल भूरि भावनि अनुसरे" ॥

किन्तु कुछ वर्णन उत्प्रेक्षा अलकार के बड़े ही सजीव है। अकबर अबुलफज़ल की मृत्यु का समाचार पाकर रो पड़ा। उसके नेत्रों से प्रवाहित अश्रुधारा को केशव के रहटघरी कहा है।

'भरि भरि रीति रीति रीति रीति भरे पुनि।
रहट घरी सी आँख माहि अकबर की'॥

अकबर से अश्रुपूर्ण नेत्रों के लिये केशव ने लिखा है।

'चचल लोचन जल झलमले।
पवन पाइ जनु सरसिज हले।

विचारधारा

केशव के अनुसार राजा सत्यवादी तथा धर्मात्मा होना चाहिये।

२—'राज चाहिये साचौ सूर। सत्य सुसकल धर्म को मूर।
जो सूरो तौ सबै डराइ। साचे को सब जग पतियाइ।
साचौ सूरौ दाता होय। जग मे सुजस जपे सब कोइ'।

राजा को चाहिये की वह मंत्री और मित्रों के दोषों को हृदय मे ग्रहण न करें। मूर्ख व्यक्ति को मंत्री, पुरोहित, सभासद ज्योतिषी :दूत न बनाना चाहिये। इसको जो राजा ध्यान मे नहीं रखता उसका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

१—मंत्री मित्र दोष उर धरै। मत्री मित्र जु मूरख करै।
मत्री मित्र सभासद सुनौ। प्रोहित बैद जोतिसी गुनौ।
लेखक दूत स्वार प्रतिहार। सौंपि सुकृत जाहि भंडार।
इतने लोगनि मूरख करै। सो राजा चिरु राज न करै।
जाको मतो दुरयो नहि रहै। खल प्रिय सुरापान मग्नहै"।

राजा को चाहिये धन धर्म का उपार्जन करना चाहिये और धन का व्यय धर्म के लिये करना चाहिये।

२—'उपजावें धन धर्म प्रकार। ताको रक्षा करै अपार।
धन बहु भाँति बढ़ावै राज। धन बाढ़े सबही कौ काज।
ताकौ खरचै धर्म निमित्त। प्रति दिन दीजै विप्र निमित्त'।

राजा को चाहिये की वह सज्जन को पदवी दे और असज्जन को दण्ड दे।

३—'अपनै अधिकारिनि की राज। चोरन ते समुझै सब काज।
साधु होय तौ पदवी देइ। जानि असाधु दंड को देइ'।

प्रजा में पाप की वृद्धि रोकने के लिये धर्मदण्ड को प्रस्तारित करें।

'प्रजा पाप तें राजा जाय। राज जाय तो प्रजा नसाय।
अन्याई ठग निकट निवारि। सब तैं राखहि प्रजा विचारि'।

५—'राजा सबको दंडिहि करै। जो जन पाइ गुपेंडे धरै।
नाती गोती कछु नहि गनै। प्रीतम सगौ न छोडत बनै।
....

ब्राह्मण मात पिता परिहरै। गुरु जन को नृप दंडन धरै।
रोगी दीन अनाथ जु होय। अतिथिहि राजा हनै न कोय।
इतने जानि परै अपराध। वृत्ति हरै निकारै साधु'।

सेवक, भर्तृमी, भिक्षुक, साहोदर वशिष्य आदि यदि अपराध की क्षमा याचना करे तो उनका वध नहीं करना चाहिये।

१—'मचला दगाराज बहुभाति। चेरे बैरी सेवक जानि।
भिक्षुक रिनिया थानेदार। अपराधी अधिकारी ज्वार।
जे सुत सोदर शिष्य अपार। प्रजा चार अरु रत परदार।
ये सिख देत भरैं जो लाज। हत्या तिनकी नाहिन राज'।

बीरसिंह देव-चरित

शिखावान कर कलित जलज अच्छत सिर सोहै।
हरि चरनोदक बृन्द धुन्द दुति अति मन मोहै॥
अंग विभूति विभाति सहित गनपति सुखदायक।
वृष वाहन संग्राम-सिधि-संजुत सब लायक॥
उर चतुर चारु चकी बसतु संग कुमार हर मार मति।
जय शंकर शंका हरन भव पारवती पति सिद्ध गति॥१॥

विष्णु जी के शिर पर चोटी, सुन्दर हाथों में कमल और शिर के ऊपर अच्छत शोभा दे रहे हैं। गणपति ने अपने शरीर पर विभूति लगा रखी है, वह शोभा दे रही है। सब प्रकार से योग्य और संग्राम में सिद्धता प्राप्त किए हुए शिव (वृषवाहन) जी हैं। शिव जी के हृदय में चक्र धारण करने वाले (चक्री) विष्णु भगवान निवास करते हैं और हर को मारने वाले कार्तिकेय (कुमार) साथ रहते हैं। शंकाओं का विनाश करने वाले, पार्वती के पति शंकर भगवान की जय हो॥१॥

एक राजा मानसिंह कछुवाहो केसौदास,
जिहिवर वारिधि के उदर विदारे हैं।
दूसरे अमरसिंह राना सिसौदिया आजु,
जासों अरिराज गजराज हिय हारे हैं॥
तीसरे बुंदेला राजा बीरसिंह ओड़छे कौ
जाके दुख दुसह जलाल दीन जारे हैं।

निज कुल-पालिवे को अखिल घालिवे को,
तीन्यौ नरसिंह नरसिंह जू सुधारे हैं ॥२॥

केशव ने मानसिंह, अमरसिंह और वीरसिंह के शौर्य का वर्णन किया है। कुशवाहा वंशी मानसिंह ने समुद्र के हृदय तक को चार डाला है। महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह सिसोदिया से शत्रु और सिंह दोनों ने हार मान ली है। ओड़छा नरेश वीर सिंह के दुसह दुख में जलालदीन स्वत जल रहा है। अपने वश का पालन करने के लिए और शत्रु वश का विनाश करने केलिए तीनो वीरो ने नरसिंह का रूप धारण किया है ॥२॥

वीरसिंह नृपसिंह मही महँ महाराज मनि।
गहरवार कुल-कलस ईस अंसावतारै गनि॥
जहांगीर पुर प्रगट दीह दुर्जन दिन दूपन।
नदी वेतवै तीर बसत भव भूतल भूपन॥
तिहि पुर प्रसिद्ध केसव सुमति विप्रवंस अवतंस गुनि।
बुधि वल प्रवन्ध तिनि वरनियो वीर चरित्र विचित्र सुनि ॥३॥

राजाओं मे मणि वीरसिंह पृथ्वी पर नृपसिंह है, जो कि गहरवार वंश म ईश्वर के अश के रूप में उत्पन्न हुआ है। वीरसिंह का जन्म जहागीर पुर में हुआ, जो कि वेतवा नदी के किनारे बसा हुआ है और सभी ओर जो कि समस्त पृथ्वी का आभूपण है। उसी ग्राम में प्रसिद्ध केशव ने ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया। उन्हीं केशव ने अपने बुद्धिबल से वीरसिंह के शौर्य को सुनकर वर्णन किया ॥३॥

चौपाई

सवतु सोरह से तैंसठा। बीति गए प्रगटे चौंसठा ॥
अनल नाम सवत्सर लग्यौ। भाग्यौ दुख सब सुख जग मग्यौ ॥४॥

वीरसिंह देव को रचना केशव ने संवत १६६३ के व्यतीत होने पर और १६६४ के आरम्भ पर की। अनल नाम का सम्वत्सर लग चुका था,

जिसके कारण मे समस्त दुख भाग चुके थे और सुख का उदय हुआ था ॥४॥

रितु बसंत, है स्वच्छ विचार।
सिद्धि जोग मिति वसु बुद्धवार।
सुकुल पच्छ कवि केसवदास।
कीनौ वीर चरित्र प्रकास ॥५॥

बसन्त ऋतु होने के कारण स्वच्छ विचार उदित हो रहे थे। सिद्धि को प्राप्त करा देने वाली अष्टमी तिथि, दिन बुधवार और शुक्ल पक्ष के अवसर पर केशव ने वीरसिंह देव के चरित्र पर विचार किया ॥५॥

दोहा

नवरस मय सब धर्म मय राजनीति मय मानि।
वीर चरित्र विचित्र किय केसव दास प्रमान ॥६॥

केशवदास ने वीरसिंह के विचित्र चरित्र का वर्णन किया है। वीरसिंह नवो रसों—शृगार, हास्य, करुणा रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत एवं शान्त—मे युक्त हैं और धर्मयुक्त राजनीति का व्यवहार करने वाला है ॥६॥

दच्छिन दिसि सरिता नर्मदा। थिर चर जीवनि की सर्मदा ॥
पद पद हरि बासा जग मगै। स्वच्छ पच्छ पच्छासी लगै ॥७॥

दक्षिण दिशा मे नर्मदा नदी बहती रहती है जो कि जीवन को सब प्रकार से सुख देने वाली (नर्मदा) है। उस नर्मदा नदी के किनारे बने हुए मन्दिर पग-पग पर उसमें झलमलाते हैं और सफेद हंस पक्षी से लगते हैं ॥७॥

जदपि मतंगिनि लौं मद मती। तऊ देव देवनि मे सती ॥
जदपि सुरा सुर बंदित पाइ। तदपि दीन जन कैसी भाइ ॥८॥

यद्यपि नर्मदा नदी हाथी की भाँति अपने मद में मस्त रहती है, फिर भी देवों के साथ में सती की भाँति रहती है। यद्यपि इसकी वन्दना सुर

असुर दोनों ही करते हैं, किन्तु दीन जनों की वह माँ के समान है ॥८॥

जद्यपि निपट कुटिल गति आप।
देति सुद्ध गति हवि अति पाप॥
आपुन अधो अधोगति चलै।
पतितनि कौ ऊरध फल फलै ॥६॥

यद्यपि वह स्वतः कुटिल गति की है। अर्थात टेढे-मेढे बहती है, किन्तु दूसरे के पापों का विनाश करके शुद्ध गति को देती है। स्वतः तो नीचे की ओर गिरता हुई चलती है अर्थात ढाल की ओर बहती है, किन्तु पतित लोगों को मोक्ष फल देती है ॥६॥

सिव पुत्री पश्चिम दिसि बहै। सकल लोक दुख देखत दहैं॥
एक समैवा सरिता तीर। भई सुर असुर नर की भीर ॥१०॥

पश्चिम दिशा में शिवपुत्री बहती है, जिसके देखने मात्र से ही सारे दुःख भाग जाते हैं। उस नदी के किनारे एक बार सुर, असुर और नरों की भीड़ इकट्ठा हुई ॥१०॥

एकै होम करि रनान। देत देखियत षोडस दान॥
एकनि केशव लगी समाधि। पूजा करत वेद विधि साधि ॥११॥

कोई होम कर रहा है और कोई स्नान। कोई षोडस दान (श्राद्ध आदि के अवसर पर देय भूमि, आसन, गाय, सोना आदि) दे रहा है। कोई वहा पर समाधि लगाये हुए बैठा है और कोई वेदों द्वारा बनाई गई रीतियों से पूजा कर रहा है।११॥

आसन असन वसन इक देत।
भूषन भाजन बसन समेत॥
फलित फलाफल बाग सुवेष।
एक देत रस अन्न असेष ॥१२॥

कोई आसन, और रहने के निमित्त मकान, भूषण, पात्र तथा

वस्त्र दे रहा है। फल फूलों से बाग लदे हुए हैं। कोई सब को अन्नदान रहा है ॥१२॥

एक देत सुरभी जुग मुहीं। बछरनि संग सुगंधनि छुहीं।
एक देत पुरषन को नारि। एक पुरुष सुंदरिनि सँवारि ॥१३॥

कोई उस गाय (जुगमुहा) का दान कर रहा है, जो कि बच्चा दे रही है (ऐसी गाय का दान करने से बहुत अधिक पुण्य होता है।) कोई पुरुषों को नारि दे रहे हैं अर्थात विवाह कर रहे हैं और कोई स्त्री का शृंगार कर रहा है ॥१३॥

तुला आदि सब दान प्रयोग। जहं तहं देत देखियत लोग ॥
तन मन पूरन उपज्यो छोभ। देखि दान की महिमा लोभ ॥१४॥

यत्र-तत्र लोग तुलादान (अपने को किसी चीज के बराबर तौल लेना और फिर उस तोली हुई वस्तु को दान में देना) तथा अन्य:दान दे रहे हैं। दान की इस प्रकार की महिमा को देखकर लोभ का शरीर और मन अत्यधिक क्षुब्ध हो उठा ॥१४॥

सहि न सक्यो सब विधि अवदात।
लाग्यौ कहन दान सौं बात ॥१५॥

जब लोभ दान के गुणों को सहन न कर सका तब उससे कहने लगा ॥१५॥

लोभ उवाच

दान बिगारयौ तैं संसार। भूलि गयौ तोकौं करतार ॥
विद्यमान जे देखत मोहिं। कहा करै जग पूजन तोहिं ॥१६॥

हे दान! तूने कर्ता (ईश्वर) को भूलकर सारे संसार को बिगाड़ दिया। संसार जब मुझे अपने पास देखता है तब तेरी उपासना क्यों करे ?१६।

छपद

हौं धरनी धर धन्य धीरु हौं धनुक धुरन्धर।
हौं इक सूर सुजान एक रस सदा सिद्ध कर॥
अद्भुत अमर अनादि अचल अचला अनन्त गति।
हौं उत्तिम हौं उच्च उदित हौं अति उदिम मति॥
कह केसर दास निवास निधि मो समान अब और नहिं।
सुनु दान, दीन दिन मान तू हौं समर्थ संसार महिं॥१७॥

मैं समस्त पृथ्वी को धारण करने वाला हूँ और साथ ही धैर्य धारण करने वाला भी हूँ और धनुर्विद्या में निपुण हूँ। एक चतुर सूर (योद्धा) हूँ और एक रस में मैंने सिद्धि प्राप्त कर ली है। इस पृथ्वी के ऊपर मैं अद्भुत अमर, अनादि, स्थिर और अनन्त गति वाला हूँ। अति उत्तम, अति उच्च एवं उदय प्राप्त तथा उद्यमी मति वाला मैं हूँ। इस संसार में मेरे समान और कोई निधि नहीं है। हे दान ! तू अच्छी प्रकार से सुन ले कि इस संसार में तू दान दिनमान है और मैं संसार में सब प्रकार से समर्थ हूँ॥१७॥

दान उवाच

लोभ, समुझ अपनौ व्योहार। जानतु हैं सगरौ संसार॥
अपने आनन अपनी बात। अचरजु यहै न कहत लजात॥१८॥

हे लोभ ! तू अपने व्यवहार को अच्छा प्रकार से समझ ले। सारा संसार तुझे भली प्रकार से जानता है। अपने मुख से तू अपनी बात कहता है। मुझे तो आश्चर्य यह है कि तू लज्जा का अनुभव क्यों नहीं करता है॥१८॥

सुर नर सुनत चहूँ दिसि घनैं। उत्तरु मोहि दियैं हीं बनैं॥
मत चल ठग ठढेर बट पार। पासिया चेरे चोर लबार॥१९॥

सभी दिशाओं में देव और मनुष्य सुन रहे हैं, इसलिए मेरा उत्तर

देना आवश्यक हो गया है। ठग, ठठेर, बटपार, पामी (एक जाति) चोर, झूठे तेरे दास हैं ॥१६॥

बधिक जगाती बनिक सुनार।
इन्हें आदि हीं मीत अपार॥
पुस्ता पीवहिं भगाहिं खाइ।
मदिरा पी निस्वा पह जाइ ॥२०॥

बधिक, जगाती (कर वसूल करने वाले), बनिया सुनार और पुस्ता को पीने वालों तथा भाँग खाकर, मदिरा का पान कर वेश्याओं के पास जाने वालों के तुम परम मित्र हो ॥२०।

जैसौ सेवक वैसौ नाथ। मों दासन पह जोड़त हाथ॥
एसौ तू मोसों सरि करै। सुनि सुनि सुर कुल लाजनि मरै ॥२१॥

जैसे तुम्हारे सेवक हैं, उसी प्रकार के तुम उनके स्वामी हो। हम दासों से क्यों हाथ जोड़ते हो। तू मुझसे प्रतिद्वन्द्विता करता है ऐसा देखकर देव-कुल को अत्यधिक लज्जा का अनुभव होता है। उनके लिये तेरा यह व्यवहार मरण का कारण बन रहा है ॥२१॥

छपद

तू समर्थ क्व भयौ निस्र बचक निरुद्धकर।
तू लोकस लोक्स कियौ परलोक लोक हर॥
तू अति कृपन कुबुद्धि कूर कातर कुचील तन।
तू कुरूप पढि कपट कटु सठ कठोर मन॥
तिय मातु न मातु न पुत्र पति मित्र न तेरे मानिये।
दिनवान वहाँ तूं लोभ लघु कैसे बड़ो बखानिये ? ॥२२॥

संसार को धोखा देने वाला और उसकी रीतियों के विरुद्ध आचार करने वाला, तू संसार में समर्थ कैसे हो गया है। इहलोक (सांसारिक जीवन) और उहिलोक (पारलौकिक जीवन) दोनों का विनाश कर तुमने

संसार को लोकम बना दिया है। तू अत्यधिक कृपण, कुबुद्धि, कातर तथा कुटिल शरीर वाला है। तेरा मन अत्यधिक कुरूप, कपटी, कटु, शठ एवं कठोर है। तू स्त्री, माता, पुत्र, पति मित्र आदि से किसी भी प्रकार अपना सम्बन्ध नहीं मानता है। हे लोभ ! तू तो बड़ा छोटा है। तुझे भाग्यवान और बड़ा कैसे माना जाय ? ॥२२॥

लोभ उवाच

ज्यों राजा रास्खत परजान। त्यों हौं धन कौ राखहु दान॥
देखु विचारि जगत के नाह। राखी लछिमी लै उर मांह॥२३॥

हे दान ! जिस प्रकार से राजा प्रजा की रक्षा करता है। उसी प्रकार मैं भी धन की रक्षा करता हूँ। हे संसार के स्वामी ! तू अपने मन में विचार कर देख ले, तुझे भली प्रकार ज्ञान होगा कि संसार की लक्ष्मी को मैंने अपने हृदय में रख लिया है ऐसा कहते हैं (कि लोभ के हृदय पर वत्स चिन्ह है) ॥२३॥

सुरपति कीन्ही मन्दिर मेरु। नव निधि राखे रहै कुबेरु॥
जो पुर पुरी प्रकार न होइ। तौ सुख सों चिर बसै न कोइ॥२४॥

इन्द्र ने सुमेर पर्वत को मन्दिर बना रखा है और कुबेर नवा निधियों—महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व—को रखता है। यदि ग्राम सुरक्षा के निमित्त दीवाल न हो, तो कोई भी उस ग्राम में सुख पूर्वक निवास नहीं कर सकता है। इस कथन के द्वारा लोभ ने धन सुरक्षा के लिए अपने अस्तित्व का होना आवश्यक ठहराया है ॥२४॥

छप्पद

मो तैं बड़ो न और विस्व मैं रंग विशेष करि।
हौं रावत रजपूत राज हौं तू रैयति मरि॥
तू बालकु, हौं वृद्ध, सिद्ध हौ तू साधक गुनु।
कह केसव परसिद्ध भयो तूं मोही तैं सुनु॥

तूं फलित होत परलोक कहं, हौं इहईं फल सौं लसौं।
सुनु दान, रहै तू दिन दुरयौ हौं परगट पुहुमी वसौं ॥२५॥

इस कारण से मुझमें और बड़ा विरोध कर विश्व में कोई नहीं है। मैं इस संसार का राजा हूं और तू उसकी प्रजा है। तू बालक है और मैं वृद्ध। तू साधन है और मैं सिद्धि हूँ। इस बात को तू अच्छी प्रकार से समझ ले। इस संसार में जो तेरी इतनी ख्याति हुई है, वह मेरे ही कारण है। तू लोगों को परलोक में फल देता है और मैं इसी संसार में सब का फल दे देता हूं। हे दान! तू छिपा रहता है और मैं इस पृथ्वी पर प्रगट रूप में वास करता हूँ ॥२५॥

दान उवाच

बिढ़वै नित अपनी अदिष्ट। कहु केसव उदिम के इष्ट॥
तोतें कबहुं धरम ना होइ। धरम बिना वित लहै न कोइ॥२६॥

तू अपने अदृष्ट रूप में धन-सम्पत्ति को मोल लेता (बिढ़वै) है। उद्यम तेरा इष्ट है। तुमसे धर्म का कार्य तो कभा हो ही नहीं सकता है। धर्म के अभाव में धन सम्पत्ति को कोई नहीं ग्रहण करेगा ॥२६॥

नीकौ खाइ न पहिरै अंग। दया दान के तजै प्रसंग॥
बिन अपराध वित्त विनु करै। जैसे व्याघ जन्तु असु हरै॥२७॥

न किसी प्रकार से अच्छा आहार हो कर सकता है और न अच्छे वस्त्र ही धारण कर सकता है। धन-सम्पत्ति के आने पर अकारण ही तेरी उपस्थिति में व्यक्ति अपराध करता है, जिस प्रकार से व्याध जन्तुओं के प्राणों (असु) का विनाश किया करता है ॥२७॥

छपदु

तू भैयन महं भेद, मित्र मित्रनि उपजावै।
पति पतिनी कहं प्रगट, पिता पुत्रनि विहरावैं॥
राज दोष द्विज दोष, दीन के दोष विचारै।
छल बल गुन गन हरहि, प्रान-पुनि हरत न हारै॥

कह केसव केवल वित्त पर, विनय विनासन अपनि मति।
तू लोभ, छोनि छायचो छ रिंतु,छनकु छुद्र अति तिच्छगति ॥२८॥

तू भाइयों और मित्रों के बीच भेद पैदा करता है। पति पत्नी, पिता और पुत्र के बीच में प्रकट रूप में फूट डाला करता है। राज्दोष द्विज-दोष तथा दान दोष का तू कुछ विचार ही नहीं करता है। अपने छलबल से तू लोगों के गुणों का हरण करता है और यहाँ तक कि प्राणों को लेने में भी तू नहीं हिचकता है। केवल वित्त के लिए अपना विनाश सम्पूर्ण पृथ्वी मंडल पर क्यों क्षत्रियों को क्षुद्र और क्षणिक बना दिया है।।२८।।

लोभ उवाच

देखु दान, जो यह संसार। ता महं एकै हौं ही सार ॥
गुनी गुनज्ञ छमी सुचि सूर। आनद कन्द सिंगार समूह ॥२६॥

हे दान! इस संसार में मैं ही एकमात्र सार हूँ अर्थात मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। गुणी, गुणज्ञ क्षमा, शूर, आनन्द उत्पन्न करने वाला शृंगार आदि की जड़ में मैं ही हूँ अर्थात मेरे अभाव में इनका होना असम्भव है।।२६।

जीव धरै या धरनी माह। बसत सदा सुख मेरी छांह ॥
दान, जातु हौं सब के प्रान। देहि बताइ जु मो बिनु ग्रान ॥३०॥

परमात्मा से विरक्त होकर जीव इस संसार में आकर मेरी ही छत्र छाया में बढ़ता है। हे दान! मैं सभी का प्राण हूँ। मेरे अभाव में यदि कोई वस्तु हो तो उसे बता दो।।३०।।

छपदु

मोहि लीन पसु पन्छि जच्छ रच्छस सब छिति धर।
बिद्याधर गंधर्व, सिद्ध, किन्नर, नर बानर ॥
पूरन देव अदेव जिते नर देव रिषी मुनि।
चतुराश्रम चहुं बरन पदारथ चहू मद्धि गुनि ॥

दिन दान, दिव्य दर्ग देख तू मो महं, हौं तो मैं लसौं।
कह केसव केसवराइ ज्यों हौं सब के घट घट बसौं ॥३१॥

समस्त पृथ्वीतल के पशु, पक्षी यक्ष, राक्षस, विद्याधर, गंधर्व सिद्ध, किन्नर नर वानर, सभी देव, अदेव, नरदेव, ऋषि, मुनी, चारों आश्रम, चारों वर्ण, सभी पदार्थों के बीच में मैं तुझे दिखाई पड़ूंगा। मैं सभी के घट घट में वास करता हू ॥३१॥

दान उवाच

बात कहहि अपनौ मुख देखि।
मन क्रम वचन बिचारि बिसेखि ॥
कूप मांझ उपज्यौ मंडूक।
मूरख महा इते पर मूक ॥३२॥

हे लोभ ! तू अपनो ही बात करता है। कुछ भी तो मन, क्रम वचन से विचार कर देख। तू उसी प्रकार का है जिस प्रकार कुए में उत्पन्न होने वाला मंडूक होता है। एक तो वह महा मूर्ख होता है उस पर भी मूक ॥३२॥

सुर पुर कौ क्यों जानै बात। ते मूरख जे पूछन जात ॥
अपनैं मुख आपनैं चरित्र। बिन भीतहि कित चित्रहि चित्र ? ॥३३॥

जो मूर्ख दूसरों से पूछने जाते हैं, उन्हें सुरपुर का कैसा ज्ञान होगा। अपने चरित्र का बखान अपने ही मुख से करते हैं। बिना भित्ति के चित्र किस प्रकार तैयार होगा ? ३३॥

छपदु

तू कृतघ्न, हौं कृती, पाप तू, हो पुनीत मति।
तूं झूंठौ, हौ साचु, निलज तूं, हौं सलज्ञ मति ॥
तूं दुख दायक, दुखी, सुखी हौं सब सुख-दायक।
तूं सेवक सब काल सदा साहिब हौं लायक ॥

सुनु लोभ ! कविंद लबार जग, हौं दाता तूं मांगनौं।
कह केसव देस विदेस महं मोहि तोहि अंतर घनौं ॥३४॥

तू कृतघ्न है और मैं कृती हूँ। तू पापी है और मैं पवित्र बुद्धिवाला हूँ तू झूठा है और मैं सच्चा हूँ। तू निर्लज्ज है और मैं सलज्ज हूँ। तू दुखी है और सभी को दुःख देने वाला भी है और मैं सुखी भी हूँ और सभी को सुख देनेवाला भी हूँ। तू सभी युगों में सेवक रहेगा और मैं स्वामी के योग्य रहूँगा। हे लोभ ! तू संसार भर में झूठा है। मैं दाता हूँ तू याचक है। इस संसार में मेरे और तेरे बीच में बहुत बड़ा अन्तर है ॥३४॥

लोभ उवाच

सुनु दान, जिते नर दाता भए। तिन कह मैं दीरघ दुख दए॥
साधु सर सब परम निसंक। मैं नलु कियौ राज ते रंक ॥३५॥

हे दान ! इस संसार में जितने भी दानी हुए हैं, मैंने उन सभी को अत्यधिक कष्ट दिया है। अनेक निःशंक साधुओं को तथा नल राजा तक को मैंने राजा से रंक बना दिया। ३५॥

मत्री मित्र सत्रु ह्वै गए। जात हथ्यारन हाथा न लए॥
दह पारी भंजी माहुरी। कहू पुत्र, कहुं कामिनि करी ॥३६॥

मंत्री और मित्र राजा के शत्रु हो गये। वे उनके कहने से हथियार तक नहीं धारण करते हैं। स्त्री कहीं और पुत्र कहीं कर दिया अर्थात् सभी को विलग करने में मैं समर्थ रहा ॥३६॥

छपदु

मैं तेरो सुनि सखा स्याम पै सिंधु मथायौ।
मैं तेरो हरि हितू मोहिनी रूप हंसायौ॥
मैं तेरो बलि बधु बधायौ बावन यह है।
मैं तेरो हरिचंद मित्र बच्यौ सुपचहि है॥
प्रिय पंडु पुत्र तेरे तिनहिं दुःख दिये केति कन नौं॥
तैं, दान ! दीन सांची कही मोहिं तोहि अंतर घनौं ॥३७॥

मैंने तेरे सखा श्याम से सिंधु का मंथन करवाया। मैंने ही तेरे हित विष्णु को मोहिनी के रूप पर हँसा दिया। मैंने ही तेरे बन्धु राजा बलि को वावन की बातों में बँधा दिया था। तेरे मित्र राजा हरिश्चन्द्र को नीच श्वपचि के हाथ बिकवा दिया था। तेरे प्रिय पाडु पुत्रों को मैंने ही अत्यधिक कष्ट दिया था। हे दान ! तूने सत्य ही कहा है कि मेरे और तेरे में बहुत अधिक अन्तर है ॥३७॥

दान उवाच

दमयंती राजा नल बरै। देव अदेव सबै परि हरै॥
इहि दुख देवनि कीनौ कोह। नल दमयंती भयौ बिछोह ॥३८॥

राजा नल ने दमयन्ती से विवाह किया। इसके कारण देव अदेव सभी ने उसे त्याग दिया। देव, राजा नल के इस व्यवहार से अत्यधिक दुःखी हो गए। परिणामतः नल दमयन्ती का विछोह हो गया था ॥३८॥

तू बपुरा को दुख दे सकै। कैसें पंगु सिंधु को नकै॥
साहि छिंवाई[1] की लै जाइ। विहना[2] फूल्यौ अंग न माइ[3] ॥३९॥

१—एक सुंदरी स्त्री जिसे मुसलमान बादशाह ले गया था। २—धुनिया जैसे—तुरकों भए तो विहना ॥३—फूले उमंग नहीं समाता है।

तू बेचारा किसी को क्या दुःख देगा। पंगु किस प्रकार से सिंधु पार कर सकता है। एक सुन्दरी स्त्री को एक बादशाह ले गया था। यह देख कर धुनिया (विहना, मुसलमानों के बीच का नीच जाति) प्रसन्नता से अपने अंग अंग में फूले नहीं समा रहा था ॥३९॥

छपद

मेरे हित श्री नाथ सिंधु मैं कियौ सदन, मुख।
जारि छार कियो काम मैंक हर हेरि रोप रुख॥
केसव सपुर सदेह गए हरि चंद देव पुर।
द्वारपाल बलिद्वार भए त्रैलोकपाल गुर॥

पंडव प्रसिद्ध भए युद्धमि प्रभु जाति सकल कौरव कुमति।
सुनु लोभ, छोभ छिन छोभ हति मों प्रताप समुझे सुमति ॥४०॥

मेरे लिए चोर मित्र है। उसके मैंने सुख का घर बना रक्खा है। शंकर भगवान ने क्रोध में केवल एक दृष्टि ही काम पर डाला था कि वह जल कर राख हो गया। हरिश्चन्द्र सहित स्वर्गपुरी को गए थे। पाण्डवों ने कौरवों को पराजित कर समस्त पृथ्वी को अपने वश में कर लिया था। हे लोभ! लोभ क्षणिक है। उसको मारकर हम मेरे प्रताप को तुम समझ सकते हो। ४०॥

लोभ उवाच

काहू की नहिं कोऊ मित्त। मित्तु अकेला ई जग वित्त ॥
सोई पंडित सोई साधु। जाके घर मे वित्त अगाधु ॥४१॥

संसार में कोई किसी का मित्र नहीं है। इस संसार मे केवल धन ही सब का मित्र है। वही पंडित और साधु है, जिसके घर में अगाध धन सम्पत्ति है ॥४१॥

नीच ऊंच सब जातें होइ। ऊंचहि नीच बसानत लोइ ॥
ना वित्तहिं तू तृनवर गनें। बहुत विवूचे तो से घनें ॥४२॥

४—विबूचना [सं० विवेचन] = संकट में पड़ना जैसे—कांकित तुम जिन धरयौ न यौन। प्रान न उठे घड़ी दो तीन ॥ वारे गुना न ध्याइन बने। भले विवूचे दोनों जने ॥

धन के कारण ही सभी ऊँच और नीच होते हैं। धन के अभाव में ऊँच को भी नीच कहते हैं। धन के अभाव में तृण भी नहीं प्राप्त होता है और अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है ॥४२॥

छप्पय

जो पर वित्त त मित्र समान जाचक घर आवैं।
पुत्र कलत्र चरित्र चित्त चित्रहि-उपजावें ॥

कह केसव कोटि कलानि करि लोभ न छोभ उपाइयै।
जा धनहिं धनी मानत धरनि सु मो बिनु रंच न पइयै ॥४६॥

अनेक सिद्ध साधना करते हैं, उसकी प्राप्ति में बहुत से मनुष्य आत्मोत्सर्ग कर देते हैं। अनेक प्रकार की विद्यायें उसे जानने की चेष्टा कर रही हैं। चारों वेद ब्रह्मा से पूछते हैं। मानो सिंधु उसे ढूढ़ रहे हैं, सात हजार रसातल उसे पाने के लिए लालायित हैं। सातों द्वीपों को देखकर और संसार के सातों वलों को देखकर हे लोभ ! तू अनेक कलाओं द्वारा अपने मन को क्षुब्ध मत कर। जिस धन को धनी इस संसार में धन मानते हैं, उसे मेरे अभाव में नहीं प्राप्त किया जा सकता है ॥४६॥

लोभ उवाच

एतो गर्व न कीजै दान। बात कहहि अपने उनमान ॥
बहुत वित्त उपजावनहार। उपजत वित्त न लागहि बार ॥४७॥

हे दान ! इतना गर्व तू अपने ऊपर मत कर। तू अनुमान से बात करता है। बहुत सा वित्त उत्पन्न करने वाला हूँ। वित्त को उत्पन्न करने में बहुत अधिक समय नहीं लगता है ॥४७॥

लेवा देई विविध प्रकार। खेती कीजै बहु व्योपार।
खानि, मुकातै लीजै गांउ। धन पावै मठ पती सुभाउ ॥४८॥

लेन देन तो अनेक प्रकार से चलता है। खेती और अनेक प्रकार का व्यापार भी किया जाता है। गाँवों में खेतों का ठेका लीजिए और मठपति तो स्वाभाविक रूप से ही धन पाता है ॥४८॥

छप्पय

सम दम के जम नियम ध्यान धारन जु धीर मति।
तप जप साधि समाधि व्याधि निहि जाति आधि मति ॥
मन्त्र जन्त्र बहु तन्त्र सिद्धि रस रास रसायन।
केसवदास उपास वास हरि तीरथ गायन ॥

पारस प्रसिद्ध गिरि कलप तरु कामधेनु धन काज सब।
साधन अनेक धन हेतु तूं दान भयौ कि भयौ न अब ॥४६॥

धैर्य-बुद्धि वाले शम का दमन कर संयम और नियम में ध्यान धारण करते हैं। जप तप करके समाधि लगाते हैं। अनेक प्रकार से जन्त्र-मन्त्र की साधना कर रस, रास और रसायन तैयार करते हैं। अनेक प्रकार के उपवास, तीर्थों पर वास तथा गायन करते हैं। प्रसिद्ध गिरि पर पारस, कल्प वृक्ष, कामधेनु आदि सभी साधन धन के निमित्त ही हैं ॥४६॥

दान उवाच

हौं न सकौं कछु कहि सकोच। सबही तैं दुर्ल्लभ धन पोच॥
बसुधा कहत भरी बहु रत्न। हाथ न आवे कोनहु जत्न ॥५०॥

सकोच के कारण मैं कुछ कहना नहीं चाहता हूं। सबसे अधिक दुर्लभ नीच धन ही है। लोग कहते हैं कि पृथ्वी अनेक रत्नों से भरी हुई है, किन्तु उनमें से एक भी यत्न करने पर नहीं मिलता है ॥५०॥

धन धरनी पति रूप प्रमान। सो-पुनि जायतु दान विधान॥
दाता श्रद्धा ईं तैं करैं। तूं न कछू श्रद्धहिं अनुसरै ॥५१॥

धन पृथ्वी पर पति के रूप में है। वह दान देने पर ही जाता है। दाता श्रद्धा-पूर्वक उसे देने के बाद फलता-फूलता है, किन्तु तू कुछ भी श्रद्धा का अनुसरण नहीं करता है ॥५१॥

छपदु

स्मृति अष्टादस मुनि पुरान अष्टादस जेते।
चौंदह विद्या चारि वेद बुध बूझहिं तेते।
जल थल सकल पुनीत सुधा स्वाहा सुदेसमति।
सुभ तिथि वार वियोग जोग उपराग काल गति।
सुनु लोभ लाभ कारन कहै तपजपादि तैंहू सबै।
धर्म कर्म इहि कर्म भुइ मुहिं बिहीन निष्फल सबै ॥५२॥

इसी कारण से अठारहों स्मृतियाँ, अठारहों पुराण, चौदहों विद्यायें और चारों वेद पूजे हैं। समस्त जल-थल पवित्र है। योग और वियोग, शुभ तिथि और दिन काल की गति से होते ही रहते हैं। फिर भी हे लोभ! तू लोभ के कारण जप तप की बात कहता है। मुझसे विहीन इस पृथ्वी पर सभी धर्म कर्म व्यर्थ हैं॥५२॥

लोभ उवाच

दीने हौं जीपै है सत्ति। राजा नल कब दई विपत्ति?
सुपचनि दीने कब हरिचन्द? सत्यासुर तरु आनँद कन्द॥५३॥

यदि तुम्हारे अन्दर शक्ति है, तो तुमने कब राजा नल को विपत्ति दी? नीच लोगों को कब तुमने राजा हरिश्चन्द्र को दिया? क्या कभी सत्यासुर तरु आनन्दकन्द रहा है?५३॥

कबहीं लंक बिभीषन दई। मन्दोदरी रूप दिन नई?
गनिका[1] कबहीं दीनो मुक्ति? दान छेड़ि दे अपनी जुक्ति॥५४॥

विभीषण को लंका कब दी? मन्दोदरी रूप में क्या नित्य नई थी? गणिका को कब मुक्ति दी! हे दान! तू अपनी युक्तियों को छोड़ दे॥५४॥ १—वेश्या

छप्पदु

दीननि दान दिवाइ करत तू वित्तहीन दिन।
वित्त गए बुधि जाइ, गए बुधि जाति सुद्धि तिन।
सुद्धि गए नहिं सिद्धि, सिद्धि बिनु सुख नहिं पावै।
सुख विहीन बहु दुःख, दुःख घर घर भटकावै।
कह केसव पर घर जाइ तू हरिहू की सोभा हरहि।
रे! मिले मामे[1] यह बूझिये मित्र दोष दिन दिन करहि॥५५॥

दीनों को दान दिला कर तू सभी को वित्तहीन करता रहता है। धन के अभाव में बुद्धि चली जाती है और बुद्धि के चले जाने प स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति के अभाव में सिद्धि नहीं मिल सकती है और सिद्धि के

बिना सुख मिलना असम्भव है। तू दूसरे के घर पर जा कर हरि की शोभा का भी हरण कर लेता है। तेरे मिले रहने पर मित्र प्रतिदिन दोष करते रहते हैं ॥५५॥ १ – तेरे मिले रहने पर

दान उवाच

दान दिए नासत सब रोग। दान दिए उपजत दिन भोग॥
दान दिए दिन सम्पति बढ़ै। दान दिए जगती जसु बढ़ै ॥५६॥

दान देने से सारे रोगों का विनाश हो जाता है। दान देने से नित्य-प्रति भोग की वस्तुयें प्राप्त होती रहती हैं। दान देने से ही नित्य सम्पत्ति बढ़ती है और संसार में यश फैलता है ॥५६॥

लोभ, सु जी महँ जैसी होइ। तैसोई समुझै सब कोइ॥
तावे हों बरनत हौं तोहिं। आपुन सो जिनि जानहि मोहिं ॥५७॥

हे लोभ! जिसके मन में जैसा होता है, वह वैसा ही समझता है। इसलिए तुझसे कहता हूँ कि तू अपने ही समान मुझे मत समझ ॥५७॥

छपदु

लिखि देत पत्र रिन काढि बहुरि लै रहत लोभ लचि।
उरगावत रजपूत उरग[1] नितु जात सोचि पचि।
दै जगदीसहि बीच नीच तू झूठहि पारै।
दै पादारघ द्विजनि प्रेत[2] पुनि लेत न हारै।
इहि लोक करत निरवस उहि लोक नरक पारहि कुमति।
हौं जाउँ मित्र के साथ, तू छोड़हि मित्र समूल हति ॥५८॥

केवल पत्र मात्र लिख देने से ऋण मिल जाता है। उस समय लोभ लज्जित होकर रह जाता है। राजपूत ऋण का परिशोध करते हैं और यदि ऋण का परिशोध नहीं कर पाते हैं तो उन्हें इसका बड़ा शोक रहता है। तू ईश्वर को बीच में लाकर झूठ बातें क्यों करता है। ब्राह्मणों को दान देने के बाद जीव सभी वस्तुओं को ग्रहण कर लेता है। तू इस संसार में

सबको वशहीन करता है-और उस लोक में नर्क वास में कराता है। मैं मित्र के साथ जाता हूँ और तू मित्र का समूल विनाश करके छोड़ देता है ।।५८।।   १—ऋण का परिशोध, २—जाव ।

लोभ उवाच

जौ धन होइ त दीजतु दान । धनही ते सब सनमान ॥
जाही के धन सोही धन्य । ताते भलो न धरनी अन्य ॥५६॥

यदि धन होता है तभी तो दान दिया जाता है। धन से ही सब प्रकार सम्मान प्राप्त होता है। जिसके धन है वही धन्य है। उससे अधिक अच्छा इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है ॥ ५६ ॥

धनि वहि धनी की जीवन जानि । हानि भए सबही की हानि ॥
जैसे तैसे धन रच्छिए । धन ते धरनी घर लच्छिए ॥६०॥

उस धनी का जीवन धन्य समझिए जिसकी हानि होने से सभी की हानि हो जाती है। जिस प्रकार से भी हो धन की रक्षा करनी चाहिए क्यों कि धन से ही पृथ्वी पर घर दिखाई पड़ता है ॥ ६० ॥

छप्पय

जिहि धन पतित पुनीत होत साधन बिनु पावन ।
जा बिन पुरुष पुनीत होत ज्यों पतित अपावन ।
जा धन लगि सब काल होत सुर असुरनि बिग्रह ।
जा धन लगि धरनीस करत धरमनि कौ निग्रह[1] ।
सुन, सु धन धन्यायो धरनि महँ धर्म काम कारन करन ।
दिन दान देत दीननि सो धन होत मित्तजीवन हरन ॥६१॥

पवित्र साधनों के अभाव में भी पतित व्यक्ति धन से पवित्र हो जाता है। धन के अभाव में पवित्र पुरुष भी अपावन हो जाता है। धन के कारण से सभी कालों में सुर असुरों का विग्रह होता रहा है। जिस धन से परनीस सभी धर्मों का निग्रह किया करते हैं, वह धन धन्य है, जो कि

इस पृथ्वी पर धर्म-कार्यों में लगता है। हे मित्र! दोनों को धन देने से जीवन ही समाप्त हो जाता है॥ ६१॥ १—अवरोध

दान उवाच

दान दिए कहु को मरि गयो ?
अजर अमर को लोभी भयो ?
ज्यों खैयै पीजै धन धान।
जथा सक्ति त्यों दीजै दान ॥६२॥

इस संसार में दान देने के कारण कौन मर गया और कौन ऐसा लोभी है जो कि अजर-अमर हो गया है ? जिस प्रकार से खाया-पिया जाय, उसी समान दान भी दिया जाय॥ ६२॥

अनदीजे सब हसी करै।
चोर लेइ अगिहाई जरै।
कि तौ घरयोई धरनी रहै।
कै मरि जाहि त राजा लहै ॥६३॥

यदि दान न दिया जाय, तो सभी उपहास करते हैं। या तो उस धन को चोर चुरा ले जाता है या आग के लगने से नष्ट हो जाता है या घर में रखा हा रह जाता है और मरने के बाद उसे राजा ले लेता है॥ ६३॥

छप्पइ

तेरो सखा समूल गयो लंका पति रावन।
करै विभीषन राज सदा मेरो मन भावन।
टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सोयो।
मोरे हित वरबीर[1] बिना दुख दीननि रोयो।
तुव सुजनु जगमनि प्रात उठि लेइ न कोऊ नावँ कहँ।
मो मीत मधुक्कर साहि की जस जग मगत जगत्त महँ॥६४॥

तेरा मित्र लक्ष्मपति रावण समूल नष्ट हो गया और मेरा मनभावन विभीषण वहाँ राज्य करता रहा। तेरा मित्र टोडरमल (अकबर का सचिव जिसने भूमिकर बढाया था) मर गया और उसके साथ ही उसका सम्पूर्ण सुख भी इस पृथ्वी पर सो गया। मेरे राजा बीर बल गरीबों के दुखों पर रोया करते थे। तेरे जनमनि का प्रात: काल उठकर कोई नाम भी नहीं लेता है। किन्तु मेरे मित्र मधुकरशाह की कीर्ति सारे संसार में जग मगा रही है ॥६०॥ १—बीरबल

लोभ उवाच

दान करहु जनि अति हठ हिये।
बांध्यों बलि अति दानहिं दिये॥
हर्ती छिताई अति सुंदरी।
सो पुनि छल बल तुरकनि हरी॥६५॥

हे दान! अत्यधिक हठ मत करो। बलि अत्यधिक दान के कारण ही बाधा गया था। छिताइ अत्यधिक सुन्दरी थी इसालिए उस तुरक ने छलबल से हर लिया था ॥६५॥

अधिक गर्व मारयो सिसुपाल।
अति सूरौ अर्जुन बेहाल॥
अति हित सीतहि भयो वियोग।
रोगी भी ससि कियो वियोग॥६६॥

अत्यधिक गर्व के कारण ही शिशुपाल मारा गया था। अत्यधिक बली अर्जुन का भी बेहाल हो गया था। अत्यधिक स्नेह के कारण सीता का भी वियोग हो गया था ॥६६॥

छप्पदु

अति उदार धर्मेश विदुर तैं मारि निकारयो।
डसे परीच्छित सांप, भस्त तैं भूरन मारयो।

भोज कियो तैं तुरक बन्दि पुनि परयों पिथौरा[१]।
सुनु भगवान पवारु पूत नहिं पावत कौरा।
अति दानि सब दीन भए जिन दीननि दिन दान दिए
कह केसव तोतैं होइ सब मैं काको अपमान किए ॥६७॥

अत्यधिक उदार धर्मज्ञ विदुर को मार कर निकाल दिया गया था। राजा परीक्षित को साँप ने काट लिया था और भरत राजा को भूखों रहना पड़ा था। तुरकों को भोज दिया (कौन सा ?) जिसके कारण पृथ्वीराज को बन्दी होना पड़ा। भाग्यवान (भगवान) परमार (पवारु) पुत्र भोजन को तरस रहे हैं। वे सभी दाता अत्यधिक दान दे गये जो कि दीनों को दान देते रहे। तुमसे यदि सब कुछ होता है तो मैंने किसका अपमान किया है ॥६७॥ १—पृथ्वीराज

दान उवाच

उलटी, लोभ, लोक की रीति। तातें हार भयें हूँ जीति॥
देइ कछू न आपु कौं लहै। तिनहू को मेरोई[१] कहै॥६८॥

संसार को रीति कुछ उलटी है। इस लिये जीत होने पर भी हार ही रहती है। जो किसी को कुछ भी नहीं देते हैं, उन्हें तू अपना कहता है ॥६८॥ १—अपना ही

जबही जाको होइ बिनासु। सबै कर तेरो उपहासु॥
तू कर सकै कहा वापुरो। तिनको तोहि लगावत बुरो॥६६॥

जभी किसी का विनाश हो जाता है तभी तेरा सब उपहास करते हैं। तू बेचारा क्या कर सकता है। तुझे सभी बुरा कहते हैं॥६९॥

छप्पदु

वेनु वान बलि दच्छ हिरन कस्यप दुख दावन।
सहस वाहु सिसुपालु अहैं तेरे मन भावन।

कलित कलंक निसकु वन्धु जालन्धर को गनु।
केसव कस निसक सकुनि राजा दुर्जोधनु।
सुनु लोभ, जीव जानत सवनि जैसी कछु जाकी भई।
लोभ कियो जा धरनि कौं सो काहू संग नहि गई ॥७०॥

वेनु, वान, वीरवंड, हिरनकस्यप, सहस्त्रबाहु, शिशुपाल आदि दुःखों को देने वाले तेरे मन भावन हे। त्रिशकु का भाई जालन्धर संसार का कलंक है। कंश, शकुनि, राजा दुर्योधन आदि की जैसी भी दुर्गति हुई वैसी संसार के सभी लोगों को ज्ञात है। जिस किसी ने भी इस संसार में लोभ किया वह उसके साथ कभी नहीं गया है ॥७०॥

लोभ उवाच

अजहूँ तैं रे अधिक सयान'
जग को जानत जदपि विधान॥
भले बुरे जग में अवतरैं।
पाप पुन्य सब को अनुसरैं ॥७१॥

संसार का विधान जानने के बाद भी तू चतुरता की बाते करता है। भले बुरे सभी इस संसार में अवतरित होते है और वे पाप पुन्य का अपनी इच्छानुसार अनुसरण करते हे॥७१॥

कोऊ स्वर्ग नरक मह परै।
तिन को तूं मेरे सिर धरै॥
लिख्यौ कर्म को मेटि न जाइ।
कहा रंक कहा राजा राइ॥७२॥

कोई स्वर्ग नर्क में पड़े, उस तू मेरे शिर पर क्यों थोपता है। कर्म में लिखे हुये का किसी भी प्रकार से विनाश नहीं होता है, वह चाहे राजा हो चाहे भिखारी ॥७२॥

छप्पु

भूप भूमि पर प्रगटि मेटि भारत प्रति पारत।
सुख तें रारत निकट, दुःख ते देस निकारत

करत रंक ते राज, राज तैं रंक करत अब।
सासन सुभ अरु असुभ सदा सेवक मानत सब ॥
सुप स्वारथ सिद्धि प्रसिद्ध नृप देत लेत रसहू बिरस।
कहु,दान,दोष ह्यां कौन को ? जीवत मरत अदिष्ट बस ॥७३॥

राजा भूमि पर जन्म लेकर प्रतिपालन करता है और मारता भी है। सुख को अपने निकट रखता है और दुख को देश से बाहर निकालता है। राजा से भिखारी और भिखारी से राजा बनाता है। सभी सेवक शासन को शुभ और अशुभ दोनों ही मानते हैं। स्वार्थ वश प्रसिद्ध एवं सिद्धि को प्राप्त राजा भी नीरस वस्तुओं में रस लेते हैं। हे दान! कहो यहाँ पर किसका दोष है? अदृष्ट के वश में होकर सब जीवित मर जाते हैं ॥७३॥

दान उवाच

बहुत निहोरो तोसों करौं। कहै त तेरे पाइन परौं ॥
तोकों ही सिख एक। छाडि देइ जो अपनी टेक[1] ॥७४॥

तुझसे मैं बहुत विनती करता हूँ और यदि तू इससे भी सन्तुष्ट न हो, तो मैं तेरे पैर पड़ सकता हूँ। तुझे मैं एक सीख देना चाहता हूँ और वह यह कि तू अपनी टेक छोड़ दे ॥७४॥ १—हठ

जो तू सबही को सब लेइ। एक बात तू मोकों देइ ॥
जिहि तैं तेरौं नीको होइ। चिर जीवैं तेरे सब लोइ ॥७५॥

यदि तू सब का सब कुछ ले लेता है तो, मुझे भी एक वस्तु माँगे दे दे। कम से कम जिनसे तेरा लाभ हो, वह तो सब लोग (लोटे) चिरंजीवी रहें ॥७५॥

छपदु

करु कुग्रहन ग्रह दान ग्रहन, समहु धनु पावहि।
वरु बेचहि संतान वरु कुसुपचनि[1] सिर नावहि।

वरु लंघन[1] करि परहि मांगु वरु भीख छाडि पति।
वमन अन्न वरु भखहि हिये जो भूख भई अति॥
गनि एक कोद सब पुन्य अरु एक कोद जीदीजई।
बस पाय पाप लाखनि करें दीनों,लोभ,न लीजई॥७६॥

कुग्रहों का दान कर धन का संग्रह कर ले, संतानों को बेच कर स्वजनों के सम्मुख नत मस्तक हो। उपवास कर ले अथवा भिक्षा माग ले। यदि अत्यधिक भूख लगाहो तो वमन (उल्टी) किए हुए अन्न को ग्रहण कर ले। एक ओर सम्पूर्ण पुण्य को दे दे और दूसरी लाखों पाप भी कर ले, किन्तु लोभ को किसी भी प्रकार ग्रहण न करे॥७॥ १—उपवास

लोभ उवाच

भली कही तुम मोसों बात।
मैं सुनि सुख पायौं सब गात॥
तुम अति बड़े धर्म के तात।
सिखवत हो सिख अति अवदात॥७७॥

तुमने मुझसे अच्छी बात कही। मैं उसे सुनकर अत्यधिक सुखी हुआ। तुम धर्म धुरन्धर हो, इसी लिए सीख दे रहे हो॥७७॥

हों जु कहों सो चित दे सुनो।
सुनि सुनि अपन मन में गुनो।
जो कछु जग में होई प्रमान[1]।
मोपै कैसे छूटै, दान॥७८॥

मैं जो कह रहा हूँ उसे चित्त लगाकर सुनो और उस पर विचार करो। हे दान! संसार में जो कुछ भी प्रमाणित हो चुका है, उसे कैसे छोड़ा जा सकता है॥७८॥ १—प्रमाणित

छपदु

भूल्यों गुन सब सीखि लेइ सब कहैं सयाने।
भूल्यो मारग लेइ फेरि जब चले पयाने।

भूल्यो लेरो लेइ फेरि यह न्याउ कहावे।
भूल्यो व्रत जो लेइ फेरि तौ सोभा पावे।
कह केसव देव अदेव यह कहत दोष कीजै न चिरि।
सुनु दान, यहै गति दान की भूलि जु देइ सु लेइ फिरि ॥७६॥

सभी चतुर लोग कहते हैं कि भूले हुए गुणों को साथ लेना चाहिए। पुनः जब कभी प्रकाश मिले तो भूले हो मार्ग को अपना लेना चाहिए। भूली हुई बात को धर्य से देख ले, यही न्याय है। भूले हुए व्रत को ही यदि व्यक्तिधारण कर ले, तो उससे व्यक्ति शोभा पाता है। देव और अदेव सभी कहते हैं कि दोषों की पुनरावृत्ति नहीं होना चाहिए। हे दान! तेरी भी यही गति है कि जो दान देता है वही फिर दान लेता भी है ॥७६॥

दान उवाच

लोभ कहाँ यह सीखी युक्ति? किधौं आपने उर की उक्ति॥
विप्र पूजि दीजतु है गाइ। लीजै दुहती बेर छुड़ाई? ॥८२॥

हे लोभ! तूने इस युक्ति को कहा से सीखा है? या यह तुम्हारे हृदय की ही खोज है। विप्र की पूजा करके गाय दी जाती है और क्या यह उपयुक्त होगा कि किसी के लिए उस गाय को ब्राह्मण से ले लिया जाय ॥८०॥

दीजत बेटी बोर व्याहि। देव दाइजौ[१] दीरघ ताहि।
सुदर साधु हिय में हेरि। कहि धौं, लोभ, लेइगौ फेरि?॥८१॥

पुत्री के व्याह के अवसर पर बहुत सा दहेज दिया जाता है। हे लोभ! विचार कर बता कि क्या उस धन को वापस ले लिया जायगा ॥८१॥ १—दहेज

छप्पदु

राम भूमि, हरिचन्द राज, दीनी लीनी मुनि।
कर्ण तुचा, सिवि मास दियो जगदेव सीस सुनि।
दीनी सुता जजा त तासु की छोभु न कीनौं।
जैसे प्रगट दधीचि देह छल बल हूँ दीनौ।

विन यह संसार असार गनि भूलि दातु कौनैं न दिय।
कहु कौन भूप सुरलोक महँ सपनैं हू दिय फेरि लिय! ॥८२॥

राम ने भूमि का दान किया, राजा हरिश्चन्द्र ने राज्य का दान दिया, कर्ण ने त्वचा का दान दिया, जगदेव को रक्षा के लिए शिव ने अपने शरीर का माँस दिया। ययाति ने बिना किसी क्षोभ के अपना पुत्री दे दी, दधीच ने अपने शरीर का अस्थियाँ दे दी। इनमें से कितनों ने संसार को असार समझकर दान नहीं दिया। हे लोभ! बता कि इनमें से कितनें ने स्वर्गपुरी में जाकर दान को वापस माँगा॥ ८२॥

लोभ उवाच

दोहा—देइ लेइ को कौन को? एक रूप सब जानि।
सरग नरक को आइ अब, जग प्रपंचमय मानि ॥८३॥

देने और लेने वाले में भेद कैसा? दोनों हो एक रुप के अंश हैं। संसार को प्रपच मान कर लोग स्वर्ग नर्क को जाते है॥ ८३॥

एकै लेवा देवा दान। दान लोभ कै एक निदान।
एक आत्मा घट घट बसै। एकै रूप सकल जग लसै॥८४॥

दान को लेने वाला और देने वाला एक हो है। दान और लोभ का निदान भी एक ही है। एक आत्मा है और वह सभी के अन्दर-वास करती है और वही एक रुप सभी को दिखाई देता है॥ ८४॥

सबही की गति एकै जानि। पाप पुन्य को एकै मानि।
जाको आदि न जाको अंतु। ऐसो ई जग समुझ्यो संत॥८५॥

सभी का एक गति है और पाप पुण्य भी एक हो हैं इनका कोई आदि अंत नहीं है, ऐसा ही ससार को संतो ने समझा है॥ ८५॥

छप्पै

मीत भीत जल धाम काम क्रोध मद लोभ बस।
जनमु मरनु सबको जु होतु सन काल एक रस ।

को पितु को सुत मित्र सत्रु को कहि केसव गुनि
कहि गये स्वर्ग नर्क को गयौ लिये कौन को नर्क भय।
सुनि दान दीन छिन छीन मति प्रपचमय[1] ॥८६॥

मात, भ्रात, जल, धाम, काम, गर्व, क्रोध लोभ के वश में सभी का जन्म एव मरण एक समान हुआ करता है। इस संसार मे कौन किसका पुत्र है और कौन किसी का शत्रु है। स्वर्ग नर्क के सम्बन्ध मे सभी ने कहा अवश्य है, किन्तु क्या कोई ऐसा भी है जिसे नर्क का भय ले गया हो। हे दान! इस संसार के दानों की मति क्षीण है और संसारप्रपचमय है ॥ ८६ ।

१—जल कपट से पूर्ण

दान उवाच

तू जु कहत सब एकै आइ। दूजै है न बताऊं काहि।
ऐ वौ सन्यासिन के धर्म। तिनके है सुख दुख के कर्म ॥८७॥

तू जो यह कहता कि सब कुछ एक ही है और दूसरा कुछ भी नहीं है। इस प्रकार का समझना सन्यासियों का धर्म है। वे बिना सुख दुख की अभिलाषा के कर्म किया करते है ॥ ८७ ॥

हो महस्त की बरनौ बात। जिनके मन जगमग अवदात।
एक बुद्धि जो तेरैं भई। मो सौं तौ झगरौ क्यों ठई ॥८८॥

मैं गृहस्थों के जीवन की बात कर रहा हूं, जो कि इस संसार में रहते हैं। तू अपनी एक बुद्धि के कारण मुझसे झगड़ा क्यों कर रहा है ॥ ८८ ॥

छप्पै

ऐक राज इक रंक एक नर राज रंक।
ऐक सुखी एक दुखी एक नहीं सुखी दुखी तन।
सुखी दिए जिन दान दुखी जिन दै फिर लीनै।
दुखी सुखी सुन ते न दिये नहि लिये न दीनै।
अवलोभ निलज यकवादु तजि तू बालिसुअति बालिभद्र।
दिन स्वर्ग नर्क द्वद सदा देपिय दानि अदानि कद्र ॥८९॥

एक ही राज्य में रंक भी रहता है और राजा भी। कोई उसमें सुखी रहता है और कई दुखी। किन्तु जिन लोगों को सुख दुख दोनों ही स्पर्श नहीं करते हैं वे लोग सुखी रहते हैं और दान देते हैं और वे दुखी रहते हैं जो दान देकर वापस ले लेते हैं। उन लोगों को न तो सुख सताता है न दुःख, जो कि न किसी से कुछ लेते हैं और न किसी को कुछ देते हैं। हे लोभ तू अब व्यर्थ का बकवाद छोड़ दे। दान देने के कारण ही स्वर्ग, नर्क देखने को मिलता है। ८६॥

चौपाई

जब उपज्यो वह रोप विलास। तब यह बानी भई अकास।
बिन्ध्यवासिनी देवी जहां। तुम दोऊ जन जावौ उहां॥६०॥

जिस समय रोप और विलास दोनों ही बढ़े, उस समय आकाशवाणी हुई कि विन्ध्यवासिनी देवी जहां है वहीं तुम दोनों जाओ॥६०॥

दूरि होइगो कलह कलेसु। सो कीजे जु करै उपदेसु।
यह सुनि विंध्याचल कहँ चले। जहाँ तरुन तरु फूले फले॥६१॥

जो कुछ विंध्यवासिनी आदेश दे, उसको स्वीकार करना। उसी से तुम दोनों का कलह और क्लेश दूर होगा। यह सुनकर दोनों विंध्याचल की ओर गये, जहां पर तरुण वृक्ष फूले-फले थे॥६१॥

इति श्री भूमडलाखडमडलेस्वर श्री महाराजधिराज श्री वीर सिंह देव चरित्रे मिश्र केसवदास विरचिते दान लोभ विंदवासिनी दरसन नाम प्रथम प्रकासः॥१॥

देषी तिन विंध्याचल वनी। फल दल पग मृग सोभा घनी।
प्रलयकाल वेला सी लगै। अर्क समूह जहाँ जगमगै ॥१॥

दोनों ने विंध्याचल में जाकर विन्ध्यवासिनी देवी-देखा। सम्पूर्ण नगर फल-फूल, पशु पक्षियों से शोभायमान था। वहां पर अर्क समूह जगमगा रहा था और प्रलय काल का वेला का सा अनुभव हो रहा था ॥१॥

उत्तिम नरपति कीसी भेव। फलै सकल श्रीफल की भेव।
बहु पलास जुत लक सुरूप। हरि कैसी मूरति बहु रूप ॥२॥

उत्तम पुरुष के सदृश उसका वेश था। श्रीफल की भांति सभी फलों का देने वाली थी। बहुत से पलासों से युक्त था। हरि के समान अनेक रूपों वाली ज्ञात हो रहा था ॥२॥

कहुँ सुग्रीउ चमू सी चोर। पनस कुमुद जुत नल परिवार।
अति सुंदर सुभागी सी वसै। सुभ सिंदूर तिलक सी लसै ॥३॥

कहीं पर ऐसा लगता है कि सुग्रीव अपनी सेना को चुराकर पड़ा हुआ है और कहीं जल पनस कुमुद से युक्त सपरिवार है ॥३॥

कुरु सेना सी मेरे जान। द्रोनादिक जह सकुनि प्रधान।
विंध्यांचलु तुह देख्यो जाइ। अचला घरु अचलनि को राइ ॥४॥

कौरवों की सेना सी लग रही है। द्रोण शकुनि आदि जिसके प्रधान हैं। उन्होंने विंध्याचल अचला का घर है और अपने अचलों का राजा भी ॥४॥

अखिल अडंबर कर जातु। रिषि सकोच सकोची सातु।
सोइ तु है सुग्रीउ समातु। रिद्धि सरिभि के सरिस निधान ॥५॥

विश्व के आडंबर को अ...जा प्रकार म समझ लेना चाहिये। ऋषि अत्यधिक संकोच युक्त है वहां तू सुग्रीव के समान है। रिद्धि सरिभि की सब प्रकार से खान है ॥५॥

महादेव सौ केसबदास। मलिन विभूत नाग उस्वास।
नारयन ज्यों नैननि हरै। वहु विलास सवन माला धरै ॥६॥
महादेव के समान है जो कि विभूति को रमाये हुए है और गले में नाग को लपटे हुए है। नारायण के समान नेत्रों को अपनी ओर खींचती है। अत्यधिक विलास के कारण सभी लोग मालाओं को धारण किए हुए हे ।६॥

सिसु सो सरसु धारी सग। सिव सो सोहै सिवा प्रसंग।
कवहु कुकंम कर्न सेल सैं। मुष कंदरानि वानर वसै ॥७॥
पृथ्वी शिशु समान सरस लगती है। शिवजी के साथ पार्वती शोभित होती है। कभी कुत्सित कर्ण के समान लगती है। मुख-कंदराओं में वानर वास करते है। ७।

सेष असेष छोभ सघरै। प्रति सीरामन मला धरै।
विंध्यवासिनी देखी जाय। देखत ही दुख गये नसाइ ॥८॥
शेष और अशेष क्षोभ का सहार करते हैं। शिक्षा प्राप्त करने के लिए माला धारण करते है। विंध्यवासिनी को दर्शन ही सारे कष्ट नष्ट हो गये।८॥

देइ अचल दुति ज्यों दामिनी। सिंघासन थित ज्यों दामिनी।
विद्याधरा वुधि जि जघनी। पकज लोचन चन्द्राननी ॥९॥
बिजली की भांति अचल द्युति प्रदान करती है। उसका सिंहासन भी दामिनी की भांति ही जगमगा रहा है। वह पंकज लोचना एवं चंद्रमुखी है ॥९॥

कोमल तन बाला पद्मिनी। ईडा नीसी सब सुखदाय।
सकल सुरासुर वंदत पाइ। गंधर्वनि गावत रसभरी ॥१०॥
वह बाला पद्मनी कोमल शरीर वाली है। सब प्रकार से सुख देन वाली है। सभी सुर असुर उसको पाकर वंदना करते हैं। गंधर्व रसका अपनी रस युक्त वाणी में गान करते है ॥१०॥

घानित करति किनरी किनरी । नावति वहु विधि घाघरी ।
ठारति चोर सिंघ सुन्दरी । वैठी अक वत्र घर लसै ।।११।।

अनेक किन्नर विनाश कर रहे ह और घाघरी अनेक प्रकार से नृत्य कर रही है । चोर सिंधु सुन्दरी में आकर ठहरते है । वत्र में वैठे अक शोभा द रही है ।।११।।

देषि देषि भांवन हँसै । रुद्रानी की सी दुति धरै ।
परभ्रत गजमुख ब्योमुख करै । ब्रह्मानी सी पुस्तक धरै ।।१२।।

अनेक प्रकार से देख-देख कर हँसती है । पार्वती के समान दुति धारण करती है । प्रभात बेला में अपने गणेश जी को ब्योमुख करती है । ब्राह्मणी के समान पुस्तक धारण करती है ।।१२।।

चतुर चतुर मुख को मनुहरै । नैन हरति ज्यों नारायनी ।
कमलपानि चनमाला यनी । ऐक पानि असि ऐकत सूल ।।१३।।

चतुरता के साथ मुख को देखता है । नेत्रों को नारायणी के समान अपनी ओर आकर्षित करता है । विन्ध्यवासिनी कमलपानि वनमाला सी बन गई है । एक हाथ मे तलवार है और दूसरे में शूल है ।।१३।।

एक पानि पकज को फूल । ऐक फरस इक सरहि लिये ।
एक चक्र चितामनि किये । जुग कर कलित वजावन वीन ।।१४।।

एक हाथ में कमल का फूल ह और दूसरे में फरस और शर है । एक हाथ में चक्र-चितामनि है और दूसरे मे बजाने वाली व णा है ।।१४।।

मोहत पग मृग परम प्रवीन । किये प्रनाम दडवत देषि ।
जीवन जनम सुफल करि लेषि । निकट बोलि दोउन लिये ।।१५।।

पग और मृगों को अनेक प्रकार से आकर्षित करती है । देवी को देखकर दण्डवत-प्रणाम किया । दोनों ने ही अपने जीवन को सफल समझा । देवी ने दोनों को अपने निकट बुला लिया ।।१५।।

दोहा—एक साथ केहि हेतु तुम आये इहि वन वीर।
दान लोभ दोऊ जने कहौ सु उर धरि धीर ॥१६॥

एक साथ तुम दोनों वार यहा पर क्यों आये। तुम दोनों (दान, लोभ) अपने हृदय में धैर्य धारण कर आने का कारण बताओ ॥१६॥

लोभ उवाच

कहा कहौं सुनु जग स्वामिनी। देवि देवि अंतर जामिनी।
हम मैं बाढ़यो विविध विवादु। उपज्यो उर मे विषम विषादु ॥१७॥

हे ससार स्वामिनी ! तुमसे क्या कहूं। तुम तो अन्तर्यामी हो। हम दोनों में अत्यधिक विवाद बढ़ गया है, इस कारण मन हृदय में अत्यधिक दुख उत्पन्न हो गया है ॥१७॥

सोरठा—देव देखियै जाहु। मिटि है जी को दाहु।
यह अकास बानी भई। ....॥१८॥

विवाद के अवसर पर यह आकाशवाणी हुई कि तुम दोनों देवों म जाकर मिलो और उसप मिलने पर तुम्हारे हृदय का दाह नमाप्त हो जायेगा ॥१८॥

छप्पय

बीरसिंह नृपसिंह महामहि मंडल मंडनु।
गहरवार कासी नरेशु दिल्ली दलु खंडनु।
अवि पुनीतु रन जीतु सत्यवर्ती जगवंदन।
धर्म धुरीन..... ... . .. दुष्ट निकंदन।
बुधि विधि निधानु समान निधि केसव कहि तापह चलौ।
सुभ सूरज वंस प्रसंस जग जाहि थपे सोइ भलौ ॥१६॥

राजा वीरसिंह महामंडल की रक्षा करने वाला है। गहरवार वंश काशी नरेश दिल्ली के दल का खंडन करने वाला है। सत्यवर्ती रण जीत कर ससार में वन्दनीय हुआ। वह अत्यधिक धर्म धुराण था और दुष्टों

का विनाश करने वाला था। अब जो सब प्रकार से बुद्धि का घर है, उसी के पास हम लोग आये। सूर्य वंश ही समार के लिए अच्छा है। संसार में जिसकी स्थापना हो, वही भला है ॥१६॥

दान उवाच

विनसै सब कुल क्रम को राजु।
नृप शील गुन सकल समाजु॥
परम पराक्रम प्रगट प्रतापु।
कहि ये देवि करि आपु ॥२०॥

उनके कुल का सम्पूर्ण क्रम और राज्य का व्यवस्था तथा राज्य के शील और गुण को कहें। हे देवी ! तू उनके सारे पराक्रम को हमे बता ॥२०॥

दिव्य उवाच

दोहा—दशरथु नृप रवि कुल भये कौशिल्या भरतारु।
तिनके पूरब पुन्य किय रामचद्र अवतारु ॥२१॥

सूर्य वंश में कौशिल्या के पति राजा दशरथ हुए। उनके पूर्व पुण्यों के परिणाम स्वरूप राजा रामचन्द्र का अवतार हुआ ॥२१॥

सकल भूमि को भार उतारि। अखिल लोक को काज सुधारि।
चलन लगे वैकुंठहि जबै। कुस को राज दयो है तबै ॥२२॥

सम्पूर्ण पृथ्वी का भार उतारा और सारे संसार के कामों को ठीक किया। जब राम बैकुण्ठधाम को चलने लगे तब कुश को सारे राज्य का भार सौंप दिया ॥२२॥

अवध पुरी तव उजर भई। सबै सदेह राम सँग गई।
कुसस्थली कुस बैठे जाइ। आसमुद्र पृथ्वी को राइ ॥२३॥

उस समय सम्पूर्ण अवधपुरी अत्यधिक उज्जवल हो गई और सभी सदेह राम के साथ गये। आसमुद्र पृथ्वी का राजा कुश कुशस्थली में जाकर रहने लगा ॥२३॥

कुस के कुल को एक कुमार। आनि धर्यौ कासी भुव पार।
देखि रूप, गुन सील समाज। ता कहँ पुरजन दीनों राज ॥२४॥

कुश के वंश का एक कुमार काशी में आकर रहने लगा। उसके गुण रूप, शील एवं स्वभाव को देखकर लोगों ने उसे राज्य दिया ॥२४॥

राजा वीरभद्र गम्भीर। तिनके प्रगटे राजा वीर।
तिनिके करन नृपति सुत भए। दान कृपान करन गुन लए ॥२५॥

उसके पुत्र वीर, गंभीर राजा वीरभद्र हुए और उनके भी पुत्र वीर कर्ण हुए जिन्होंने दान देने और कृपान चलाने के गुण को अपनाया ॥२५॥

वहां कर्ण तीरथ तिन कर्यौ। पूरन पुन्य प्रभावनि भर्यौ।
तिनके प्रगटे अर्जुनपाल। अर्जुन सम जन पद प्रतिपाल ॥२६॥

राजा कर्ण ने वहाँ पर कर्ण तीर्थ की स्थापना की, जो कि सब प्रकार से पुण्य प्रभाव से पूर्ण था। राजा कर्ण के पुत्र अर्जुन पाल हुए जो कि अर्जुन के समान ही लोगों की सुरक्षा करने वाले थे ॥२६॥

रूठि पिता पै काशी तजी। आनि महोनी नगरी भजी।
जीति लयो तिन गढ़ कुड़ार। तिनके साहन पाल कुमार ॥२७॥

राजा अर्जुनपाल पिता से रुष्ट होकर काशी से चले आये और मोहिनी नगर में आकर रहने लगे। उन्होंने गढ़कुड़ार को जीत लिया। इनके पुत्र साहनपाल हुए ॥२७॥

सहज इंद्र तिनके गुन ग्राम। तिनके नृप नौनगदेव नाम।
तिनके सुत नृप-कुल सिरताज। प्रगटे पृथु ज्यों पृथ्वीराज ॥२८॥

साहनपाल में स्वाभाविक रूप से ही इन्द्र के समान गुण थे। इनके पुत्र नौनकदेव हुए। इनके पुत्र पृथ्वीराज हुए, जो कि पृथ्वीराज के समान थे और वे राजाओं के सिरताज हुए ॥२८॥

तिन कें भए मेदिनी मल्ल। रामसेन देव, पूरन मल्ल।
तिन कें, सुत जीते भव भूप। अर्जुन देव नृप अर्जुन रूप ॥२९॥

पृथ्वीराज के पुत्र मेरनामल्ल राइनेन और पूरन मल्ल हुए । इनके पुत्रों ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया । अर्जुन देव साक्षात अर्जुन के समान थे ॥२६॥

सकल धर्म तिन धरनी किए । षोडस महादान दिन दिये ।
स्मृति अष्टादस सुने पुरान । चारयौ वेद सुने सुनु दान ॥३०॥

उन्होंने सब प्रकार के धर्म को पृथ्वी पर किया । उन्होंने सोलह प्रकार के दान दिये और स्मृतियों और अठारहों पुराणों और चारों वेदों को सुना ॥३०॥

तिन के सुत भयौ परम सुजानु । रिपु खडन राजा मलखान ।
जब जब जहँ जहँ जूझहि अरे । भूलि न पाउँ पिछहड़े धरे ॥३१॥

उनके पुत्र राजा मलखान हुए, जो कि सब प्रकार म चतुर और रिपु का विनाश करने वाले थे । जहा कहीं भी युद्ध मे वे आगे बढ जाते थे, फिर कदम पोछे नहीं हटाते थे ॥३१॥

तिनको सुत भो सील समुद्र । नृपति प्रताप रुद्र जनु रुद्र ।
दया दान कोऊ न समान । मानहुँ कलम वृक्ष परमान ॥३२॥

उनके पुत्र प्रतापरुद्र हुए जो कि रुद्र के समान थे और शील में समुद्र के समान विशाल थे । दया तथा दान में उनके समान कोई नहीं था ॥३२॥

नगर ओडछो गुन गँभीर । आनि बसायो धरनी धीर ।
कृष्णदत्त मिश्रहि तिन दई । पौरान की वृत्ति दिन नई ॥३३॥

राजा प्रताप रुद्र ने नगर ओडछे को पृथ्वी पर बसाया । और कृष्णदत्त मिश्र को उन्होंने पौराणिक वृत्ति दी ॥३३॥

मेरे कुल को राजा राउ । सब पूजिहैं तुम्हारे पाउ ।
तिनको सुत भो भारति चद्र । भरत खड मडल ज्यो चद ॥३४॥

मेरे कुल के सभी राजे तुम्हारे चरणों की आराधना करेंगे । उनके पुत्र भारतिचन्द हुए, जो कि भरतखड पर शशि के समान थे ॥३४॥

तुरकीन सिर न नवायौ नेम। पचिहारे सेरनु असलैम
एक चतुर्भुज ही सिर नयो। बहुरि सु प्रभु बैकुंठहिं गयो ॥३५॥

भरनिचन्द ने कभी भी तुरकों के सामने अपना सिर को नहीं झुकाया। शेर अस्लेम परिश्रम करते-करते हार गये। उन्होंने यदि किसी के सामने मस्तक नवाया, तो विष्णु भगवान के सामने। वह सीधे बैकुन्ठ धाम को गये ॥३५॥

पुत्र न, राज देइयतु काहि ? राजा भए मधुक्करसाहि।
रानि गनेश देवि घर तासु। चौदह भुवन भये जस जासु ।३६।

कोई पुत्र नहीं, इसलिए राज्य किसको दिया जाय ? अतएव राज्य का भार अपने भाई मधुकर शाह को दिया। उनकी रानी गनेशदेवी की चौदहों भुवन यश गान थे ॥३६॥

जिन जीत्यो रन स्यामति खान। अली कुली खा बुद्धि निधान।
जाम कुलीखा जालिम जयो। साहि कुली खा भाग्यो गयो ।३७।

मधुकरशाह ने युद्ध में स्यामत खा, अलीकुली खा को जीता। दुष्ट जामकुली खा भी युद्ध में पराजित हुआ। शाहकुली खा तो इनके सामने से मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ ॥३७॥

मैदखान तिन लीन्यो लूटि। अबदुल्लह खां पठयो कूटि।
गनो न राजा राउत वादि। हारयो जिन सौं साहि मुराद।३८।

मधुकरशाह ने मैदखा को तो लूट लिया और अब्दुला खा को मार पीट कर भेज दिया। उन्होंने कभी भी राजा राउत को कुछ नहीं माना। और लोगों की कौन कहे उनसे शाहजादा मुराद भी हार गया था। ३८॥

जिहि अकबर लीनी दिसि चारि। वेहू तिन सौं छाड़ी रारि।
एकै प्रभु नरसिंह अराधि। स्वारथ परमारथ सब साधि ॥३६॥

जिस अकबर ने चारों दिशाओं को जीत लिया था, उसने भी उनसे लड़ना बन्द कर दिया। उन्होंने एकमेव नरसिंह की आराधना की और उसी के आधार पर स्वार्थ और परमार्थ दोनों को साध लिया था।३६।

ब्रह्म रंध्र मन छाड़ि शरीर। हरिपुर गयो नृपति रन धीर।
तिनके प्रगटे आठ कुमार। आठों दिशा समान उदार ॥४०॥

मधुकरशाह ने ब्रह्मरंध्र को फोड़कर नश्वर शरीर को छोड़ दिया और धीर वीर राजा हरिपुर को (स्वर्ग) चला गया। उनके आठ पुत्र थे, जो कि सभी उदार थे ॥४०॥

जेठे रामसाहि रनधीर। गुन गन मन बल बुद्धि गँभीर।
तिन ते लहुरे होरिल राउ। खड्ग दान दिन दूनो चाउ ॥४१॥

मधुकर शाह के ज्येष्ठ पुत्र रामशाह थे जो कि शक्ति मन, तथा बुद्धि से गंभीर थे। उनसे छोटे होरिलराव थे जिन्हें खड्ग चलाने का बहुत चाव था। ४१॥

सादिक महमद खा जिन रयो। रवि मडल मग हरिपुर गयो।
तिन थे लघु नरसिंह सुजानु। जूझ जुरै नहि तासो आन ॥४२॥

होरिलराव ने सादिक और महमद खां को पराजित किया और वे सूर्य मार्ग से स्वर्ग को गये। उनसे छोटे नरसिंह थे, जिन्होंने कि आन के लिए युद्ध में जूझना अधिक उपयुक्त समझा ॥४२॥

रतन सेन तिनि तें लघु जानि। गहि जान्यौ तिनही खग पानि।
बानो बाध्यो जाके माथ। साहि अकब्बर अपने हाथ ॥४३॥

नरसिंह से छोटे रत्नसिंह थे जो कि खड्ग चलाने में बहुत निपुण थे, जिनके शिर पर शाह अकबर ने स्वयं पगड़ी बांधी थी ॥४३।

बानो बाधि विदा करि दियो। जीति गौर को भूतल लियो।
गौर जीति अकबर को दयो। जूझि व्याज बैकुंठहि गयो ॥४४॥

अकबर ने पगड़ी बांधकर रत्नसिंह को बिदा कर दिया और गौण देश को जीतकर अकबर को दे दिया और स्वतः (रत्नसिंह) युद्धस्थल में स्वर्गगामी हुए ॥४४॥

ताको पुत्र राउ भूपाल । जिहि जान्यौ गहि कर करवाल
तिन तें इन्द्रजीत लघु लसैं । सो गढ़ दुर्ग कछौवा वसैं ॥४५॥

रतनसिंह के पुत्र भूपाल हुए, जिन्हें तलवार अच्छे प्रकार से चलाना आता था । उनसे छोटे इन्द्रजीत थे, जो कछौवा गढ़ में रहते थे ॥४५॥

गुहरवार कुल कौं तन जान । साहिराम कों जानौं प्रान ।
ताको सकल सुखानि कह देखि । सुरपति जनम वृथा करि लेखि ।४६।

गहरवार कुल का वह शरीर था और शाहिराम का प्राण ही था । उसके सभी सुखों को देखकर इन्द्र भी अपना जन्म निरर्थक मानते थे ॥४६॥

तिनके उग्रसेन सुत भए । जासों हारि वघेरे गए ।
तिन ते लहुरे राउ प्रताप । दाहत दिन दुर्जन कौ दाप ॥४७॥

इन्द्रजीत के पुत्र उग्रसेन हुए, जिनसे बघेरे हार गये थे । उनसे छोटे राजा प्रताप थे जो नित्य वैरियों को जलाया करते थे ॥४७॥

तिन ते लहुरे उर आनियैं । राजा वीरसिंह जानियें ।
सुत तिनके एकादस सुनौं । एकादस रुद्रहि जनु गुनौं ॥४८॥

उनसे छोटे राजा वीरसिंह थे । उनके ग्यारह पुत्र थे जो कि ग्यारह रुद्रों के ही समान थे ॥४८॥

• जेठ जुझार राइ रन धीर । पुनि हरदौल बुद्धि गभीर
प्रबल पहारसिंह रनकाल । बाघराज दिन दुर्जन साल ॥४९॥

उनके ज्येष्ठ पुत्र जुझार राय थे जो कि रण में कभी भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ते थे । उनसे छोटे हरदौल थे जो कि बड़ी ही गम्भीर प्रकृति के थे । रण में काल के समान पहाड़सिंह थे और दुष्टों का विनाश करने वाले बाघराज भी थे ॥४९॥

भीम समान वली चंद्रभान । पुनि वलवीर राई भगवान ।
नर नरकेहरि नरहरि दास । कृष्ण दास अरु माधवदास ।५०।

भीम के समान महाबली चन्द्रभान था और अत्यधिक शक्तिशाली राजा भगवान था। मनुष्यों में नरहरि दास, माधवदास और कृष्णदास सिंह के समान थे ॥५०॥

तिन तें लहुरे तुलसी दास। विमल कृत्ति अति जग में जासु।
तिन तें लहुरे हरिसिंह देव। मूरति वंत मनौं कोउ देव ॥५१॥

उनमें छोटे तुलसीदास थे जिनकी विमल कृति अभी तक संसार में प्रसिद्ध है। उनसे छोटे हरिसिंह देव थे जो कि साक्षात मूर्तिमान देव थे ॥५१॥

तिनके पुत्र दोइ सुखदाई। राइ अम्मत अरु खाडेराइ।
सब के राजा राजाराम। जिनि की दसहू दिसि है नाम ॥५२॥

उनके दो पुत्र—अमतराय खाडेराइ—सुख देने वाले हुए। और सभी के राजा राजाराम (रामशाह) हुए जिनकी कीर्ति दसों दिशाओं में फैली हुई है ॥५२॥

अकबर साहि कृपा करि नई। राम नृपति कहँ बैठक दई।
जिनके सुत भए साहि सग्राम। दच्छिन दिसि जीत्यौं संग्राम ॥५३॥

अकबर बादशाह ने कृपा करके उन्हें बैठक दी अर्थात अपनी सभा में सम्मिलित किया। उनके पुत्र संग्राम शाहि हुए जिन्होंने कि दक्षिण दिशा को संग्राम में जीत लिया ॥५३॥

तिन सुत भे श्री भारथ साहि। भरत भगीरथ के सम आहि ॥५४॥

उन्हीं पुत्रों में से एक भारथशाहि हुए जो कि भरत और भागीरथ के समान थे ॥५४॥

दोहा

वंस बखान्यो सकल गुन, बहु विक्रम उतसाहु।
बीरसिंह जिहिं पुर बसैं, तह दोऊ जन जाहु ॥५५॥

वंश का वर्णन सभी गुणों एवं उनके पराक्रम के साथ मैंने किया । अब आप दोनों हो वहां जायें, जहां पर वीरसिंह निवास करता है ॥५५॥

इति श्री मत्सकल्प भूमंडलाखंडलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सवाद वर्णनं नाम द्वितीय प्रकाशः ॥२॥

लोभ उवाच

बोल्यो लोभ छोभ मति भई। सुनि सुनि राजनीति यह नई।
मुनियतु एक पिता के पूत। दोई जन धरमज्ञ सपूत ॥१॥

नव न राजनीति की नई-नई बातों को सुनकर लोभ अत्यधिक क्षुब्ध होकर बोला। सुना है कि दोनों एक हो पिता के पुत्र है और दोनों धर्मज्ञ और सपूत है ॥१॥

ऐसी कहूँ सुनी नहिं होइ। एकहि घर में राजा दोइ।
अब यह हार जीति क्यों भई। ये जो एक अनेक कौन विधि ठई ॥२॥

पिता मैंने अभी तक कहीं नहीं सुना है कि एक ही घर में दो राजा हों। यह हार इस समय जात में कैसे बदल गई। जो कुछ भी ठीक हो वह कृपा करके सब कहें ॥२॥

कहो मात! कौन पाप बहु विरोध बाढ़ियो।
राम बानधाम दीन, वीरसिंह काढ़ियो ॥३॥

हे माता! यह बताओ कि पाप किस प्रकार से इतना बढ़ गया। राम सिंह को बानपुर की रियासत दी गई किन्तु फिर भी वीरसिंह बढ़ता ही रहा ॥३॥

श्री देव उवाच

सुनहि लोभ तैं यूभी भली। फेरि दुहुनि की कीरति चली।
कहौं विरोध पाप ज्यों बढ्यो। पूरव पूरे पुन्यनि गढ्यो ॥४॥

हे लोभ! तूने अच्छा ही तो पूछा। उसके बाद फिर दोनों का कीर्ति बढ़ी। विरोध और पाप दोनों ही किस प्रकार से बढ़े उन्हें और तुम्हारे पूर्व पुरुषों को मैं कहूंगा ॥४॥

हौं उनकी कुल देवी दान। देखत दुहुँ मैयाचि समान।
कहिहौं पाप विरोधनि सने। चित दै सुनिये दोई जने ॥५॥

मैं उनकी कुल देवी हूं अतएव मेरे लिए दोनों भाई समान हैं। दोनों ही चित्त लगाकर सुनो कि दोनों किस प्रकार विरोध तथा पाप में लिप्त होते गये ॥५॥

दोहा

मधकुर साहि महि मतु राखि प्रेम को भौन।
वीरसिंह की वृत्ति को बैठक दई बडोन ॥६॥

मधुकरशाह को तो प्रेम भवन रखा है और वीरसिंह की वृत्ति के निमित्त बडौन को बैठक दी। ६।

सवैया

वीर नृपति के भुज दंड अखंड पराक्रम मंडप मौंडी।
जाइ जटी अड़ सेस के सीस, सिंची दिन दान जलावलि ओडी।
फैलि फली मन काम सबैं दुज पुजनि कैं करि सींव पिछोडी।
देखत दूरि भये दुख केसव साच की बेलि बडौंन मैं बौंडी ॥७॥

राजा वीरसिंह की भुजाओं का पराक्रम सभी जगह छाया हुआ था। उसके पराक्रम का यश शेष भगवान तक को पता चला और दान देने के कारण वह यमुना की भांति बढ़ता हो रहा। ब्राह्मणों की सभी प्रकार की

मनोकामनाएं पूर्ण हुई। वारसिंह को देखते ही सबके दुःख भाग गये और बढ़ौन में सत्य का महिमा बढ़ता गई ॥७॥

चौपई

उतरे कहू बडौंनिहा भागि। भागे सबैं सेख मुह लागि।
लीनो प्रथम पयांओ पेलि। पुनि जील्यौ तोंवर दल ठेलि ॥८॥

बढौनिहा भागकर अपनी रक्षा कर सके। वे सभी शेख का मुँह देखकर भाग खड़े हुए थे अर्थात शेख भी उनकी सहायता न कर सका था। पहले पवाया जीत लिया और फिर तोमर दल को जीत लिया। ८॥

बस्यो त्रास नर वर प्रति मीन। केला रस जाकैं आरौंन।
बहुरो सबरे मैंना मारि। डारे नाट सबै सहारि ॥६॥

राजा अत्यधिक त्रसित होकर अपने घर में जाकर रहने लगा जिसे केलारस में अत्यधिक रुचि थी। मैना (नीच जाति) जाति के सभी लोगों को मार कर वापस आया और नाट (एक नीच जाति) जाति के लोगों का भी संहार कर दिया ॥६॥

सुभट निकट जनि गनौं गँवार। जूझ असूझ कियों तिहि वार।
दोई गढ लीने लै परा। एक वेरछा अरु करहरा ॥१०॥

निकट योधाओं को गवार मत समझो। उसने अज्ञान के कारण उन लोगों पर आक्रमण किया। बेरछा और करहरा नाम के दोनों गढ़ों को राजा ने जीत लिया ॥१०॥

हथनौरा कीनो चौंतरा। मार्‍यौ बाघ जग जागरा।
भाग्यौ हसन षान तजि त्रास। तब भाडौर कियो बस बासु ॥११॥

हथनौर का तो बिल्कुल विनाश कर दिया। जग जागरा बाघ को भी मार डाला। भय छोड़कर हसन खा भाग खड़ा हुआ तब उसने भाडौर में जाकर निवास किया ॥११॥

चारक समाइचो खा कही। एरछ की सब लीनी मही।
अपव गोपाचल कौ अग। उतरि गयो मद ज्यों मातग ॥१२॥

एक बार रुनाइका खा ने कहा था उसने ऐरछ का सारी भूमि ले ली है। किन्तु आज सम्पूर्ण ग्वालियर उसके नाम से काप रहा है। सभा का गर्व नष्ट हो गया है ॥१२॥

नगस्वरूपिनी छन्द

बड़ोन बैठि कै लई। जलाल साहि की मही।
सुहृति जिति कै गई। दसौं दिसा नई नई ॥१३॥

जलालुद्दीन की सारी पृथ्वी बड़ौन में बैठकर ही वीरसिंह ने जीत ली। दसों दिशाओं में सुहृति जानकर अपने नये रूप में सभी के पास सुहृति गई ॥१३॥

दोहा

वीरसिंह अति जोर मे सुन्यो साहि सिरताज।
ता उमरावहि सौंपिये जाहि राज की लाज ॥१४॥

वीरसिंह के सम्बन्ध में अकबर ने बहुत कुछ सुना। सुनने के बाद अकबर ने कहा कि वीरसिंह के लिए किसी सरदार को दिया जाय जिस राज्य की लज्जा का ध्यान हो ॥१४।

चौपाई

भई फिरादि साहि सिर धुन्यो। एक दड लौं मन मैं गुन्यो।
आस करन कौं भौ फरमान। वीरसिंह को घालहि मान ॥१५॥

अकबर से वीरसिंह की शिकायत की गई। वह एक दण्ड विचार करता रहा। वीरसिंह के मान का नाश करने के लिये आसकरन को आज्ञा दी गई।१५।

रामसाहि कहं लीजै साथ। राह चलाइ लगावहि हाथ।
माथैं मान लियौ फरमान। तबहीं गढ़ तैं कियो पयान ॥१६॥

राम शाहि को साथ ले लो। जहां कहीं भी मिले, वहीं पर आक्रमण किया जाय। अकबर बादशाह की आज्ञा को स्वीकार कर गढ़ से आसकरन चल दिया ॥१६॥

दल चतुरग चौगुने चाउ। मेल्यो आइ चांद पुर गांव।
राजा राम साहि तह गए। मिले जगमनि भय के लए ॥१७॥

साथ में चतुरंगिनी सेना ली और उस समय मन में अत्यधिक उत्साह था। चांदपुर ग्राम में आकर डेरा डाल दिया। वहीं पर राजा रामशाहि गये और भयभीत होकर जगमनि से मिले ॥१७॥

सकिले सिगरे मैंना जाट। नहटा नाहट गूजर जात।
मिल्यौ हसन खां जाइ पठान। अरु हरदौल पवार सुजान॥१८॥

मैना, जाट, नहटा, नाहट, गूजर (ये सभी नीच जातियां है) जाति के सभी लोग इकट्ठा हुए। पठान और हरदौल से जाकर हसन खां मिला।१८।

राजाराम पँवार सुजान। और हसन खां प्रबल पठान।
इन पूरब दिसि कियो मिलान। उत्तर करन जगमनि जान॥१६॥

राजाराम चतुर पवार था और हसन खां चतुर पठान। ये दोनो पूर्व दिशा में आकर मिले और जगमनि उत्तर दिशा की ओर गया ॥१६॥

इन्द्रजीत अरि मर्दन आप। वीरसिंह औ राउ प्रताप।
छाड़ि बड़ोन तिहूँ नर नाह। चौकी करी दुहुँ दल माह ॥२०॥

इन्द्रजीत, वीरसिंह तथा प्रतापराउ ने अपने आप शत्रुओं का विनाश किया। इन्होंने बड़ौन को छोड़कर युद्ध के मैदान में आकर डेरा जमा दिया ॥२०॥

दिन दिन दूनो ढोवा होइ। फिरि फिरि जात सकल मद खोई।
ऐसी भांति बहुत दिन भए। जगमनि आसकरन पह गए॥२१॥

नित्यप्रति ठेवा दूना ही होता जाता था । बार-बार गर्व का विनाश हो जाता था । इसी प्रकार जब बहुत दिन बीत गये तब जगमान आसकरन के पास गया ॥२१॥

करन कह्यो सुनु, जगमनि धर ! । परम ढीठ ये तीनों वीर ॥
कहै जगमनि माथौ ढोरि । यह सब राम साहि की खोरि ॥२२॥

करन ने कहा कि हे धीर जगमन ! सुन ये तीनों ही वीर अत्यधिक ढीठ हैं । जगमनि ने माथा ठोककर कहा कि यह सब रामशाहि के कारण है ।२२।

छांड़ो राजा अपनी टेक । ये चार्यौ भैया हैं एक ॥
आसकरन सुनि रिस बस भए । राम साहि के डेरा गए ॥२३॥

हे राजन् ! तुम अपनी टेक को छोड़ दो । ये चारों भाई एक हो हैं । ऐसा सुनकर आसकरन खा कुपित होकर रामशाहि के डेरे में गया ॥२४॥

राम कियो आदर बहु भांति । उठी कियो ससि तैं ही राति ॥
सकुचि कह्यो तब दूलह राम । आए राज इहां किहि काम ॥२४॥

रामशाहि ने बहुत अधिक आदर किया । अत्यधिक संकुचित होकर दूल्हा राम ने कहा कि आप यहां किस काम से आये हैं ॥२४॥

सुनियों राम वचन के बनै । बोल्यो हसनखान सों कर्नै ॥
कटकु साजि आयो इहि देस । देस देस के जोरि नरेस ॥२५॥

रामशाहि के बातों को सुनकर कर्न हसनखां से बोला कि तुम देश देश के राजाओं को जोड़कर इस देश में सेना लेकर आये हो ॥२५॥

आए विरसिंह देव की ओर । केवल रामसाहि की जोर ॥
मेरी गई रही कै माम । बिगरत सबै साहि के काम ॥२६॥

केवल रामशाहि के बल पर वीरसिंह पर चढ़कर आये हो । मेरी तो सारी ममता ही नष्ट हो गई है रामशाहि के सभी काम बिगड़ते जा रहे हैं ।२६।

देखहु विधि ससि सोभन कियौ। करिके बहुरि कुलच्छन दियो ॥
समझि कह्यौ तब दूलह राम। करहु सु तिहि सुधरै सब काम ॥२७॥

विधि ने सब प्रकार से चन्द्र को शोभा दी है किन्तु इतना होने पर भी उसे कलंकित कर दिया है। उस समय दूलहराम ने कहा कि अब ऐसी युक्ति बताओ कि जिसमें सभी बिगड़े हुए काम बन जायें ॥२७॥

ससि तम पिये देखिये अक। भूलि लोक तेहि कहत कलक ॥
तब हँसि आसकरन यह कह्यौ। कहे बिना अब जाइ न रह्यौ ॥२८॥

चन्द्रमा अधकार को पी लेता है फिर भी संसार उस भूल से कलंकित कहता है। इस समय हँसकर आसकरन ने कहा कि बिना कहे हुए अब मुझसे रहा नहीं जाता है ॥२८॥

गढ़ में बैठि रह्यौ इन्द्रजीत। मन क्रम वचन तुम्हारो मीत ॥
जाहि तुम्हारौ लाग्यौ काम। तासौं क्यों करिहौं सग्राम ॥२६॥

गढ़ में बैठा हुआ इन्द्रजीत तेरा मन वचन कर्म से मित्र है। जिससे तुम्हारे काम निकलेगा उससे तू कैसे संग्राम करेगा ॥२६॥

यह सुनि बोल्यौ राजाराम। करनौ मोहि साहि को काम ॥
दिन उठि करों मोरचे नए। घर बैठे गढ़ कौने लए ॥३०॥

यह सुनकर राजाराम बोला कि मुझे शाहि का काम करना है। इ लिये नित्य उठकर नये मोरचे बनाओ। आज तक किसी ने घर बैठकर युद्ध नहीं किया है ॥३०॥

बहुरे कर्न महा सुख पाइ। राम मोरचा दिये चलाइ ॥
कीनें जाइ मोरचा जबै। प्रबल पहारी दौरे तबै ॥३१॥

कर्न अत्यधिक सुख पाकर वापस आया। रामशाहि ने अपना मोर्चा लगा दिया। तब रामशाहि ने अपना मोर्चा लगाया तब पहाड़ी लोग आक्रमण के लिये दौड़ पड़े ॥३१॥

भागे सुभट मोरचा छांड़ि। जूझे मायाराम रन मांड़ि ॥
मायाराम सो भायहि भरे। सुनतहि राम महारिस भरे ॥३२॥

मायाराम युद्ध स्थल में मर गया और सभी मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए। भाई मायाराम के मरने का समाचार सुन कर रामशाहि बहुत कुपित हुआ ॥३२॥

त्रिभंगी

सुनि प्रोहित जुज्झै, लाज अरुज्झै बैर बढ़ै।
जह तहं गज गज्जिय, दुंदुभि बज्जिय, सज्जिय सभट तुरंग चढ़ै।
तुपकैं सर छुट्टहिं, तट्टर टुट्टहिं, घुट्टहिं कायक पच्च बनैं।
जुज्झें कुल नायक, आलय पायक युद्ध विनायक क्रुद्ध घनैं ॥३३॥

प्रोहित सुनकर विवाद करने लगे। लज्जा में वे उलझ गये और बैर बढ़ता ही गया। इधर उधर हाथी गर्जना कर रहे हैं, दुंदुभी बज रही है घोड़ों पर चढ़कर वीर सज रहे हैं। तोपों से गोले छूटे रहे हैं। तट्टर टूट रहे हैं। कुछ कायक पच्च बने हुए घुट रहे हैं। कुलों के नायक आहत हुए और पायक आलय अत्यधिक कुपित हुआ ॥३३॥

इहि विधि ढोवा किये अपार। दुहू ओर बहु भयी हृय्यार ॥
उट्ठके गाउं सो डेरा करे। हय गय नर बहु घायनि भरे ॥३४॥

इस तरह से अनेक प्रकार का ढोवा हुआ। दोनों ओर से काफी लड़ाई हुई। युद्ध के बाद उठकर गाँव में जाकर डेरा डाला। हाथी, घोड़े, मनुष्य सभी घायल हो गये थे ॥३४॥

कह्यो कर्न सौं राम नरेस। लरे लोग मेरे उठि पेस[१] ॥
जो यह गांउं हमैं तुम देहु। तौ हम जूझु करैं करि नेहु ॥३५॥

राजा रामशाहि ने कर्न से कहा कि मेरे सामने उठ उठ कर लोग युद्ध कर रहे थे। यदि यह ग्राम तुम मुझे दे दो तो मैं युद्ध करूँ ॥३५॥

(१) आगे।

कर्न कह्यो सुनि राजा राम। ये तौ लगत पवायें ग्राम॥
राम नृपति रुख पायौ दान। उचकि चले नृप सहित पठान॥३६॥

राजाराम की बात को सुनकर कर्न ने कहा कि यह गाँव पवायें में लगता है। जब राजाराम ने कर्न का रुख दान का पाया तब उत्साह के साथ युद्ध करने के लिए पठान के साथ चल दिया॥३६॥

उचकि गये जब राजा राम। उचक्यो करन जगमनि वाम॥
ऐसौ बीरसिंह परताप। ह्वै गयो दस दिसि कटक कलाप॥३७॥

जब उत्साह के साथ राजाराम चला गया तब विजेता कर्न का वाम अंग फड़का। वीरसिंह का ऐसा प्रताप है कि दसों दिशाओं का युद्ध कठिन हो गया है॥३७॥

दोहा

दान लोभ इहि भांति सुनि उपजे बधु विरोध॥
कपटनि लपटे अटपटे सुनु पटु प्रगट्यौ क्रोधु॥३८॥

इस प्रकार से हे दान लोभ! दोनों भाइयों के बीच में विरोध उत्पन्न हुआ। कपट में फँसे होने के कारण क्रोध उत्पन्न होता रहा॥३८॥

आयो दच्छिन दिसि मन धरैं। बैरम खां के सुत आगरैं॥
जगन्नाथ अरु दुर्गा राउ। दन्है आदि दे बहु उमराउ॥३९॥

बैरम खाँ के पुत्रों को आगे कर दक्षिण दिशा में आये। जगन्नाथ और दुर्गाराव को बहुत सी सेना और उमराव दिए॥३९॥

अकबर पात साहि नरनाथ। रामसाहि नृप दीनैं साथ॥
राजाराम मिलें तब ताहि। अति आदर कीनौ चित चाहि॥४०॥

अकबर ने राम शाहि को भी साथ भेजा? राजा उसे आदर के साथ आगे मिले॥४०॥

बीरसिंह पुनि कियो हुलास। पठए तिन पह गोविंददास॥
राम साहि बहु द्विज अकुलाइ। अपने डेरहि लयौ बुलाइ॥४१॥

वीर सिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके पास गोविन्द दास को भेजा। रामशाहि ने व्याकुल होकर अपने डेरे में ब्राह्मण को बुला लिया ॥४१॥

दान मान भय भेद बखानि। कियौ विप्र नृप अपने पानि ॥
संग लै आवै संग लै जाइ। साति द्योस इहि रीति रहाइ ॥४२॥

भयमुक्त होने के कारण नृप ने अपने हाथ से ब्राह्मण दान दिया। *साथ में लाये और साथ में ही ले जाये, इस प्रकार से सात दिन और* रात रहना चाहिये ॥४२॥

तौलौं राख्यौ अपने हाथ। यह दुख राम साहि नर नाथ ॥
जौ लगि दौलत खान पठान। आनि सैमरी करयौ मिलान ॥४३॥

उस समय तक अपने हाथ में रखो। हे नरनाथ रामशाहि! यह दुख है। जब तक दौलतखान पठान है तब तक सैमरी में आकर मिलते रहो ॥४३॥

प्रगट पवायें भौ आकूत। आयें बैरम खाँ कौ पूत ॥
यह कहि विप्र बिदा करि दयौ। कहा करैं हम बहुतो कियौ ॥४४॥

पवायें में आकूत प्रकट हो गया है। वहाँ पर बैरमखाँ का पुत्र आये। इस प्रकार से कहकर ब्राह्मण को विदा कर दिया। हम जो कुछ भी कर सकते थे, किये ॥४४॥

नाहिंन मानत दौलतिखांन। जूझहु जनि भजि राखहु प्रांन ॥
आंनि कह्यो यह गोबिंद दास बोलें बीरसिंह देव प्रकास ॥४५।

यदि दौलत खाँ नहीं मानता है, तो अपने प्राणों की रक्षा भाग कर करो जब गोविंद दास ने वापस आकर यह कहा, तब वीरसिंह ने प्रकट रूप में कहा ॥४५॥

यह द्विज दै भैया अरु राज। दुहु मिलि कीनो परम अकाज ॥
तब तिहि कुंवर भगायौ गाउं। आपुन तमकि रह्यौ तिहि ठाउं ॥४६॥

इस ब्राह्मण और भाई ने मिलकर बहुत अकाज किया है। उसने कु वर को गाँव से भगा दिया और स्वयं वहाँ पर आकर युद्ध के लिए डय भी नहीं ॥४६॥

दौलति खान साथ को गनै। मुगल पठान खान बल घनै॥
वीरसिंह अति रिझवै ताहि। या वन तैं उठि वा वन जाहि॥४७॥

दौलत खाँ के साथियों की गिनती नहीं हो सकती है। मुगल, पठान, खान सभी तो हैं। वीरसिंह उन सभी को एक जगल से दूसरे जगल में जा जा कर परेशान कर रहा है ॥४७॥

आगे मारै पाछे जाइ। हरै पाछिले अगिले आइ॥
तहा सबै ते घेरत फिरै। कुंवर न तिनकौ घेरो घिरै॥४८॥

आगे मारकर फिर पीछे चला जाता है। आगे आकर फिर पीछे की ओर जाता है। सभी लोग कु वर को घेरने का प्रयास करते हैं, किन्तु कोई भी घेर नहीं पा रहा है ॥४८॥

सोयौ नहीं न खायौ खान। पचि हार्यो हिय दौलति खांन॥
हाथ न आवै कुंवर समर्थ। ज्यों जड़ कै जिय पूर्न अनर्थ॥४६॥

दौलत खाँ न तो सोया और न कुछ खाया, किन्तु फिर भी सब प्रकार से वह हार गया। किसी भी प्रकार से कु वर हाथ नहीं लगा जिस प्रकार से जड़का जीवन पूर्ण अनर्थ होता है ॥४६॥

गये पठायें सब उमराउ। सुन्यो खान खाना सब भाउ॥
तवै दिये वसीठ पठवाइ। लिख्यौ लेख दै बहुत बड़ाइ॥५०॥

सभी खान-खाने पठानों को वापस हो गये। तभी लेख को बढ़ाकर लिखा और बसीठी के हाथ से उसे भेज दिया ॥५०॥

जो तुम मिलहु मोहि इहि वार। बहुत बढ़ाऊँ राजकुमार॥
तिन कहँ मिलन कुंवर तब गये। दौलति खां आगे ह्वै लये॥५१॥

यदि इस बार तुम मुझसे मिल लोगे तो तुम्हें राजकुमार बहुत आगे बढ़ा दूँगा। दौलत खाँ से मिलने के लिए कुंवर गये। दौलत खाँ ने आगे बढ़कर स्वागत किया ॥५१॥

मिले नवाब बहुत सुख पाइ। डेरह कह पठये सुखपाइ ॥
जबही जाइ कुंवर दरबार। लै बहुरै बहु मुक्ख अपार ॥५२॥

जब कभी भी कुंवर दरबार में जाता था, तभी सुखी होकर वह वहाँ से वापस आता था ॥५२॥

दच्छिन दिसि कौं कियौं पयान। बीरसिंह लै संग सुजान ॥५३॥

वीरसिंह को लेकर दक्षिण दिशा में प्रयाण किया ॥५३॥

॥ मनोरमा भुज छंद ॥

लुकै धूड़ भाना गई आसमाना। बड़े विंध्यसाना भये धूरि धाना ॥
तला तोय माना भये मुक्खमाना। कलगी बिठाना तिलगी न ठाना ॥
सुविद्या निधाना तजे ग्यान पाना। करैं जातु धाना पलानी पलाना ॥
डगे ठानठाना मुदिग देवताना हमै छत्र नाना चलै खानखाना ॥५४॥

आसमान में सूर्य छुप गया। आकाश धूमिल हो गया। तालाब पानी से भरे हुए हैं। कलँगी को धारण कर लिया किन्तु तिलगी के लिए कोई निश्चय नहीं किया। विद्या के निधान ने ग्यान पान सभी कुछ छोड़ दिया। जातुधान इधर उधर पलान करने लगे। जिस किसी भी दिशा में खानखाना अपने कदमों को बढ़ा देता है, उसी दिशा में अनेक छत्र हिलने लगते हैं ॥५४॥

॥ चौपही ॥

नियरी कछु धरार जब रही। बीरसिंह तब बिनती कही ॥
मो कहँ देइ नवाब बडौनि। मैं सबही राखौं तिहि भौन ॥
सुचित होहि मेरे रजपूत। हौं अति सेवा करौं अभूत ॥५५॥

जब बराइ निकट आया, तब वीरसिंह ने विनती की कि मुझे बड़ौन दे दो तो मैं सभी को घर में रख लूगा। मेरे सभी राजपूत प्रसन्न होंगे और मैं तुम्हारी बहुत सेवा करूँगा ॥५५॥

सुनि नवाब यह उत्तर दियौ। मैं अपनो घर दछिन कीयौ ॥
दछिन मैं मुँह माग्यौ देउँ। अपने सम तुम कौ करि लेउँ ॥५६॥

नवाब ने यह सुनकर उत्तर दिया कि मैंने अपना घर दक्षिण में बनाया है। दक्षिण में जो कुछ भी तुम मांगो, वहां मैं तुम्हें दूँगा और तुम्हें अपना ही समझूंगा ॥५६॥

वीर कह्यौ दछिन किहि काज। हौं बड़ौनि की बाँध्यौ लाज ॥
बिनु बडौन पल एक न रहौं। झूठी क्यों नवाब सौं कहौं ॥५७॥

वीरसिंह ने कहा कि दक्षिण मेरे लिए किस काम का है। मुझे तो बड़ौन की लज्जा रखनी है। बिना बड़ौन के मैं एक क्षण भी विश्राम नहीं ले सकता। मैं नवाब से झूठी बात क्या कहूँ ॥५७॥

यह बिनती कर राजकुमार। डेरा कीनो आनि बिचार ॥
तब सम्राम साहि इहि बीच। सौंह करी हरिदीनें बीच ॥५८॥

यह विनती करके राजकुमार ने डेरा डाल दिया और हरि दीन को बीच में करके सम्रामशाहि ने सौगन्ध खाई ॥५८॥

सब मिलि कीजौ चलनु बिचारु। चल्यौ अहेरैं राज कुमारु ॥
करे मिलान बीच द्वै चारि। आयौ अपन देस मझारि ॥५६॥

सभी ने मिलकर विचार किया और शिकार के निमित्त निकल पड़े। बीच में दो चार मिलान किये और अपने देश के बीच में आ गये ॥५६॥

आवत ही बातैं भगि गये। तब तन मन सुख पूरन भये ॥
सुन्यौ नवाब वीर घर गयो। अपनौ मन अति दुचितौ कियौ ॥
तब तिहि समैं छिद्र यह पाइ। रामपूत यह विनयौ जाइ ॥६०॥

आते ही सब थाने को भाग गये, इससे मन बहुत सुखी हुआ। नवाब ने जब सुना कि बीरसिंह घर गया तब उसका मन उच्चट गया। उस समय इस छिद्र को पाकर रामशाहि ने जाकर बिनती की ॥६०॥

वह हम कौं लिखि दीजै ठान। करिहैं दूरि कै हरि हैं प्रान॥
दयौं नवाब लेख लिखि हाथ। पठयौं दौलति खां के साथ॥६१॥

यदि आप उस स्थान को मुझे लिखदें तो हम उसे उस स्थान से या तो दूर हटा देंगे या मार डालेंगे। नवाब ने पत्र लिख दिया और दौलत खाँ के साथ भेज दिया ॥६१॥

दौलति खां गोपाचल गये। राजकुंवर घर आवत भए॥
सजि दल बल परि जन परिवार। गयो पवायें राजकुमार॥६२॥

दौलत खा ग्वालियर गया और वहाँ उसने राजकुमार को घर आते हुए देखा। दलबल को सजाकर तथा परिजन परिवार के लोगो को लेकर राजकुमार पवायें गया ॥६२॥

राउ भुपाल बली इन्द्रजीत। राउ प्रताप सदा रनजीत॥
वीर सिंह के हित के लये। ये चारयौ एकै ह्वै गये॥६३॥

इन्द्र जीत सभी भूपालो में अधिक बली है। प्रतापराव सदा रण मे विजयी होने वाला है। बीरसिंह के हित के निमित्त मे चारो एक हो गये ॥६३॥

सो चारयौ ठाकुर भये एक। अरु लरिबै की कीनी टेक॥
दौलति खान इतै पगु दयौं। फिर बन दछिन ही कह गयौ॥६४॥

चारो ठाकुरो ने एक होकर युद्ध करने का निश्चय किया। दौलत खाँ ने पहले तो इधर पैर बढ़ाया, किन्तु फिर दक्षिण दिशा को वापस लौट गया ॥६४॥

साहि सग्राम सबहि पछिताइ। आए फिरि ओड़छे लजाइ॥
आवन जान दिये करि कानि। बीरसिंह देउ भतीजे जानि॥६५॥

संग्राम साहि फिर लज्जित होकर ओड़छा भाग आये। वीरसिंह ने भतीजा समझ कर और ग्लानि मानकर आने-जाने दिया ॥६५॥

॥ हीरा छंद ॥

सुनहु एहु, तजि सनेहु बहु विरोध पाप कौ ॥
तीसरे जु ठयौ अफलु भयौ पूत बाप कौ ॥
कहहिं और करहिं और, औरै चित आनिबौ।
जगतु कहहि वीर सहहि ईस सहै जानिबौ ॥६६॥

इधर सुनो। स्नेह को छोड़कर पाप का विरोध किया है। तीसरे असफलता का कारण पिता पुत्र में ही संघर्ष हो गया। कहते कुछ हैं, करते कुछ और हैं और मन में कुछ रखते हैं। संसार वीरसिंह को ईश्वर का अंश मानता है ॥६६॥

इति श्रीमत्सकल भूमंडला खंडलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विंध्यवासिनी संवादो वधविरोध वर्णन नाम तृतीय प्रकाश ॥३॥

॥ दान उवाच ॥

बहुतु दान यह अजलि जोरि। प्रनत देव तैंतीस करोरि ॥
और जु कहियै पाप विरोध। सब तैं तुम कौतुहल प्रबोध ॥१॥

दान ने हाथ जोड़ कर कहा कि तैंतीस कोटि देव हैं। कृपया पाप विरोध के सम्बन्ध में और भी कुछ कहें क्यों कि तुम्ह उस सबका अधिक ज्ञान है ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

दानु दुराइ कपट कहं हिये। इंद्रजीत के हित को लिये ॥
वीर सिंह सौं दूलह राम। सौंह करी छ्वै सालिग्राम ॥२॥

हे दान! इन्द्र जीत के लिये दूलह राम ने कपट को हृदय म छिपाकर शालिग्राम को छूकर सौगन्ध खाई ॥२॥

मेरी सेव करी तुम तात। सबै जानिबो एकै बात ॥
सुख सो रहौ जाइ तुम धाम। जा जन पद की रछा काम ॥३॥

हे तात! तुमने मेरी सेवा की है। मैं सब बातों का मूल एक ही बात मानूंगा। तुम सुखपूर्वक जाकर अपने घर पर रहो। इस जनपद की रक्षा का भार मेरे ऊपर है ॥३॥

तुम रच्छहु मो कहँ चितु चाहि। हौं रच्छहु तुम कौ भजि साहि।
एक समै बुधि बल अवगाहि। दच्छिन चले अकब्बर साहि ॥४॥

मेरी इच्छा यही थी कि तुम रक्षा का भार लो। मैं तुम्हारी सब प्रकार से रक्षा करूँगा। बुद्धि एवं शक्ति का अवगाहन कर अकबर दक्षिण दिशा को चला ॥४॥

साहि मुरादि गये परलोक। सुनि यह उर बहु उपजे सोक ॥
मन ही मन सोचै सुलतान। आनि धोरपुर करयौ मिलान ॥५॥

मुरादशाहि के परलोक गामी होने से सुलतान के हृदय को बड़ा दुख हुआ। सुलतान अपने मन में विचार करने लगा कि किसी प्रकार धौरपुर मिलान हो जाय ॥५॥

सुनि अक्ताने राजा राम। भूलि गयौ तिहि बल धन धाम ॥
सुभ तिथि वार नखत तजि भौन। सत्वर राजा गये बड़ौन ॥६॥

राजाराम सुनकर उकता गया। वह अपना धन, धाम शक्ति आदि सब कुछ भूल गया। शुभ तिथि, दिन नक्षत्र को छोड़कर राजा तुरन्त ही अपने घर बड़ौन चले गये ॥६॥

इहि विधि दिल्लीपति जिय जानि। गोपाचल गढ मेले आनि ॥
वीर सिंह की सासन, सुनी। रैयत रावत हैं अति घनी ॥७॥

दिल्ली पति ने ऐसा अपने मन में विचार कर ग्वालियर की ओर चल पडा। वीरसिंह के शासन के सम्बन्ध में सभी कुछ सुना और राजा तथा प्रजा दोनों ही अधिक धनी हैं ॥७॥

तब बोल्यौ कछवाहा राम। मोहिं परयौ दच्छिन को काम ॥
मैं सब गुनह छमौं सुख मानि। वीर सिंह कह मिलऊ आनि ॥८॥

तब कछुवाहा राम बोला कि मुझे दक्षिण की ओर काम है मैं तुम्हारे सभी गुनाहों को क्षमा कर दूगा यदि तू वीरसिंह को मुझसे मिला दे ॥८॥

राजा जबही कियौ पयान। आइ गयौ तब ही फरमान ॥
वीर सिंह आगे ह्वै लये। अति आदर अहदिन कौ दये ॥९॥

राजा जब पयान करने लगा तब फरमान आ गया। वीरसिंह ने आगे बढ़कर अहदियों का आदर किया (बादशाहों के यहा अहदी नौकर रहते थे, जो बड़ा काम आने पर भेजे जाते थे) ॥९॥

अहदिनि कौ सुभ डेरा दये। वीरसिंह राजा पहँ गये ॥
हम कौं दीजै सीख दिवान। सीख तुम्हारी सदा प्रमान ॥१०॥

अहदियों को शुभ स्थान ठहरने के लिये दिया और फिर राजा से मिलने गये। वीरसिंह ने कहा कि हे दीवान मुझे शिक्षा दीजिये। तुम्हारी सीख को मै अवश्य मानूँगा ॥१०॥

॥ वीर सिंह उवाच ॥

राजा कह्यो सुनौ हो वीर। तुम सों हम बोलैं गंभीर ॥
हौं जु जातु हौं सेवा साहि। तुमही लगि चिंता चित दाहि ॥११॥

राजा ने कहा कि हे वीरसिंह! तुम से गंभीरता के साथ मैं बोल रहा हूं। यदि शाहशाहि की सेवा में मैं जाता हूं तो तुम्हें दुख होगा ॥११॥

या कहि राजा कियौ पयान। गोपाचल भेंटे सुलतान॥
राम साहि देखत ही चित्त। सुख पायौ दिल्ली के मित्त॥१२॥

यह कहकर राजा ने प्रस्थान किया। ग्वालियर में जाकर सुलतान से भेंट की। दिल्ली के मित्र रामशाहि को देखते ही चित्त अत्यधिक सुखी हुआ॥१२॥

कै बिचार मन बुद्धि निधान। तबही कूच कियौ परमान॥
जगम जीवन कौं जलराइ। उमगि चल्यौ जनु कालहि पाइ॥१३

मन बुद्धि से विचार करके कूच किया। माना काल को पाकर जीवन जगम के राजे सभी निकल पड़े हों॥१३॥

देस देस के राजा घने। मुगल पठाननि कौ को गनै॥
जहां तहां गज गाजत घनैं। पुरवाई के जनु घन घनै॥१४॥

सभी देशों के राजे आये। मुगल पठानो को तो गिना ही नहीं जा सकता था। जहां तहां सभी गर्जना कर रहे थे। पुरवाई के माना घने बादल से छा गये हैं॥१४॥

चौपद द्रुपद कहां लौं कहौं। कहे लहौं तो अतु न लहौं॥
या रग एक चलेई जात। एक देखिये पीवत खात॥१५॥

चौपद और द्रुपद के सम्बन्ध में कहां तक कहा जाय और यदि कहना प्रारम्भ करूँ, तो अन्त नहीं मिलेगा। सभी एक ही रंग में मस्त चले जा रहे हैं। उसमें से कुछ खा पी रहे हैं॥१५॥

उलहत ऊट एक देखिये। लादत साजु एक पेखिये॥
एक न तबू दियौ गिराइ। रखत उठावत एक बनाइ॥१६॥

कोई ऊँट को उलाह रहा है और कोई उस पर साज लाद रहा है। कोई तबू गिरा रहा है और कोई उन्हें ठीक करके रख रहा है॥१६॥

बनिक चलत इक लादि अपार। एकनि के बैठे बाजार॥
दल में सब कौ चित्त भुलाइ। कूच मुकाम न जान्यौ जाइ॥१७॥

कुछ बनिये लदान करके चल रहे हैं। कुछ बाजार में बैठे हुए हैं। दल के सभी लोग कूच करने के मुकाम को भूल गये ॥१७।

और अति उताइले भये। साहि अकब्बर नरवर गये ॥
सुनि कदरा सिंह की घर्नी। छोड़ि गयद जात वह बनी ॥१८॥

अत्यधिक उतावले होकर बादशाह अकबर नरवर को गये। जिस प्रकार से सिंह की कदारा न आता हुआ सुनकर हाथी उस स्थान को छोड़कर चला जाता है। ॥१८॥

त्यों सुनि वीरसिंह की ठौनि। अकबर डेरी दई बड़ौनि ॥
नरवर तें जब घाटी गए। तब देखे पुर उज्जर भए ॥१६

उसी प्रकार से वीरसिंह के निवास स्थान को सुनकर अकबर ने बड़ौन में डेरा डाल दिया नरवर से जब अकबर घाटी गये तब उन्होंने देखा कि सारा पुर उजड़ गया है। ॥ १६॥

भागे इन्द्रजीत के लये। साहि कछू मुनि रोसिल भये ॥
ताही बिच अहदी फिरि गए। तिन सों वचन भाति इमि भये ॥२०॥

इन्द्रजीत के लिये भगे यह सुनकर शाह कुछ रुष्ट हुआ। उसी बीच पुनः अहदी आये, उनसे इस प्रकार से बात हुई ॥२०॥

जाइ कहौ को सेवा करै ? नेंकहु वीरसिंह नहि डरै ॥
रामसाहि बोले, मुलवान ? कह्यौ बचन यह बुद्धि निधान ॥२१॥

उनकी सेवा कौन करे, वीरसिंह थोड़ा भी तो नहीं डरता है। रामसाहि बोला ! हे मुलतान इन लोगों ने बुद्धियुक्ति बात कही है ॥२१॥

तू या भू मंडल कौ राज। अरु तेरे बहु दल बल साज ॥
इन्द्रजीत अरु वीरसिंह देव। कै करि दूरि, कराऊँ सेव ॥२२॥

तू इस भूमण्डल का राजा है और तेरे पास बहुत बड़ी सेना है। इन्द्रजीत और वीरसिंह को दूर करके तुम्हारी सेवा कराऊँ ॥२२॥

विनती करौं राम कर जोरि। देहु बड़ौनि तजौं पुर कोरि ॥
याहि मारि कैं मारौं याहि। दछिन की पगु धारौं साहि ॥२३॥
राम शाहि ने हाथ जोड़कर विनती की कि अगर यदि बड़ौन मुझे देदें तो मे पुर को छोड़ दूँ। दोनों को मारकर फिर मैं दक्षिण दिशा की ओर चलूँ ॥२३॥

साहि कह्यौ सुनु राजा राम। जौं दोऊ ये करि हैं काम ॥
यह चलाइ बड़ो जस होइ। पच हजारी करिहौं तोहि ॥२४॥
शाह ने कहा कि राजाराम यदि ये दोना काम करोगे, तो तेरा बड़ा यश होगा और मैं पच हजारी का अफसर तुम्हें बना दूगा ॥२४।

जौं तू बाँचिहैं भैया जातु। मेरो वचन सत्य करि मातु ॥
जितने भूमि बुंदेला जीउ। सबही कौं करिहौं निर्जीव ॥२५॥
यदि उसे भैया समझ कर तू बचाने का प्रयत्न करेगा, तो मेरे वचनों को तू सत्य मानले कि बुंदेलखण्ड में जितने भी बुंदेले हैं उन सभी को मार डालूँगा ॥२५।

बोले राजसिंह नर नाथ। पठये रामसाहि के साथ ॥
घोरी दै दीनी सर पाउ। साथ दिये दूजैं जुव राउ ॥२६॥
रानशाहि के साथ राजसिंह को भेजा। कुछ साथ में घोड़े दे दिये और दूसरे युवराज को भी साथ में भेज दिया ॥२६।

तब उन कूच किरी सुल्तान। ये पठये इत बुद्धि निधान।
दुहू राज तब दल बल साजि। घेरी विन बड़ौन गल गाजि ॥२७॥
जब उन लोगों ने कूच किया तब इन्होने इधर से बुद्धिमान लोगों को भेजा। फिर दोनों दलो ने अपनी सेनाओं को सजाकर बड़ौन को घेर लिया ॥२७॥

राउ प्रताप आपुहीं गए। इन्द्रजीत जोधा पठाये।
गए बड़ौन माँझ करि मोद। बहु भट वीरसिंह की गोद ॥२८।

प्रतापराउ अपने आप ही गया और इन्द्रजीत ने योधाओं को भेज दिया। प्रसन्नता के साथ वीरसिंह के अनेक योधा बडौन के बीच में गये ॥२८॥

पाइ सबै छल बल दल दाम। राजसिंह पहिराये ताम।
मतै कियौ दुहु राजनि तबै। कीजै संधि न विग्रह अबै ॥२६॥

छल बल से जब सेना और धन प्राप्त कर लिया तब राज सिंह ने ताम पहराया और दोनों राजाओं ने मिलकर विचार किया कि संधि करली जाय अभी विग्रह करने से कोई लाभ नहीं है। ।।२६।

पठै दिये वहँ राम वसीठ। हठ न करौजे कवहुँ ईठ।
छांड़ि देऊ दिन दोउ बडौन। हम फिरि जैहैं अपने भौन ॥३०॥

रामशाहि ने बसीठी के रूप में भेज दिया और कहा कि हठ करना अब उपयुक्त नहीं है। तुम दोनों ही बडौन छोड़ दो, ऐसा होने पर हम अपने घर वापस चले जायेंगे ॥३०।

वीरसिंह यह उत्तर दियौ। तुम हम बीच ईसही कियो।
कैसे आवैं हमैं प्रतीति। छल सौं आप न करै प्रीति ॥३१॥

वीरसिंह ने कहा कि हमारे तुम्हारे बीच में ईश्वर ने ही अन्तर कर दिया है। हमें किस प्रकार से आप के ऊपर विश्वास आये। आप छल कर रहे हैं और प्रीति दिखा रहे हैं। ३१।

उठि सो वसीठि राम पै आइ। बात वीर सो कह्यो बनाइ।
उत्तर दीनौ राजा राम। वे सब आहि साहि के काम ॥३२॥

बसीठी उठकर राम के पास आया और उसने वीरसिंह से बातें बना कर कहा। राजाराम ने कहा कि शाह के तो ये नित्य के काम हैं। ३२।

येई वोलि हमारे चित्त। वोले वोल जु तुम सों मित्त।
राजसिंह के पनहि मनाइ। फिरि वैठो अपने घर जाई ॥३३॥

उन्होंने वाजो को कहा जो कि हमारे चित्र की मित्रता की परिचायक लगने वाली थी। राजसिंह की पनह को मानकर अपने घर में जाकर बैठ गया ॥३३॥

वीच दिये तव सर सिर मौर। अब कै दीजैं बीच पचौर।
बहुरि वसीठ बड़ौनहिं गये। उनके वचन सबै सुनि लये ॥३४॥

पहले बीच में शिरमौर दिया और अब की बार बीच में पचौर दीजिये। अनेक वचनों को सुनकर वसीठी फिर बटौन गया ॥३४॥

वीरसिंह तब कियौ विचार। जो पैहै परमेश्वर सार।
जोऊ भूठों परिहैं जाहि। सोई हरि सहरिहै ताहि ॥३५॥

वीर सिंह ने फिर विचार किया और सोचा कि यदि ईश्वर में थोड़ा भी सार है तो भूठा सिद्ध होने वाले का अवश्य संहार करेगा ॥३५॥

जेठो भैया दूजौं राज। इनकी हमें सेव सों काज।
जो कछु राजा आयसु दीयौ। सिर पर मानि सबै हम लीयौ ॥३६॥

एक तो ज्येष्ठ भाई है और दूसरे राम। मेरा तो मुख्य काम इनकी सेवा करना ही है। राजा ने जो कुछ भी आज्ञा दी उसे मान लिया ॥३६॥

वीच लिये भैया हरि वस। आनन्दी प्रोहित द्विज अस।
अरु देवा पायक परवान। बीच लिये फिरि श्री भगवान ॥३७॥

बीच में भैया हरिवंश को डाला और द्विज अंश आनन्दी पुरोहित को। और देवा को प्रमाण मानकर भगवान का स्मरण किया ॥३७॥

दुहुं नृप सोहैं करी सुभाउ। वीरसिंह तब छोड्यौ गाउ।
जारि उजारे भवन प्रकार। भूली राजहिं सोंह सम्हार ॥३८॥

दोनों राजाओं ने जब सौगन्ध खाई तब वीरसिंह ने गाव छोड़ दिया। सौगंध खाने पर राजा को यह भूल गया कि उसने जलाकर अनेक गावों को उजाड़ दिया था ॥३८॥

राम साहि रामसिंह सों कही। साहि दई मोको यह मही।
तब उन कही दिखावहु छाप। रामदास की राखहु थाप ॥३६॥

रामशाहि ने रामसिंह से कहा कि अकबर ने यह भूमि मुझे दी है। तब उन्होंने कहा कि आप मुहर दिखावें और राम दास की थाप को रख लें ॥३६॥

ऐसे ही क्यों दीजै ठाउ। ये तो लगत पचावै गांउ।
यह विचार किय राजाराम। परो साहि को दक्खिन काम ॥४०॥

इस प्रकार से इस स्थान को कैसे दिया जा सकता है। यह तो पचावे में गाव लगता है। राजाराम ने यह विचार किया कि बादशाह का इस समय दक्षिण की ओर काम पड़ गया है ॥४०॥

भैये हतिये परम अज्ञान। रामसिंह तब कियो पयान।
राम चले तब दुचिते भये। रामसिंह तब डेरहिं गये ॥४१॥

अज्ञान से भैया को मारा जाए। रामसिंह ने वहां से तब प्रस्थान किया। रामसिंह तब कुछ चिंतित हुए। जब रामसिंह अपने डेरे में गये ॥४१॥

वीरसिंह पुर सूनो सुन्यो। यह विचार मन ही मन गुन्यो।
थोरे सुभट संग तब लये। वीरसिंह जू बड़वनि गये ॥४२॥

वीरसिंह ने पुर को शून्य सुना और अपने मन में यह विचार किया। थोड़े से योद्धाओं को लेकर वीरसिंह बडौन गया ॥४२॥

मैना एक गयो तब देखि। राजसिंह सों कह्यो विसेषि।
वीरसिंह पुर में नर नाथ। सुभट पचासक ताके साथ ॥४३॥

एक मैना देखकर राजसिंह से बोला कि वीरसिंह पुर में है और उसके साथ पचास योद्धा हैं ॥४३॥

सोवत जहां तहा भुव परे। कहुँ घोरे कहु आपुन खरे।
वड़े प्रात तुम घेरहु राज। तुमको जस दीनों भ्रजराज ॥४४॥

सभी इधर उधर पड़े सो रहे हैं। कहीं पर घोड़े खड़े हैं और कहीं पर स्वंय। प्रात काल ही तुम उसे घेर लो। ब्रजराज ने तुम्हें यह यश दिया है ॥४४॥

सुन्यौ दूत की बचन समाज। सबै लयो संग सेना साज।
चले दमोदर औ युवराज। डेरा रहे अकेले राज ॥४५॥

दूत के वचनों को सुनकर सम्पूर्ण सेना साथ लेली। डेरे में अकेला राजसिंह रह गया। दमोदर और युवराज भी साथ में चले ॥४५॥

पूजी भली कुवर की बात। घेरे घने वड़े ही प्रात।
अक बकाइ रावल सगृहे। लोगनि लपकि खड़िहरा[१] गहे ॥४६॥

कुवर की बात को मानकर सभी ने प्रात:काल ही नगर को घेर लिया। अकबका कर सभी इकट्ठा हुए और दौड़कर अपनी अपनी तलवारें को हाथ में लिया ॥४६॥ (१) तलवार

वकस राइ सुन्दर परधान। केसो चंपत राइ प्रमान।
मुकुट गौर जादौ वलचन्द। कृपाराम शुभ सावध सन्द ॥४७॥

बक्सराय, सुन्दर प्रधान, चंपतराय, मुकुटगौर, यादौ, कृपाराम आदि सब साथ थे ॥४७॥

निकसे सबै एकही मूठि। उमगे अपने पिय सौं रूठि।
एक एक इन मारयौ दौरि। दल सिगरे मैं पारो रौरि ॥४८॥

सब ने अपनी अपनी तलवारों को एक साथ ही म्यान से निकाल लिया और दौड़ करके एक एक को मारा, इससे सारे दल में हलचल मच गयी ॥४८॥

उठ्यौ दमोदर सपदि सम्हारि। सुभट दिये सब पुर में मारि।
तब ये अपने अपने ठौर। उठे उठाये जादौ गौर ॥४६॥

दमोदर सम्हलकर उठा और उसने नगर के सभी योद्धाओं को मार दिया, तब यादौ और गौर सभी अपने अपने स्थानों पर उठकर खड़े हुए ॥४६॥

इन्हें उठत गो धीरज नाठि[1]। भूठि गई सुभटनि की गांठि।
भैया वगस राइ तरवारि। हनै दमोदर दल सहारि ॥५०॥

इनके उठते ही धैर्य नष्ट हो गया। सुभटों का धैर्य ही छूट गया। भैया बगसराय ने अपनी तलवार से दमोदर की सेना का सहार किया ॥५०॥ (१) नष्ट

इहि विधि बीरसिंह उठि परे। गज दल हय पय दल खर भरे।
जहां तहां भजि चले नरिन्द। सिंह देखि के मनो करिन्द ॥५१॥

बीरसिंह के उठते ही हाथी घोड़े पैदल के दलों में हलचल मच गई और जहाँ तहाँ सभी उसी प्रकार से भागने लगे जिस प्रकार से सिंह को देखकर हाथी भागते हैं ॥५१॥

सोदर लै दामोदर भग्यो। भगे दमोदर मब दल डग्यो।
काहुहि काहू की न सम्हार। पवन पाइ ज्यों पत्र अपार ॥५२॥

भाई को लेकर दामोदर भगा, उसके भागते ही सेना के पैर उखड़ गये। कोई किसी को सम्हाल नहीं पा रहा है, जिस प्रकार से तेज वायु में पत्रों को सम्हालना कठिन होता है उसी प्रकार सेना की स्थिति हो गई ॥५२॥

भदौरिया जागरा अपार। जादव बड़ गूजर तिहिं वार।
कौन गनै सुभटन को साज। जूझे जूझ तहाँ युवराज ॥५३॥

भदौरिया, जागरा, यादव, गूजर आदि वीरों की कौन गिनती, युवराज तक उसमें जूझ गया ॥५३॥

एकनि ढाँहनि तें गिरि परे। बूड़ि इक सरिता मंह मरे।
इक्के गयन्दनि मारे चापि। इक्के मरे अपडर ही कापि ॥५४॥

कुछ लोग ढूहों के ऊपर गिर पड़े और कुछ नदी में डूब कर मर गये। कुछ को हाथियों ने अपनी सूंड में दबा कर मार डाला और कुछ अपने भय से ही काप कर मर गये ॥५४॥

ऐसो सुन्यो न देख्यो चाल। गोपाचल भगि बच्यो भुवाल।
बीच दिये ही त्रिभुवन राइ। वीरसिंह को कियो सहाइ ॥५५॥

इस प्रकार का युद्ध न तो कभी देखा ही था न और सुना ही था। राजा भागकर ग्वालियर में अपने को बचा सका और इसी बीच में त्रिभुवन राय आकर वीरसिंह का सहायक हुआ ॥५५॥

वीरसिंह के जय की गाथ। जग मो गावत नर नरनाथ ॥५६॥

वीर सिंह के यश की गाथा ससार के सभी नर और स्वामी गाते हैं ॥५६॥

भुजग प्रयात

सुनो दान लोभा। तव चित्त छोभा॥
सुनो साधु सुद्धा। चवत्यो विरुद्धा॥
कह्यौ तैं जु बुझ्यो। सुन्यो मैं समुझ्यो॥
जहां वीर पैंजै। तहां वेगि जै जै ॥५७॥

हे दान और लोभ सुनो! उसी समय से चित्त अत्यधिक क्षुब्ध हो गया है। हे शुद्ध स्वभाव वाले साधु सुनो। चवत्थ ही विरुद्ध हो गया है। मैं जो तुमसे कह रहा हूँ उसे समझो, मैंने समझकर के ही उसे सुना है। जहाँ कहीं वीर अपने प्राणों की बाजी लगाता है वहीं पर उसकी जय होती है।

इति श्रीमत्सकल भूमडला खडलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देवचरित्रे दान लोभ विंध्यवासिनी सवादे वध विरोध वर्णन नाम चतुर्थ प्रकाराः ॥४॥

॥ लोभ उवाच ॥

चौपही—सुनिजै सकल लोक की माइ।
कहा कह्यौ सुनि दिल्ली राइ॥
कह्यौ आगिलौ सब व्यवहारु।
राज सिंह अरु राम विचारु॥१॥

हे संसार की माता! दिल्ली के बादशाह ने इसे सुनकर क्या कहा? आगे फिर किस प्रकार का वीर सिंह के साथ व्यवहार किया गया? राज सिंह और रामसिंह के क्या विचार हुए॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

सुन्यौ साहि जूझयौ जुवराज। तमकि रह्यौ कालि सिरताज॥
तैसहि निच आये मेवरा[1]। साहि भये अहि लैं जेवरा॥२॥

युवराज की मृत्यु को सुनकर बादशाह स्तब्ध रहा। इसी बीच में मेवाड़ से कुछ लोग आए। बादशाह सर्प से रस्सी की भांति हो गया॥२॥ (१) मेवाड़ के लोग

साहि नंद अरु मान नरेस। छोड़ि सबै राना कौ देस॥
घर ही कौं फिरि कियौ पयान। सुनि यह दुचितौ भौ सुलतान॥३॥

शाह पुत्र और मान सिंह सभी राणा का देश छोड़कर घर की ओर प्रस्थान कर दिये हैं, ऐसा सुनकर सुल्तान चिन्तित हुआ॥३॥

उपजे बहुत भांति के छोभ। इनकी कौन चलावै लोभ॥
तै औसरै रोस हिय धरे। अकबर साहि गए आगरे॥४॥

इसी प्रकार के अन्य भी क्षोभ उत्पन्न हुए हैं, उनकी चर्चा क्या की बात। अवसर पाकर क्रोध को अपने हृदय में रख लिया। अकबर आगरा चला गया॥४॥

॥ दान उवाच ॥

होहु कृपाल जगत की मात। कहिये वीरसिंह की बात॥
राम साहि सौं कैसी चली। बैर बेलि कित फूली फली॥५॥

हे माता ! कृपा करके वीर सिंह की भी बात तो कुछ बताइये । राम साहि का उसके साथ कैसा व्यवहार रहा, और वैमनस्य की बेलि किस प्रकार से फूली फली ॥५॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

सुने जलाल दीन घर गए । वीरसिंह अति दुचिते भए ॥
गोविंद मिरजा, जादो गौर । बाली मुकुट मते मह और ॥६॥

जब वीरसिंह ने सुना कि जलाउद्दीन घर गया है, तब वह कुछ दुचित्ते होकर । गोविन्द मिर्जा, यादौ, गौर बाली, मुकुट आदि से सलाह की ॥६॥

॥ वीरसिंह उवाच ॥

साहि सत्रु अस घर मे वैर । यहै चलतु है घर घर पैर ॥
रहै कौन विधि पति अरु प्रान । अपनी अपनी कही सयान ॥७॥

बादशाह हम सभी का शत्रु है और हमारे घर में ही है । क्या घर घर में यही रीति चल रही है । किस प्रकार से मर्यादा और प्राण की रक्षा हो, इसके सम्बन्ध में सभी ने अपनी अपनी चतुरता के अनुसार कहा ॥७॥

मुकट कह्यो सुनु राज कुमार । आपुस मे उपजै जजार ॥
आए अवही सुनियतु साहि । कैसो चलै पूत सों ताहि ॥८॥

मुकुट ने कहा कि हे राजकुमार ! आपस में वैमनस्य पैदा हो गया । अभी सुना है कि शाह आया है, किन्तु पता नहीं पूत उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करेगा ॥८॥

दक्खिन चले जाहि उमराउ । खुरासान तन जिन्हैं प्रभाउ ॥
इत राना सों बढ्यो विरोध । उत है मानसिंह सों क्रोध ॥६॥

दक्षिण दिशा में उमरावों ने अपना निवास बना लिया है और खुरासान तक उनका प्रभाव हो गया है । इधर राना से उनका विरोध बढ़ गया है और उधर मानसिंह क्रुद्ध है ॥६॥

सुनि लीजै सबही की गाथ । तब तैसी करि लीबौ नाथ ॥
घर के बैर कहौ को डढ़ै । मारे मिटै मिटाये बढ़ै ॥१०॥

हे नाथ ! सभी के सम्बन्ध में पहले सुन लीजिए फिर उसके अनुरूप व्यवहार करें । घर का बैर किस प्रकार से समाप्त हो । वह तो मारने से समाप्त होगा और यदि सबि की चर्चा करेंगे, तो बढ़ेगा ॥१०॥

बोल्यौ मिरजा गोविंद दास । जोपै है जिय घर को त्रास ॥
करि है राजा दिन दिन प्रीति । बलि बलि ऐसी साहिब रीति ॥११॥

मिर्जा गोविंद दास ने कहा कि यदि हृदय में घर का भय है, तो राजा नित्य ही प्रेम करेगा, उस शाह की ऐसी ही रीति है ॥११॥

यह सुनि बोल्यौ आदौ गौर । पहिलो सो अब नाहीं ठौर ॥
फेरि अकब्बर के फरमान । कछुवाह सों बैर विधान ॥१२॥

यह सुनकर यादो गौर बोला कि पहले के समान अब स्थिति नहीं है । अकबर का फिर वही फरमान है और कछुवाहा से बैर होगा ॥१२॥

इद्रजीत सों हुती समीति । कछू दिननि तैं ऐसी रीति ॥
कोइ कैसोई हितु रचै । घातैं पादु न राजा उचै ॥१३॥

इन्द्रजीत से कुछ दिनों से मित्रता थी, यह मित्रता कुछ दिनों से ही थी । कोई कैसा भी हित का ढाग क्यों न करे, किन्तु अवसर पाने पर हम लोग राजा को न छोड़ें ॥१३॥

छोड़ो सब पुर घर की आस । चलौ सलीमसाहि के पास ॥
घटि बढ़ि अपने करमहि लगी । उद्दिम सब की कीरति जगी ॥१४॥

घर और पुर की सभी आशाओं को छोड़कर हम सभी सलीमशाह के पास चलें । घटना-बढ़ना तो कर्मानुसार चला करता है । उद्यम से सभी की कीर्ति जगमगा उठती है ॥१४॥

जानै कौन करम की गाथ । काहु के ह्वै रहिये नाथ ॥
सबही कीनौ यही विचार । चलौ प्रातही राजकुमार ॥१५॥

पता नहीं कि किस कर्म का परिणाम है । हे नाथ ! अब तो किसी न किसी का आश्रय लेकर ही रहें । सभी ने यही विचार किया कि मिलने के लिए प्रातःकाल ही चला जाय ॥१५॥

अहीछत्र किया कुँवर मिलान । मिल्यौ मुजफ्फर सैद सुजान ॥
तासौं मतो कुँवर सब कह्यो । सुनि सुनि समुझि रीझ हिय रह्यौ ॥१६॥

अहिच्छत्र (चम्बल नदी से लगा हुआ प्रदेश) में जाकर वीरसिंह मुजफ्फर सैद से जाकर मिला । उससे कुँवर ने अपना सभी विचार कहा । कुवर के विचारों को सुनकर मुजफ्फर हृदय में बड़ा प्रसन्न हुआ ॥१६॥

कह्यौ सु विहि सुनि अरि कुल हाल । चलियै तौ चलियै इहि काल ॥
जौ लौं काहू कछू न कियौ । उमग्यौ जाहि न अरि कौ हियौ ॥१७॥

शत्रु कुल के समाचारों को सुनकर उसने कहा कि यदि चलना है तो इसी समय चला जाय । जब तक कोई कुछ करेगा नहीं तब तक शत्रु के हृदय में कोई उमंग या उत्साह नहीं आयेगा ॥१७॥

जौ ह्यां ह्वैहै कछू उपाय । दियौ न ह्वैहै आगे पाउ ॥
घर के रहे बिगारिहै काज । दुहू भाति चलनौ है आज ॥१८॥

यदि यहां पर कोई भी उपाय होगा, तो आगे की ओर हम लोग पैर नहीं बढ़ायेंगे । घर पर रहने से काम बिगड़ेगा । इसलिए दोनों ही दृष्टियों से आज ही चलना है ॥१८॥

मन क्रम वचन धरौ यह नेम । तुम सेवक प्रभु साहि सलेम ॥
सैद मजफ्फरखां की बात । सुनि सुख भयो कुँवर के गात ॥१९॥

मन क्रम वचन से तुम्हें इस बात को मन में जमा लेना चाहिये कि तुम सलीम साहि के सेवक हो और वह तुम्हारा स्वामी है ॥१९॥

चल्यौ चपल गति बुद्धि निधान। साहिजाद पुर करयौ मिलान ॥

॥ दोहरा ॥

पुरव पूरे पुन्य तरु फलित भयौ बड़ भाग। सजल मनोरथ दान दिन देरयौं अनि प्रयाग ॥२०॥

बुद्धि निधान ने चपल गति से चलकर साहिजादपुर में जाकर भेंट की, और कहा कि बड़े भाग्य से हमारे पूर्व पुण्यों का फल आज मिला है कि प्रयाग में मने दान को देखा पाया ॥२०॥

॥ चौपइ ॥

जब प्रयाग को दरसन भयो। जीवन जनम सुफल करि लयौ ॥२१॥
देखत पाप हरै प्राचीन। परसत दूरित न देह नवीन ॥
चारु मह् बारु दुति लसै। ताहि देखि मति अति हित बसै ॥२२॥
सूछम अस करैं सब सेव। जनु प्रयाग कहू देव अदेव ॥
हरहि जु जग जीवनि के पाप। दूरि करत जनु तिनके दाप ॥२३॥

प्रयाग का जब दर्शन हुआ, तब हमने जीवन के जन्म को सफल समझा। उसे देखने ही सारे पिछले पापा का विनाश हो गया और उसका स्पर्श करने से नवीन देह प्राप्त होती है। चारु के बीच में बालू शोभायमान लगता है उसे देखकर बुद्धि अत्याधिक प्रसन्न होती है। ऐसा लगता है कि प्रयाग की सेवा सभी देव अदेव सूक्ष्म रूप म किया करते हैं। वह लोगा के जीवन के सभी पापा का विनाश कर देती है और उनके अह को पूरी तरह से दूर कर देती है ॥२१, २२, २३॥

जमुना सग लिये मति थिरा। गग मिलन कहं आई गिरा ॥
मृग मद केसरि घंसि घन सारू। कीनौ चर्चित चदन चारू ॥२४॥

थिरमती वाली यमुना को साथ लिए हुए गगा सरस्वती से मिलने आई। कस्तूरी केशर, घनसार आदि से युक्त चदन को कोई कोई सगम पर लगा रहे हैं ॥२४॥

चदित देखि देखि अवनीप । तिलक कियौ जनु जबू दीप ॥
जहा तहां जल नरपति न्हात । देखत आनन्द उपजत गात ॥२५॥

समस्त पृथ्वी मे वदित होने के कारण ही मानो जम्बू द्वीप का तिलक किया हो । जहाँ-तहाँ राजे लोग जल मे स्नान कर रहे है, उन्हे नहाते देखकर हृदय मे आनन्द उत्पन्न होता है ॥२५॥

नारी नर बहु बुडकी लेत । जनु अपने अभिलापनि हेत ॥
हरि पूजत सब बारहिं बार । जहा तहा पोडस उपचार ॥२६॥

अनेक नर-नारी उसम बुड़की लगाते रहते है, मानो वे ऐसा अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये कर रहे हो । हरि की उपासना सभी अपनी पारी से कर रहे है और यत्र तत्र पोडस दान दिया जा रहा है ॥२६॥

होति आरती तिनकी जोति । प्रति बिंबित पानी मह होति ॥
अपनी जनम करन की सुखी । जनु अन्हालि जल ज्याला मुखी ॥२७॥

हरि की आरती हो रही है, वह जल म प्रतिबिम्बित होती है । ऐसा लगा रहा है कि अपने जन्म को सफल करने के लिए ज्वालामुखी के जल मे सभी स्नान कर रहे हैं । यहा पर ज्वालामुखी की उपमा इसलिए दी गई है कि आरती का प्रकाश जल मे पड रहा है, जो कि ज्वालामुखी के समान लगता है ॥२७॥

अति अरुनाई अति उद्दोत । धूम सहित जह तहं जल होत ॥
देखि देखि उपमा बड़ भाग । धूम केत जनु न्हात प्रयाग ॥२८॥

अत्यधिक अरुणिमा है और बहुत ही उद्योत भी । कहीं कहीं जल धूम युक्त भी है । इसको देखकर ऐसा लगता है कि मानो धूमकेतु प्रयाग मे स्नान कर रहा हो ॥२८॥

इहि विधि सोभा सुखद अपार । बरनै सोभा को ससार ॥
पहिरि धोवती, बसन उतारि । रूप तोय तब पाय पखारि ॥२९॥

इस प्रकार सुख को देने वाली अपार शोभा है। उस शोभा को संसार में कौन वर्णन कर सकता है। वस्त्रों को उतार कर धोती पहनते है और फिर कुए के जल में पैर धोतीं हैं ॥२६॥

करि आचमन परम सुचि भये। वीरसिंह गंगा महँ गये ॥
कुस मुद्रिकनि मुद्रित कै हाथ। नारिकेल कर सुवरन साथ ॥३०॥

भेंट दई यह राजकुमार। लीनी भागीरथी उदार ॥
मज्जन करि तब तरपन कियौ। मंत्र जप्यौ करि पावन हियौ ॥३१॥

वीरसिंह गंगा के निकट गये और उसका आचमन कर परम पवित्र हो गये। कुश, मुद्रिका, नारियल और स्वर्ण को हाथ में लेकर राजकुमार ने भागीरथ को भेंट दी और उन्होंने उसे स्वीकार किया तदुपरान्त स्नान किया और फिर तर्पण। इसके बाद हृदय को पवित्र कर मंत्र का जप किया ॥३०,३१॥

अनंत अनेकनि जात न गने। पाट जटे पट हाटक घने ॥
महिषी, सुरभी, हय, गय ग्राम। भूषन भाजन भोजन धाम ॥३२॥

अनेक अनंत हैं जिन्हें गिना नहीं जा सकता है, बाजार में अनेक पाट जड़े हुए, महिषी सुरभी, घोड़े, गज, ग्राम, भूषण, भाजन भोजन, घर आदि दान में दिए ॥३२॥

पुष्पित फलित ललित वन बाग। सकल सुगन्ध सहित अनुराग ॥
छत्र चौंर गजराजनि बने। कोक वितान विमाननि घने ॥३३॥

फल फूलों से लदे हुए बाग जिनमें सब प्रकार की सुगन्ध बह रही है। हाथियों के ऊपर छत्र और चवर रखे हुए हैं। विमानों के ऊपर कोक वितान तने हुए हैं ॥३३॥

अति दीरघ अति पीवर साज। दीबे को आन्यौ गजराज ॥
जब गज गंगाजल मह गयौ। बहुत भांति करि सोभित भयौ ॥३४॥

बहुत बड़ा और सुसज्जित हाथी को दान मे देने के लिए मगवाया। जब हाथी गगा मे घुसा तब बहुत ही अच्छा लगने लगा ॥३४॥

स्वेत कुसुम चौसर मय स्वच्छ। सोहत तुलसी कैसो वृच्छ॥
अमल सुमिल मोतिन के हार। ता महं मनो नील मनि चार॥३५॥

चौसर युक्त स्वच्छ स्वेत कुसुम तुलसी के वृक्ष की भाँति शोभित है। उसके गले म सुन्दर मोतियों का हार पड़ा हुआ है और उसमे चार नील मणिया लगी हुई हैं ॥३५॥

मानहु कुम कुम पूर प्रमान। ता मह मृग मद बुंद समान॥
कुंद कली अवली मह सोभ। जनु अलि बस्यौं गध के लोभ॥३६॥

उसमें कुमकुम लगे हुए हैं जो कि मृगमद की बूद के समान मालूम होते हैं। कुद कलिया पक्ति में शोभा दे रही हैं। ऐसा मालूम होता है कि भ्रमर गध के लोभ में उनमे बसा हुआ है ॥३६॥

सुभ केसाल सिला के माहं। मानहु सजल जलद की छांह॥
सूरज सेत सेज मन हरै। तापर जनु शनि क्रीड़ा करै॥३७॥

उसके बीच म शुभ कैसाल है, जो कि सजल जलद की छाया सी लगती है। उसके ऊपर पड़ती हुई सूरज की किरणे अपनी ओर मन को आकर्षित करती हैं। ऐसा लगता है कि मानो शनि उसके ऊपर क्रीड़ा कर रहा है ॥३७॥

नारद को उर उज्वल लसै। ता महँ मनो कृष्ण तनु बसैं॥
देव सभा महँ मन मोहियो। बैठे व्यासदेव सोभियौ॥३८॥

नारद का उज्वल हृदय शोभा दे रहा है। उसमें मानों कृष्ण का शरीर ही वास कर रहा हो। देव सभा में बैठे व्यासदेव ने सभी का मन मोहित कर लिया है ॥३८॥

जब सब अग जलन मिलि जाइ। केवल इभ कुंभै दरसाइ॥
मनौं गंगपौढ़ी पर जक। स्याम कंचुकी सोहित अंग॥३९॥

जब सब अग जल मे मिल जाते हैं तब केवल कुभ ही दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि गगा जक के ऊपर लेट गई है और शरीर पर श्याम कचुकी शोभा दे रही है ॥३६॥

कहीं कहां लगि सोभा सार। कहों त बाढ़े ग्रंथ अपार ॥
आयौ जल वाहिर गजराज। सोभित सकल अंग को साज ॥४०॥

कहा तक उसकी शोभा का वर्णन किया जाय। वर्णन विस्तार से ग्रन्थ बढ़ जायेगा। जल से बाहर हाथी निकल कर आया और उसका प्रत्येक अग का साज शोभा दे रहा था ॥४०॥

तनु चर्चित चंदन कर्पूर। कुभ कलित वदन सिंदूर।
चारु चंद्रमा भाल लसत। रच्यो पुष्प मय एकै दत ॥४१॥

शरीर पर चदन और कपूर लगा हुआ है। सुन्दर कुभ, सिंदूर और वदन लगा हुआ है। सुन्दर चद्रमा मस्तक पर शोभा दे रहा है। पुष्प युक्त एक ही दत की रचना की है ॥४१॥

जलज हार देखत दुख भगैं। मनि मय नूपुर पायनि वजैं ॥
वीरसिंह से विप्रहिं दयो। लेत विप्र को हरखत हियो ॥४२॥

जलजहार को देखते ही दुख भाग जाते हैं। मणियुक्त नूपुर पैरों में बजते हैं। इस प्रकार के हाथी को वीरसिंह ने ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण हाथी को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥४२॥

मनो पाइवन को मन कियो। सिव गनपति गुरु को सौंपियो ॥
दै सब दाननि परम उदार। डेरहिं आए राजकुमार ॥४३॥

ऐसा लगा कि शिवा देने की इच्छा है, इसीलिए शिवजी ने हाथी को गुरु को दे दिया है। अनेक प्रकार के दानों को देकर वीरसिंह अपने डेरे पर वापस आये ॥४३॥

सरीफ खाहि देखि सुख भयो। छीर नीर ज्यौं मन मिलि गयो ॥
गुदरयो जब सरीफ खां आइ। हरख्यो दिल दिल्ली को राइ ॥४४॥

वीरसिंह को देखकर शरीफ खाँ को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। ऐसा लगा कि दूध और पानी दोनो मिल गये हों। शरीफ खाँ जब उधर से निकला तब दिल्लीपति को बहुत प्रसन्नता हुई ॥४४॥

बोलहु वेगि कह्यो सुलतान। मेरे वीरसिंह तन प्रान॥
साहि सभा जब गयो नरिंदु। सूरज मडल में मनो इंदु॥४५॥

हे सुलतान! जो कुछ भी कहना हो-जल्दी से कहें। वीरसिंह मेरा तनमन प्राण है। शाह की सभा म जब वीरसिंह गया तब ऐसा लगा कि सूर्य मण्डल में चाद आ गया हो। ४५॥

देखत सुख पायो सुलतान। ज्यों तन पायौ अपने प्रान॥
कै तसलीम गहे तव पाय। उमग्यो आनद अंग न माय॥४६॥

वीरसिंह को देखते ही सुलतान को बहुत प्रसन्नता हुई। मानो उसे अपने शरीर में प्राण मिल गये हा। आदर पूर्वक नमस्कार करके पैरा को पकड़ा। इससे इतना आनन्द हुआ कि वह शरीर म समा ही नहीं पा रहा था॥४६॥

सोभ्यो वीर देखि यों साहि। जैसे रहे सुमेरहि चाहि॥
वीरसिंह की बाढ़ी सौंह। पारस सों परस्यो जनु लोह॥४७॥

वीरसिंह को देखकर शाह इस प्रकार से शोभित हुआ मानो सुमेरु को मात करने की इच्छा हो। वीरसिंह की सौंह बढ़ी, उससे ऐसा लगा कि पारस पत्थर से लोहा छुआ दिया गया है॥४७॥

परम सुगंध नीम ह्वै जाइ। जैसे मलयाचल कौं पाइ॥
कह्यौ साहि नीके हौ राइ। अब नीके, जब देखे पाइ॥४८॥

मलयाचल को पाकर नीम भी सुगधित हो जाती है। शाह ने कहा कि हे राजन्! तुम बड़े अच्छे हो। जब देखने को मिले तब तुम्हारी अच्छाई का ज्ञान मुझे हो सका॥४८॥

भली करी तें राजकुमार। छोड्यौ सब आयो दरबार॥
हौं तौ भलें पूजिहै आस। जौ तूं रहिहै मेरे पास॥४६॥

हे राजकुमार ! तुमने बड़ा अच्छा किया कि दरबार छोड़ कर यहां चला आया। यदि तुम मेरे पास रहोगे, तो मैं तुम्हारी सारी इच्छाओं की पूर्ति कर दूँगा ॥४६॥

यह कहि पहिराये बहु बार। हाथी हय औरहु हथियार॥
भीतर गो दिल्ली कौ नाथ। बहरखाँ रहा सरीफ गहि हाथ॥५०॥

इस प्रकार से कह कर अनेक बार पहराया और अनेक हाथी घोड़े और हथियार दान में दिए। दिल्ली का स्वामी अन्दर गया और बाहर शरीफ खाँ हाथ पकड़ कर खड़ा रहा है ॥५०॥

जब जब जाइ कुंवर दरबार। लै बहुरै अहलाद अपार॥
जब कुँवर दरबार में जाता था तब अत्यधिक प्रसन्नता ही लेकर वापस लौटता था।

॥ कुंडलिया ॥

सुख पायो बैठे हुते एक समै मुलतान,
खाँ सरीफ तिनि बोलि लिये वीरसिंह देवसुजान।
विरसिंह देव सुजान मान मन बात,
या प्रयाग में कुंवर सौंह करिये मोसौं अब।
तो सौं करौं बिचार करहि अपने मन भाए,
अनत न कतहू जाउ रहहु मो संग सुख पाये ॥५१॥

एक समय मुलतान ने बैठे हुए सुख की प्राप्ति का अनुभव किया। शरीफ खाँ ने वीरसिंह को बुलाया। हे वीरसिंह ! तू मेरी कही हुई बात को मानले। इस प्रयाग नगर में तुम मुझसे सौगन्ध खाकर कहो। फिर मैं अपने इच्छित विचारों का तेरे साथ बैठकर विचार करूँ। दूसरी जगह तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं है। तुम सदैव मेरे साथ सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करो ॥५१॥

पायनि परि तसलीम करि बोल्यो बीरसिंह राज,
हौं गरीब तुम प्रगट ही सदा गरीब निवाज।
सदा गरीब निवाज लाज तुमही लघु लामी,
विनती करियें कहा महाप्रभु अन्तरजामी।
लोभ मोह भय भाजि भजें हम मन वच कायनि,
जौ राखहु मरजाद तजौं सपनेहु नहिं पायनि ॥५२॥

पैरों पड़ कर वीरसिंह ने नमस्कार किया और कहा कि मैं तो गरीब हूँ और आप सदैव ही गरीबों के स्वामी हैं। तुम गरीब निवाज हो और तुम्हीं ने लज्जा रखी है। हे अन्तर्यामी ! तुम विनती क्या करोगे। हमारे मन वचन कर्म को देखकर लोभ मोह भय आदि तो भाग जाते हैं। यदि तुम मर्यादा की रक्षा करोगे तो मैं तुम्हारे पैरों को कभी भी नहीं छोड़ूँगा ॥२॥

॥ चौपई ॥

सौंहें कीन्हीं माँझ प्रयाग। वीरसिंह सुलतान सभाग॥
तुमही मेरे दोई नैन। तुम हौ बुधि बल भुज सुख दैन ॥५३॥

वीर सिंह ने सुलतान के साथ में प्रयाग में सौगन्ध खाई। सुलतान ने कहा कि तुम्हीं हमारे दोनों नेत्र हो और तुम्हीं हमारी बुद्धि, शक्ति तथा भुजाओं को सुख देने वाले हो ॥५१॥

तुमही आगे पीछे चित्त। तुमही मन्त्री तुमही मित्त॥
मात पिता तुम पारयो पान। तुम लगि छाड़ौं अपने प्रान ॥५४॥

तुम्हीं आगे पीछे मेरे मन में रहते हो। तुम्हीं मित्र हो और मंत्री भी। तुमने अपने पूर्वजों के पानी की रक्षा की है। तुम्हारे साथ ही अपने प्राणों को छोड़ दूँगा ॥५२॥

॥ वीरसिंह उवाच ॥

इक साहिब अरु कीजतु प्रीति।
सब दिन चलन कहत इहि रीति ॥५५॥

हे साहब ! आप इतनी प्रीति करते हैं और सब दिन इसी प्रकार से यह प्रीति चलेगी ॥५३॥

तुम्हें छोड़ि मन आवै आन।
तौं भूलौ सब धर्म विधान॥
यह सुनि साहि लह्यो सब सुक्ख।
लाग्यो कहन आपनो दुःख ॥५६॥

यदि तुम्हें छोड़कर अन्य किसी को मन में लाऊँ तो धर्म के सभी विधानों को मैं भूल जाऊँ। यह सुनकर शाह को बहुत प्रसन्नता हुई और वह अपने दुख को कहने लगा ॥५६॥

जितनो कुल आलम परवीन। थावर जंगम दोई दीने॥
तामे एकै वैरी लेख। अब्दुल फ़ज़ल कहावै सेख ॥५७॥

जितना भी आलम परिवार थावर जगम, हिन्दू, मुसलमान हैं, उन सबका एक ही शत्रु है और वह है अबुलफ़ज़ल ॥५७॥

वह सालतु है मेरे चित्त। काढ़ि सकै तो काढ़हि मित्त॥
जितने कुल उमरावनि जानि। ते सब करत हमारी कानि ॥५८॥

वह मेरे हृदय को छेदा करता है। यदि तू किसी भी प्रकार से उसे निकाल सके तो निकाल दे। जितने भी परिवार में उमराव हैं, वे सभी मेरी इज्जत करते हैं ॥५८॥

आगे पीछे मन आपने। वह न मोहि तिनका करि गने॥
हजरत को मन मोहित भयो। याते पारे अंतर परयो ॥५६॥

वह मुझे अपने आगे पीछे तिनका के समान भी नहीं मानता है। बादशाह के मन को उसने अपनी ओर खींच लिया है और इसीलिए उसके मन में मेरे लिए अन्तर पड़ गया है ॥५६॥

सत्वरसाहि बुलायो राज। दक्खिन ते मेरे ही काज ॥
हजरत सों जो मिले है आनि। सो तुम आनहु मेरी हानि ॥५८॥

मेरे ही काम से उसे दक्षिण से राजा ने तुरन्त बुलाया है। यदि वह बादशाह से मिल लेगा तो मेरी बड़ी हानि होगी ॥५८॥

वेगि जाउ तुम राजकुमार। बीचहि बासो कीजै रारि ॥
पकरि लेहु कै डारो मारि। यह मन निह्चै करहु विचारि ॥५६॥

तुम शीघ्र ही जाकर उससे बीच म ही झगड़ा कर लो। उसे या तो पकड़ लो या मार डालो. ऐसा अपने मन मे निश्चय कर लो ॥५६॥

होहि काम यह तेरे हाथ। सब साहिबी तुम्हारे साथ ॥
एसो हुकुम साहि जब कियो। मानि सबै सिर ऊपर लियो ॥६०॥

यह कार्य तुम्हारे ही हाथ से हो सकता है। सम्पूर्ण साहिबी इस कार्य के लिए तुम्हारे साथ रहेगी। इस प्रकार की आज्ञा पाकर वीरसिंह ने शाह की बात को मान लिया ॥६०॥

राजनीति गुनि भय भ्रम तोरि। विनयो बीरसिंह कर जोरि ॥
यह गुलाम तुम साहिब ईस। तासौं इतनी कीजहि रीस ॥६१॥

वीरसिंह ने हाथ जोडकर विनती की। राजनीति सम्बन्धी सभी भ्रमों और भयों को तोड कर कहा कि आप स्वामी हैं और यह गुलाम है, फिर उस पर इतना क्रोध क्यों ? ॥६१॥

प्रभु सेवक की भूल विचारि। प्रभुता इहै जु लेइ सम्हारि ॥
सुनिजतु है हजरत को चित्त। मत्री लोग कहत है मित्त ॥६२॥

सेवक की भूल को स्वामी का विचार कर ठीक कर लेने मे ही उसकी प्रभुता है। सुना है कि हजरत का मन है किन्तु मत्री लोग कहते है कि मित्र है ॥६२॥

तौ लगि साहि करै जब रोप। कहिये यौं किहि लागैं दोप ॥
जन की युवती कैसी रीति। सब तजि साहिब ही सो प्रीति ॥६३॥

यदि शाह ही क्रोध करता है, तो उसमें दूसरे का क्या दोष है? सेवक के लिए तो यह आवश्यक है कि वह सभी की प्रीति को छोड़कर अपने स्वामी से स्नेह करे ॥६३॥

तातें वाहि न लागै दोष। छाड़ि रोष कीजै संतोष ॥

दोहा

सहसा कछु नहिं कीजई। कीजै सबै बिचारि ॥
सहसा करें ते घटि परैं। अरु आरैं जग गारि ॥८॥

इस कारण से इसमें उसका दोष नहीं है। अतएव आप क्रोध को छोड़कर संतोष करें। एकाएक किसी भी काम को नहीं करना चाहिए। काम को करने के पूर्व भली प्रकार से सभी बातों का विचार कर लेना चाहिए। एकाएक किसी कार्य को करने से धोखा देने का आरोप लगता है, और संसार गाली देता है ॥८॥

॥ साह सलीम उवाच ॥

बरन्यो मीत मते को सार। प्रभु जन को सब यहै बिचार ॥६४॥

हे मित्र! मैंने सभी मतों के सार को तुमसे कह दिया है जितने भी श्रीमान हैं, उन सभी का यही विचार है ॥६४॥

जो लाग यह जीवतु है सेख। तौ लगि मोहि मुओ हो लेख ॥
सबै बिचार दूरि करि चित्त। बिदा होहु तुम जबही मित्त ॥६५॥

जब तक यह सेख जिन्दा है तब तक तू मुझे मरा हुआ ही समझो; हे मित्र! अपने मन के सभी विचारों को दूर करके तुम अभी चले जाओ ॥६५॥

कसि तुरतहि बखतर तन बेगि। लै बाधी कटि अपने तेग ॥
घोरो दै सिर पाग पिन्हाइ। कीनो बिदा तुरत सुख पाइ ॥६६॥

तुरन्त ही अपने शरीर पर बख्तर को बाधकर तलवार को कमर में कसकर बाध लिया। शाह ने घोड़ा दिया और सिर पर पगड़ी बाँधकर तुरन्त ही बिदा कर दिया ॥६६॥

दरखानें तें राजकुमार। चलत भई यह शोभा सार॥
रवि मंडल ते आनद कद। निकसि चल्यो जनु पूरन चन्द॥६७॥

वीरसिंह जब दरबार से निकला, तब ऐसा लगा कि मानों रवि-मण्डल से पूर्ण चाँद निकल रहा हो॥६७॥

सैद मुजफ्फर लीनो साथ। चलै न जानै कोऊ गाथ॥
बीच न एकौ कियो मोकाम। देख्यो आनि आपनो गाम॥६८॥

सैद मुजफ्फर को अपने साथ लिया, किन्तु चलने का कारण कोई भी नहीं जानता था। मार्ग में कहीं भी न ठहर कर सीधे अपने ग्राम में आकर रुके॥६८॥

आनंदे जन पद सुख पाइ। नीलकंठ जनु मेघहि पाइ॥
पठयें चर नीके नरनाथ। आवत चले सेख के साथ॥६९॥

सभी ग्राम वासियों को ऐसा आनन्द हुआ जैसा कि नीलकण्ठ पक्षी को मेघ मिल जाने पर होता है। उन्होंने चरों को भेजा जो कि सेख के साथ चले आ रहे थे॥६९॥

चारन कही कुवर सों आइ। आए नरवर सेख मिलाइ॥
यह कहि भये सिंध के पार। पल पल लखैं सेख की सार॥७०॥

चारण ने आकर सूचना दी कि शेख नरवर तक आ गया है। यह सुनकर सिंध (मध्य भारत की एक छोटी नदी) को पारकर शेख के आने का समय देखने लगे॥७०॥

आये सेख मीच के लिये। पुर पराइछे डेरा किये॥
आबुल फजल बड़े ही भोर। चले कूच कै अपने जोर॥७१॥

शेख अपनी मृत्यु लेकर आया। उसने पराइछे नगर में अपना डेरा डाला। दूसरे दिन प्रातःकाल ही अबुलफजल ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया॥७१॥

आगे दीनी रसद चलाइ। पाछे आपुनु चले बजाइ॥
बीरसिंह दीरे अरि लेख। ज्यों हरि मत्त गयदनि देखि॥७२॥

अबुल फजल ने पहले तो रसद भेज दी और फिर दुंदुभी बजाकर स्वयं चले। वीरसिंह शेख को देखकर उसी प्रकार से झपटे जिस प्रकार से सिंह हाथियों को देखकर झपटता है॥७२॥

सुनतहि वीरसिंह को नाउँ। फिरि ठाढो भयो सेख सुभाउ॥
परम सरोष सो सेख बखानि। जैसे अपर नृसिंहहि जानि॥७३॥

वीरसिंह का नाम सुनते ही शेख स्वाभाविक रूप से घूम कर खड़ा हो गया। शेख उसी प्रकार से क्रोध में दौड़ा जिस प्रकार सिंह नर को देखकर दौड़ता है॥७३॥

दौरत सेख जानि बड़ भाग। एक पठान गही तब बाग॥

॥ पठान उवाच ।

नहीं नबाब पसर को ठौरु। भूमि न सतुहि सामुहें दौरु॥७४॥

शेख को दौड़ता देखकर एक पठान ने लगाम पकड़कर कहा कि इस समय युद्ध का अवसर नहीं है॥७४॥

चलु चलु ज्यों क्यों हू चालि जाहि। तोहि पाइ सुख पावै साहि॥
पुनि अपने मन मे धरि नेम। जैनो चढ़ि तहँ साह सलेम॥७५॥

यदि भागकर बचा सकता है तो क्या न बचा जाय। तुम्हें देखकर अकबर को बड़ा सुख होता है। अपने मन में यह निश्चय करलें कि जहां पर सलीमशाह है वहां पर हम सभी चढ़ाई करके चलेंगे॥७५॥

॥ सेख उवाच ॥

जेमत सुभट ठावही ठाव। कीहयो अब कैसे चलि जाव॥
आनि लियो उन आलम लोग। भाजे लाज मरैगो लोग॥७६॥

योद्धा युद्ध में मरना अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए अब इस स्थान को कैसे छोड़ा जा सकता है? उन्होंने आलम लोग लिया है। अब यदि इस अवसर पर भागता हूं तो उस लज्जा से मर जाना ज्यादा अच्छा होगा ॥७६॥

॥ पठान उवाच ॥

सुभटन को तो यहऊ काम। आप मरे पहुँचावहिं राम॥
जो तू बहुतै आलम लोग। जो तू बचिहै रचिहै लोग ॥७७॥

सुभटों का तो यह काम ही है कि वे स्वयं मर कर स्वर्ग जाते हैं। किन्तु यदि तू जीवित रहेगा, तो बहुत से आलमलोग होगे। यदि तुम बच गये तो तुम बहुत से लोग अपने समान तैयार कर सकोगे ॥७७॥

॥ सेख उवाच ॥

मैं बल लीनों दखिखन देस। जीत्यौ मैं दक्खिनी नरेस॥
साहि मुरादि स्वर्ग जब गये। मैं भुव भार आपु सिर लये ॥७८॥

मैंने अपनी शक्ति से दक्षिण दिशा की विजय की है। मैंने दक्षिणी नरेश को जीत लिया है। मुराद की जब मृत्यु हुई तब मैंने सारी पृथ्वी का भार अपने सिर पर ले लिया था ॥७८॥

मेरो माहि भरोसो करै। भाजि जाउं मैं कैसे घरै॥
कह, यो आलम लोग गँवाइ। कहिहौ कहा साहि सौं आइ ॥७६॥

बादशाह मेरे ऊपर विश्वास करता है, फिर मैं घर को कैसे भाग जाऊँ? आलमलोग को खो कर बादशाह से मैं जाकर क्या कहूँगा ॥७६॥

देखत लियो नगारो आइ। कहा बजाऊँ हौं घर जाइ॥
घर को मेरे पाइन परै?। मेरे आगे हिंदू लरै ॥८०॥

मेरे देखते ही उसने नगाड़े पर कब्जा कर लिया है। मैं घर जाकर क्या बजाऊँगा। घर के सभी मुसलमान मेरे पैरों पर पड़ते हैं और हिन्दू मेरे आगे युद्ध करेगा ॥८०॥

॥ पठान उवाच ॥

सेख विचारि चित्त मह देखु। काजु अकाजु साहि कौ लेखु॥
सुनु नवाब तू जूझहि तहाँ। अकबर साहि बिलोकै जहाँ॥८१॥

पठान ने कहा कि हे शेख। तू अपने में विचार कर देख ले। बादशाह का किससे काम बनेगा और किससे बिगड़ेगा, इसे सोचलो। तेरे मरते ही अकबर को बड़ा दुख होगा।॥८१॥

प्रभु पै जाइ जमा तिहि जोर। सोक समुद्र सलीमहि बोर॥

॥ सेख उवाच ॥

तू जु कहत चलि जैये भाजि। उठे चहूँ दिसि बैरी गाजि॥
भाजे जातु मरनु जौ होइ। मोसौं कहा कहै सब कोइ?॥८२॥

अकबर से मिलकर और अधिक सेना लेकर आओ। इस से सलीम शाह शोक के समुद्र में डूब जायेगा। शेख ने कहा कि तुम जो यह कह रहे हो कि भाग जाओ, ठीक नहीं है क्योंकि इस समय चारों दशाओं में शत्रु फैले हुए हैं॥८२॥

जौं भजिये लरिये गुन देखि। दुहू भांति मरिबोई लेखि॥
भाजी जौ तौ भाजौं जाइ। क्यों करि देहै मोहि भजाइ॥८३॥

भागते समय यदि मृत्यु हो गई, तो संसार मुझे क्या कहेगा? चाहे भागूं या लडूं, मरना दोनों प्रकार से है। भागूं तो, लेकिन लोग मुझे भागने किस प्रकार देंगे॥८३।

पति की बैरी पाइ निहारु। सिर पर साहि मया को भारु॥
लाज रही अग अंग लपटाइ। कहु कैसें कै भाजो जाइ॥८४॥

एक तो स्वामी का शत्रु मिला है दूसरे अकबर बादशाह का सम्पूर्ण मन मेरे कन्धों पर है। अंग अंग में लज्जा लिपट गई है, ऐसी अवस्था में कैसे भागा जा सकता है॥८४॥

छांडि दई तिहि वाग विचारि। दौरयौ सेरख काढि तरवारि ॥
सेरख होइ जितही जित जवै। भर भराइ भागैं भट तवै ॥८४॥

ऐसा सुनकर पठान ने घोड़े की लगाम छोड़ दी। शेख तलवार निकाल कर दौड़ पड़ा। शेख जिधर बढ़ता है उधर के योद्धा घबड़ा कर भाग खड़े होते हैं ॥८५॥

काढ़े तेग सोह यों सेरख। जनु तनु धरे धूम धुज देख ॥
दड धरै जनु आपुन काल। मृत्यु सहित जम मनहु कराल ॥८६॥

शेख ने जिस समय तलवार निकाली, उस समय ऐसा लगा कि मानो अग्नि ने शरीर धारण कर लिया हो। ऐसा लगा रहा था कि काल स्वयं रूप धारण कर आ गया है। मृत्यु यम के साथ कराल रूप धारण किए हुए है ॥८६॥

मारै जाहि खंड द्वै होइ। ताके सम्मुख रहै न कोइ ॥
गाजत गज, हींसत हय ठौर। बिनु सूंडनि बिनु पायनि करे ॥८७॥

जिस किसी को शेख मार देता है, उसके दो टुकड़े हो जाते हैं और उसके सामने से सभी भाग जाते हैं। हाथी गरज रहे हैं और घोड़े हिनहिना रहे हैं। हाथी बिना सूंड़ के हो गये हैं और घोड़े बिना पैर के ॥८७।

नारि कमान तीर असरार। चहुं दिसि गोला चले अपार ॥
परम भयानक यह रन भयौ। सेरखहि उर गोला लगि गयौ ॥८८॥

असरार धनुष से तीर चला रहे हैं और चारों ओर से गोलाबारी हो रही है। वह युद्ध बड़ा ही भयानक हुआ। इसमें शेख के हृदय में गोला लग गया ॥८८॥

जूझि सेरख भूतल पर परे। नेंकुन पग पाछे को धरे ॥

सोरठा

अवधि धर्म की लेरख। द्विज दीनन प्रतिपाल तै ॥
रन में जूझे सेरख। अपनी पति लै साहि की ॥ ६॥

जब खुर खेट निपट मिटि गई। रन देखन की इच्छा भई ॥८६॥

शेख मरकर जमीन पर गिर पड़ा, किन्तु पैर पीछे की ओर हटकर नहीं रक्खा। शेख ने धर्म की मर्यादा। ब्राह्मण और दीनों की रक्षा द्वारा धर्म की सीमा बाँध दी। स्वामी का विश्वास लेकर शेख मैदान में स्वर्ग-गामी हुआ। जब युद्ध स्थल में युद्ध के कारण उत्पन्न हुई पृथ्वी की अस्त-व्यस्तता समाप्त हो गई तब युद्ध स्थल को देखने की इच्छा हुई ॥८६॥

कहुँ तोंग कहुँ डारे त्रास। कहुँ सिंदूर पताक प्रकास ॥
कहुँ डारे रेजा तरवारि। कहुँ तरकस कहुँ तीर निहारि ॥६०॥

युद्ध स्थल में कहीं पर तो नगाड़ा पड़ा हुआ था और कहीं पर त्रास पड़े हुए थे। कहीं पर तरकस था और कहीं पर तीर पड़े हुए थे ॥६०॥

कहुँ रुड कहुँ डारे मुंड।
कहु चोंर भुजनि के भुंड ।
हिलत लुढ़त कहुँ सुभट अपार ॥
टूटिनि टिकि टिकि उठत तुषार ॥६१॥

रेजा और तलवार कहीं पर पड़ी हुई थी। कहीं पर रुंड और कहीं पर खोपड़ियाँ पड़ी हुई थी। और कहीं पर चमरों के ढेर के ढेर पड़े हुए थे, कहीं पर योद्धा हिल रहे थे और कहीं पर लुढ़क रहे थे। तुषार टूट टूट कर उठ रहा था ॥६१॥

देखत कुंवर गये तब तहां। अब्दुल फजलि सेख है जहां ॥
परम सुगंध गंध तन भरयौ। सो नित सहित धूरि धूसरयौ ॥६२॥

नारसिंह देखता हुआ वहां पहुँचा जहां पर शेख पड़ा हुआ था। शरीर से गंध आ रही थी और सारा शरीर धूल धूसरित हो गया था ॥६२॥

कछु सुख कछु दुख व्यापत भये। लै सिर कुंवर बड़ौनहिं गये ॥
॥ कवित्त ॥
आनतु है जीते जोर दविखन अभयपद लैन।
हार देन हार दक्खिन नगर कौ।

सालनि ज्यौं, तालनि ज्यों, केसव तमालनि ज्यौं
तेरे भुवपालसाल ईस धीर धर कौ ॥
दीनौ छाड़ि छिति नाम साहिब सलीम साहि
महावीर बीरसिंह सिंह मधुकर कौ।
अब्बुलफजलि मद मत्त गजराज मारि
डारयो सखा सेरा साहि अकबर कौ ॥६२॥

मुख दुख से व्याप्त वीरसिंह शेख का शिर लेकर बड़ौन गये।
वीरसिंह दक्षिणी की निर्भयी शक्ति को जीतकर आ रहा है। ऐसा लगता है कि वह अपना अभय पद लेने के लिए और हार को देने के लिए आ रहा है। हाथी की भांति मस्त, अकबर बादशाह के मित्र शेर को मारा डाला ॥६२॥

देव सु बड़ गूजर भले। चपत 'राइ सीसु ले चले ॥६३॥

वीरसिंह देव सब से बड़ा और गूजर अच्छे हैं। चपतराय शीश लेकर के चला है ॥६३॥

सीसु साहि के आगे धरयौ। देखत साहि सकल सुख भरयौ ॥
किधौं विसेष बिटप की मूल। किधौ सकल फूलनि कौ फूल ॥६४॥

शिर लाकर शाह के सामने रखा। शिर को देखते ही शाह बहुत प्रसन्न हुआ। या तो यह विटप सभी विरोधों का मूल है या सारे पुष्पों का पुष्प है ॥६४॥

ऐसी सोभा सीस की भनौं। साहि मनोरथ कौ फल मनौ ॥
सब के सुनत साहि यह कह्यौ। दिल्ली के घर कौ वध रह्यौ ॥६५॥

शेख का शिर लोगों को ऐसा लगा कि मानो शाह के मनोरथ का फल हो। शाह ने सभी को सुनाकर कहा कि आज दिल्ली घर का वध हुआ है ॥६५॥

वीरसिंह की यहई ठई। हम को सकल साहिवी दई॥
वीरसिंह हमैं लीने मोल। करी साहिवी निपट निडोल॥६६॥

वीरसिंह ने आज सम्पूर्ण साहिवी मुझे दी है। उन्होंने आज मुझे मोल ले लिया है और साहिवी को अडिग कर दिया है ॥६६॥

फिरि थाप्यौ काविल कौ राज। कीनौ सकल खलक कौ काज॥
राख्यौ आजु हमारौ राज। अब हम देहैं उनको राज॥६७॥

फिर योग्य राज्य की स्थापना की, जिसके निमित्त सभी राज्य के कार्य को उसने किया। आज तुमने हमारे राज्य की रक्षा की है। इस लिए हम भी तुम्हें राज्य देंगे ॥६७॥

तबहो मांग्यो कचन थारु। मुक्ता फल कै रोचन चारु॥
अरुन तरनि उडगननि समेत। सूरज मडल ज्यौं सुख देत॥६८॥

उसी समय सोने का थाल, मुक्ताफल और सुन्दर रोचन मगाया। इस समय इस प्रकार का सुख हुआ, जिस प्रकार से सूर्य मण्डल अपनी प्रातःकालीन किरणों से देता है ॥६८॥

नेजा नरल जरायनि जरयौ। चवँर छत्र ससि सोभा भरयौ॥
विदा करयौ तब विप्र बुलाइ। चपति वड गूजर पहिराइ॥६६॥

नेजा नये जरावों से जड़ा हुआ था। चवर और छत्र शिर पर शोभा दे रहे थे। तब विप्र को बुलाकर विदा किया ॥६६॥

दयौ नगारौ अति सुख पाइ। पठये साहि निसान वजाइ॥
आये घर आनदी लोग। मित्रनि सुख सब सत्रुन सोग॥१००॥

अत्यधिक सुखी होकर नगारा दिया और शाह ने बाजों को बजवा कर भेजा। सभी लोग आनंदित होकर घर आये। मित्रों के घर पर आनन्द मनाया जाने लगा और शत्रुओं के घर पर शोक ॥१००॥

सुभ ससि वरन नखत तिथि जानि। बैठारे सिंहासन आनि॥
सकल मरातिब ठाढ़े किये। हरसिंह देव छरी कर लिये॥१०१॥

सिंहासन पर शुभ तिथि के अवसर पर बैठाया। सभी मरातिबों को खड़ा किया। हरीसिंह उस अवसर पर छड़ी लिये खड़े थे ॥१०३॥

दै सिर छत्र छबीलौ साज। अलक तिलक दै दीनौं राजु ॥

सुन्दर छत्र शिर के ऊपर रखा। अलक तिलक देकर राज्य का दान दे दिया।

॥ दोहा ॥

तुल में बढ्यौ विरोध, सुनु दान लोभ यह भेव।
रामसाहि जीवत भये, राजा विरसिंह देव ॥१०४॥

इस प्रकार से हे लोभ, दान [1] कुल में विरोध बढ़ता ही गया। राम शाहि के जीवित रहने पर वीरसिंह देव राजा हो गये॥

इति श्री भूमडलाखडलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विध्यवासिनी सवादे राज प्राप्ति वर्णन नाम पचम प्रकाशः ॥५॥

॥ दान उवाच ॥

सुन्यौ साहि जब मार्यौ सेख।
कहा करयौ करियो कहिये सुविसेख॥
कहा आपने मन मैं गुन्यौ।
सब ब्यौरा हम चाहत सुन्यौ ॥१॥

जब बादशाह ने सुना कि शेर मार डाला गया है तब उन्होने पूछा कि किस प्रकार से मारा गया है। मारने वाले ने अपने मन मे क्या सोचा है? इसे मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

मार्यौ सेख जहीं जिहिं सुन्यौ। अपनो सीसु तहीं तेइ धुन्यौ ॥
जहां तहां उमरावनि सोच। क्यौं कहिं जै यह बड़ो सकोच ॥२॥

जिसने ही सुना कि शेख मार गया है, वही दुख से अपना सिर धुनने लगा। सभी उमराव शोक मग्न थे और किस प्रकार से शेख के मारे जाने की घटना को कहा जाय, यह सभी को संकोच था ॥२॥

यह कहि उठे साहि दिन एक। सुनत हुते उमराउ अनेक ॥
आवत सेख कहत सब लोइ। रह्यो कहाँ यह जानत कोइ ॥३॥

अनेक उमरावों को सुनाकर बादशाह ने एक दिन कहा कि सभी लोग कह रहे थे कि शेख आ रहा है, किन्तु वह कहाँ पर रुक गया है, इसे कोई जानता है ? ॥३॥

काहू कछु न उत्तर दियौ। साहि कछू मनु दुचितौ कियौ ॥४॥

जब किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया तब बादशाह का मन कुछ चिन्तित हुआ ॥४॥

तब प्रभु रामदास सौं कह्यौ। सेख सोध तुमहीं नहि लयौ ॥
रामदास यह उत्तरु दयौ। सेख साहि सिर सदके भयौ ॥५॥

तब बादशाह ने रामदास से कहा कि शेख की खोज खबर तुमने भी नहीं ली। रामदास ने तब उत्तर दिया कि शेख का शिर उतार लिया गया है ॥५॥

सुनत ताहि ह्वै गये अधीर। परे धरनि सुधि बिगत सरीर।
सबही हाइ हाइ ह्वै रही। पूरि रही सब आंसुनि मही ॥६॥

यह सुनते ही बादशाह अधीर हो गया और पृथ्वी पर गिर गया। उसे अपने शरीर तक का ध्यान नहीं रहा। सभी जगह हाय हाय मच गई। सम्पूर्ण पृथ्वी आँसुओं से भर गई ॥६॥

अति नि शब्द भयौ दरबार। पवन हीन ज्यौं सिंधु अपार।
घरी चारि मैं आई सुद्धि। तब उठि बैठ्यो साहि सुबुद्धि ॥७॥

सम्पूर्ण दरबार उसी प्रकार से निःशब्द हो गया, जिस प्रकार से वायु के न चलने पर समुद्र निःशब्द हो जाता है। चार घड़ी में बादशाह को होश आया, तब वह उठकर बैठ गया ॥७॥

रामदास तू कहहि सम्हारि। किसा सेख को वचन बिचारि।
कहि धौं कछू आसिलो भयो। कै काहू बन जीवन हयो ॥८॥

रामदास तू ठीक ठीक बता कि शेख किस प्रकार से मारा गया। क्या कोई औसिला हो गया ? या किसी ने वन में उसके जीवन को हर लिया ॥८॥

परचौ किधौं वैरिन सों काम। कै काहू सों भयो सग्राम।

रामदास उवाच

आवत हौं अपने मग चल्यौ।
अब्दुल फजल सेख सुख फल्यौं ॥६॥

वैरियों से उसका सामना हो गया या किसी से युद्ध हुआ। रामदास ने कहा कि मै अपने रास्ते चला आ रहा था, वहाँ पर अबुलफजल मुझे सुखी दिखाई दिया ॥६॥

साहि सलेम हेतु गहि सेल। उझ्यो बीर बिरसिंह बुदेल।
तासों तबहि जूझ अति भयो। जुझि सेख परलोकहि गयौ ॥१०॥

सलीमशाह के हित के लिए वीरसिंह ने उसके ऊपर सेल चलाई। उस सेल से शेख उसी समय जूझ गया। जूझकर शेख परलोकगामी हुआ ॥१०॥

सोक न कीजे आलम नाथ। ता कहं तुरत लगावहु हाथ।
ऐसे वचन सुने नरनाह। नैन नीर के चले प्रवाह ॥११॥

हे आलम नाथ ! आप शोक न करें। वीरसिंह को शीघ्र ही आपके हाथों में लाकर दूँगा। नरनाह ने इस प्रकार के जब वचनों को सुना तब उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे ॥११॥

कोलाहल महलनि में भयो।
तिनकी प्रति धुनि सुनि मन रयो।
मुग्धा मध्या प्रोढ़ा नारी।
उठि दौरी जहं तहं उर डारी ॥१२॥

इस बात को सुनकर महलों में कोलाहल हुआ। उसकी प्रतिध्वनि सुनकर मन और भी रो उठा। मुग्धा, प्रौढ़ा, मध्या नारियाँ सभी इधर-उधर दौड़ने लगा ॥१२॥

भूषन पटन सम्हारत अंग। अधिक सोभ बाढ़ी अंग अंग।
चंचल लोचन जल भुल मले। पवन पाइ जनु सरसिज हले ॥१३॥

सभी अपने आभूषणों को सम्हाल रही थीं, इससे सभी के अंगों की शोभा अधिक बढ़ गयी। चंचल नेत्र भुलसने लगे। ऐसा लगा कि वायु को पाकर कमल हिल उठे हों ॥१३॥

चिल के अलिक अलक अति बनी।
तरकी तन अंगिये की तनी।
राज कुमारि हँसें मुह मोरि।
तुरकिन के उपजै दुख कोरि ॥१४॥

बाल चमकने लगे और अंगिया जो पहने हुए थीं, वह तनने लगीं। राजकुमारी मुँह मोड़कर हँस रही थी और तुरक लोगों के हृदय में दुख पैदा हो रहा था ॥१४॥

रोवति तन तोरति अति बनी। बिच बिच बाजति ढोलक घनी।

सवैया

केसी राइ अब्बुल फजलि मारयी बीरसिंह,
साहि के महल जहँ तहँ उठि धाई है।
पौरी पौरी पासरी निपट पठ पावरेई,
कटि तट छीन उर लट लटकाई है ॥
भृकुटी सो र भुरी सी, भभके से लोचननि,
उभके से उरजनि, उर छवि छाई है।
खानजादी खान डारि,पान डारि सेखजादी,
साहिजादी पान डारि पीटने को आई है ॥१॥

सभी रानियाँ रो रही हैं। बीच बीच में ढोलक बज रही है। वीरसिंह ने अबुलफजल को मारा है, इससे महल के अन्दर सभी उठकर इधर उधर दौड़ने लगी। पीली पीली पातरी है और कमर पतली है। भृकुटियाँ झुक गई हैं। नेत्र झकझोरे से हैं, उरोज उभर आये हैं जिससे कि उर की शोभा बढ़ गई है। खानजादी ने भोजन छोड़ दिया है और रोजजादी ने पान छोड़ दिए। शाहजादी पानों को छोड़कर मानो पीटने के लिए आई हों ॥४॥

चौपई

खाँ नाजिम कछु याहीं राम। लेरन फरीदहि भूल्यौ काम।
राउ भोज अरु दुरगाराउ। जगन्नाथ औरै उमराउ।
खत्री त्रिपुर साथ के लये। सब मिलि निकट साहि के गये ॥१५॥

नाजिम खा, रामसिंह कछुवाहा राजा भोज, दुर्गा राव, जगन्नाथ तथा अन्य उमराव और त्रिपुर के खत्रियों को साथ लेकर शेख की फरियाद के चक्कर में पड़कर सभी कामों को भूलकर बादशाह के पास गये ॥१५॥

साहि बिलोको आजम खान। बोलि उठ्यो दिल्ली सुलतान।
मेरे प्रान जातु हैं देख। आखिन आनि दिखावहु सेख ॥१६॥

आजम खा को देखकर दिल्ली सुलतान बोला कि शेख को लाकर मुझे अभी दिखाओ, मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥१६॥

हाथी हय हाटक मनि धीर। गाइक नाइक गुनी गभीर।
राग नाग फल फूल बिलास। डासन आसन असन सुवास ॥१८॥
भूषन भाजन भवन बिताना। सयति सकल कितेक पुरान।
पशु पच्छी भट सेना अंग। बिद्या बिबिध बिनोद प्रसंग ॥१९॥
देश नगर साथर गढ़ ग्राम। सेख बिना मेरे किहि काम ?

खान उवाच

जैसो सेख हतौ इहि धाम। तैसे तेरे बहुत गुलाम ॥२०॥

हाथी, घोड़े, बाजार, मणि, गुणी, गायक, गम्भीर नायक, राग, नग, फल फूल, विलासिता, सुगन्धित आसन असन बासन।

आभूषण, भाजन, भवन, वितान, सम्पूर्ण सम्पत्ति, पशु, पक्षी, योद्धा, सेना, स्त्रियां तथा अनेक प्रकार के विनोद के साधन।

देश, नगर, साथरगढ़ आदि शेख के बिना मेरे किस काम के हैं। इस पर खान ने कहा कि जैसे शेख मारा गया है, वैसे बीछियों आपके गुलाम हैं ॥१८, १६, २०॥

ता लगि कब वैं करि यतु दुःख।
खान पान छाड़त सब सुक्ख।
भारामल सिर सदके भयौ।
भव भगवानदास कित गयौ ॥२१॥

खान पान तथा सुखों को छोड़कर उसके लिए इतना दुख क्यों करते हो। आपके पास अभी तो राजा भारमल और भगवान दास हैं ॥२१॥

खान जहान कुतुबदी खान। आलमखान मुदफ्फरखान।
नृपति गुपाल सदा रन धीर। टोडरमल्ल राज बलबीर ॥२२॥

जहानखां, कुतुबदीखां, आलमखां, मुदफ्फरखां, गोपाल राजा सदा रण में धैर्य को बनाये रखने वाला है और शक्तिशाली राजा टोडरमल हैं ॥२२॥

को यह सेख सुनै सुलतान। जा लगि छाड़त कहत जहान।
मीचु कौन पर राखी जाइ। कीजै राज काज सुख पाइ ॥२३॥

एक शेख की इतनी क्या हस्ती थी, जिसके लिए आप संसार छोड़ने की बात करते हैं। मृत्यु किसी के रोकने से नहीं रुक सकती है। अतएव सुख पूर्वक राज्य करें ॥२३॥

कुंडलिया

कहै खान आजम जवन समझावन के बैन।
समुझै साहि न कहि थकै समुझै नेक न ऐन।

समुझै नेकु न ऐन नैन जलधर गति धारी।
अति धारा सपात होत कैसी भ्रमकारी।
उमग्यो सोक समुद्र कहो क्यो राखे रहै।
बार बार समुझाइ रहैं थकि जाइ जु कैहै॥ ३॥

खान ने सब प्रकार से अकबर को समझाने की कोशिश की। वह समझाते समझाते थक गया, लेकिन बादशाह की समझ में कुछ भी नहीं आया। वह थोड़ा भी नहीं समझे और आखो से आसू बहने लगे। सपात की धारा अत्यधिक भ्रम पैदा करने वाली होती है। जब शोक का समुद्र उमड़ पड़ा तब फिर वह किस प्रकार से रोका जाए। हरबार लोग समझाने की कोशिश करते हैं, किन्तु अन्त म सभी थककर बैठ जाते हैं।

कवित्त

अमिठि अमिठि निर वारि जाति आपु ही तैं,
केसौदास भृकुटी लतासी गिरधर की।
जरि जरि सीरी होति, सीरी ह्वै जरति छाती,
कैला कैसी दाही देह दीह हेम हरकी।
भरि भरि रीति जाति, रीति रीति भरै पुनि,
रहट घरी सी आंखि साहि अकबर की।
मधुकर साहि सुत राजा बीरसिंह जू की,
कीनी है कथा बिरचि न्याइ घर घर की॥४॥

बादशाह की भृकुटी अपने आपही बार बार टेढ़ी होती है। छाती जल जलकर ठंडी होती है और ठंडी होकर फिर जलती है। स्वर्ण के समान शरीर कोयला होकर जल रहा है। अकबर बादशाह की आखे बारबार आंसुओं से भर आती हैं और फिर खाली हो जाती है। उनकी स्थिति वही हो रही है जो कि कुएं म पड़े हुए रहट की होती है। मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह की कथा घर घर मे प्रचलित हो गयी है॥४॥

चौपई

साहि कह्यौ तब प्रगट प्रभाउ। सुनो सकल मेरे उमराउ।
मैं सब कीने बड़े बड़ाई। मो वह काम पर्यौ यह आइ ॥२४॥

मेरे सभी उमरावों, सब ध्यान से सुन लो। मने बड़े-बड़े काम किए हैं, किन्तु अब मेरा काम आ पड़ा है ॥२४॥

मारन हारी सेरह कौ चाहि। लै आवहु जीवत गहि ताहि।
सब मुनि रहे न उत्तरु दियौ। सबही को डर डरप्यौ हियौ ॥२५॥

शेर को जिसने मारा है, उसे जीवित ही पकड़ कर यहाँ पर ले आओ। सभी ने सुनकर कोई उत्तर नहीं दिया। सभी के हृदय भय से कांपने लगे ॥२५॥

कह्यौ राम राजा यह तबै। हिन्दू तुरक सुनत हैं सबै।
कै तसलीम सो कर्यौ प्रनाम। जिनके मो सारिखो गुलाम ॥२६॥

राम शाहि ने तभी कहा कि सभी हिन्दू और तुरक सुन रहे हैं। तसलीम कर के प्रणाम किया और कहा कि मेरा सरीखा जिसका गुलाम है ॥२६॥

सो प्रभु कैसे दुचितौ होइ। ल्यावों गहि जीवत वह सोइ।
तो मोपै ह्वै है सब काम। मेरे संग दीजे संग्राम ॥२७॥

उसका स्वामी किस प्रकार से चिंतित हो सकता है। मैं उसे जीवित ही पकड़ कर लाऊँगा। यदि आप मेरे साथ संग्राम को भेजेंगे तो मुझसे सारा काम हो जायगा ॥२७॥

यह सुनि साहि उठे मुसकाइ। ताकौ बिदा करौ पहिराइ।
बोल्यौ साहि, साहि संग्राम!। कह्यौ वृद्ध भो राजा राम ॥२८॥

यह सुनकर शाह मुसकरा कर उठे और उसे विदा किया। बादशाह ने कहा कि हे संग्राम! अब राजाराम वृद्ध हो गया है ॥२८॥

तू यह करै हमारौ काज। कटक हीन करहि निज राज।
इन्द्रजीत विरसिंह कराल। ये दोई हैं मेरे साल ॥२९॥

अतएव अब तू मेरे इस काम को करके कटक हीन तू राज कर। इन्द्रजीत और वीरसिंह दो ही मेरे कठिन शत्रु हैं ॥२९॥

इनहीं हतें होइ सब काज। येई हरिहैं तेरौ राज।
पायनि परयौ दौरि संग्राम। हौं करिहौं ये केतिक काम ॥३०॥

इनके मारने से ही सारा काम होगा और यदि नहीं मारे गये तो यही तेरा राज्य छीनेंगे। संग्राम दौड़कर पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा कि इस प्रकार के बहुत से आप के काम करूँगा ॥३०॥

दयो कछौवा, दई बडौन। पहिरायौ पग धारयौ भौन।
तब कछु सुख पायौ सुलतान। बदन पखारयौ खाये पान ॥३१॥

कछौवा और बडौन का राज्य दिया और पगड़ी पहना कर घर गया। इसके बाद बादशाह को कुछ सुख हुआ और उसने अपने शरीर को स्वस्थ किया और पान को खाया ॥३१॥

राजसिंह अरु तुरसीदास। ये पहिराइ चलाये पास।
दिये राय राया के साथ। अकबर दुहू दीन के नाथ ॥३२॥

राजसिंह और तुरसीदास को भी साथ भेज दिया। दोनों ही धर्मों के नाथ, अकबर ने और भी अनेक राय राना साथ में दिए ॥३२॥

गोपाचल गढ़ मेले जाइ। जोरयौ अधिक कटक्क बनाइ।
सिकरवार जादौ जागेर। तौंवर, हाडा, खीची खेर ॥३३॥

ग्वालियर में जाकर रुके और वहा पर और भी सेना इकट्ठा की। सेना में यादौ, सिकरवार, जागेर, तौंवर, हाड़ा, खीची, खेर आदि जातियों के लोगो को भर्ती किया ॥३३॥

गूजर, मैना, जाट अहीर। मुगल पठाननि की अति भीर।

गूजर, मैना, जाट अहीर, मुगल और पठानों की तो भीड़ लगी हुयी थी।

नाराच छंद

बेरछा पवांर पाइ। अर्त्ति कै लिये बुलाइ।
पेस ही प्रताप राइ। आपु ही मिले त जाइ।
दीह दु:ख देह साजि। साज साहि मैं डिढाहि।
चेति चित्त शत्रु साहि। मित्र भौ सुजानसिंह ॥१॥

बेरछा के पवार को बुला लिया। प्रतापराय अपने आप ही आकर मिला। सुजानसिंह शाह के शत्रु का विचार कर स्वत: मित्र बन गया ॥१॥

चौपाई

जबही मिल्यौ पँवार सुजान। खत्री मानी करि कै प्रान।
मेल्यौं तिपुर आनि आतुरी। पुनि मेल्यौ उचाट की तरी ॥३४॥

जैसे ही सुजान सिंह मिला वैसे ही उसने कहा कि खत्री तो मेरे प्राण है। तिपुर आतुर होकर स्वयं मिला फिर उचाट की तरी का विचार किया ॥३४॥

साहि सलैम कियो फरमान। तबही आयौं परम प्रधान ॥३५॥

बादशाह ने स्वत: आज्ञा दी तभी प्रधान आ गया ॥३५॥

बीरसिंह तू परम सुजान। तो पर अति कोप्यौं सुरतान।
पठई तोपर फौज प्रधारि। तिन सों तू माड़ैं जनि रारि ॥३६॥

हे बीरसिंह। तू अत्यधिक चतुर है। इस समय तेरे ऊपर सुल्तान कुपित हो गया है। उसने तेरे विरोध में बहुत बड़ी सेना भेजी है। तू इस समय उससे लड़ाई मत मोल ले ॥३६॥

सो फुरमान मानि सिर लयौं। बड़वनि छाडि सु दतिया गयौं।
तबही राम साहि अकुलाइ। मिल राइ रायां कहैं जाइ ॥३७॥

बीरसिंह उसकी आज्ञा को मानकर बड़वनि को छोड़कर दतिया चला गया। तभी रामशाहि आकुल होकर राय रायों से जाकर मिला ॥३७॥

तिपुर राम जब एकै भये । बीरसिंह तब ऐरछ गये ।
तब तिहि समय तिपुरु अकुलाइ । एरछ गढ़ महँ मेले जाइ ॥३८॥

तिपुर और रामशाहि जब एक हो गये तब बीरसिंह ऐरछ को चला गया । उस समय परेशान होकर तिपुर ऐरछ गया ॥३८॥

एर्छ घेरि लई तब सरी । पहिल उठान पठाननि करी ।
उझौं गाजि तब हरिसिंह देव । गहैं साग मानों बलदेव ॥३६॥

ऐरछ को जाकर जब घेर लिया गया तब पठानों ने सबसे पहले आक्रमण किया । उस समय हरिसिंह ने गरज कर हाथ में साँग ली तो ऐसा लगा माना साक्षात बलदेव ही आ गये हैं ॥३६॥

ऊझें सी निकसी तरवारि । परैं तीर तुपकनि की मारि ।
लोह चहू दिसि बरसत घनैं । नेकहु हरसिंह देव न गनै ॥४०॥

उधर से तलवारें निकल पड़ी, तीर बरसने लगे और तोप के गोले छूटने लगे । चारो ओर लोहा सनसनाने लगा किन्तु हरसिंह देव उस सब को कुछ भी नहीं मानता है ॥४०॥

सवैया

सकल सयान गुन, नाहि न गुमान उर,
केसौदास जानहु अजान मन भायो हैं ।
लरती के आगे आगे, भागती के पाछे पाछे,
बाएँ दाहिने ई लरत बतायो है ॥
सेना केसो नाह सेना नाह को सनाह,
जगनाह कैसो मीत जग जीव गीत गायो है ।
राजा बीरसिंह जू को बधु हरीसिंह देव हरीसिंह को,
दुहाई हरीसिंह कैसो जायो है ॥४१॥

हर्रसिंह के अन्दर सभी प्रकार के चतुरता के गुण हैं । उसके हृदय में थोड़ा भी गुमान नहीं है । अपरिचित लोगों को भी वह अच्छा लगता

है। लड़ने वालों के आगे और भागने वालों के पीछे रहता है। लोग कहते हैं कि वह दायें बायें दोनों ही ओर लड़ता है। वह सेना का स्वामी है। ईश्वर के समान वह मित्र है, ऐसा संसार के जीवों ने गाया है। राजा वीरसिंह का भाई हरिसिंह की दुहाई है जो कि हरसिंह के समान है ॥४१॥

जूझे पर सामुहे सपूत। जमल जमाल खान के पूत।
भागे सुभट सर्वे भहराइ। लोथिन तन चितयौं नहिं जाइ ॥४२॥

जमल और जमाल खा के सपूत पुत्र सामने ही युद्ध में मारे गये। और अन्य सभी योद्धा डरकर भाग खड़े हुए। लाशा की ओर देखा भी नहीं जाता है ॥४२॥

सिगरो दिन बीत्यो इहि भाँति। जूझ बुझानी आई राति।
चहू ओर गढ़ यह गति भई। अति औड़ी खाई खनि लई ॥४३॥

सारा दिन इसी प्रकार से व्यतीत हो गया और रात आगयी। गढ़ के चारों ओर की गहरी खाई पट गई ॥४३॥

सिगरे उमरावनि दुख भयो। साहि सलेमहि इक सुख छ्यो।
राति भये आरत्ति असेरु। कितनि करेगो चंचल भेरु ॥४४॥

सारे ही उमरावों को बड़ा दुख हुआ, केवल एक सलीम शाह को सुख हुआ। रात्रि हुई किन्तु पता नहीं वह कितनी चंचल वेर धारण करेगी ॥४४॥

प्रगटो अधराती चादनी। मारी दृग आनद कादनी।
मीरा सैद मुदप्फर बोलि। चलन कह्यो सबही भय खोलि ॥४५॥

आधीरात को चादनी खिली। वह नेत्रों को आनन्द दे रही थी। मीरा, सैद और मुजफ्फर ने कहा कि अब हम सभी को भय छोड़कर चलना चाहिये ॥४५॥

दोहा

पावक पानी पवन पति निकसे सिंह समान ।
सबही के देखत चले गाजि बजाइ निसान ॥४६॥

पावक, पानी और पवन पति सिंह के समान गर्जना करके निकले । सभी के देखते देखते वे निशानों को बजाकर चले ॥४६॥

कवित्त

बीरसिंह देव पौरि बाहिर दपेटि दौरि,
बैरिन को सेतु बेर बीमरु कर्चौ दिगो ।
कचन बुदेलमनि सेल्हनि ढकेलि कोरि,
हाथी पेलि चौकीदार बेतवै मे सौंदि गो ।
दुंदुभी धुकार सो हजार कों चुनौती देत,
भीम कैसो पैंज लेतु रेत खेत खोदिगो ।
राम सों को नाम स्योरि धाम सो जुन्हाई माँझ,
तामसी तिपुर के तनाउ तबु रौंदि गो ॥४७॥

बीरसिंह ने झपटकर शत्रुओं के बीसों लोगों को रौंद दिया । बीरसिंह ने अपने सेल से सभी को ढकेल दिया । हाथी ने बेतवा में सभी को रौंद दिया । हाथी अपनी चिंघाड़ से हजारों लोगों को चुनौती दे रहा है और भीम की भांति रेत के खेत में ही युद्ध कर रहा है । राम का नाम स्मरण करते हैं और तामसी तिपुर का तम्बू रौंद गया ॥४७॥

साहिर सलेम साहि जू के कहे बीरसिंह,
छाड़ि दीनी बड़्यनि दतिया उदीह तर ।
केसौदास तिपुर तुरक है दुनी को घेरची,
जाइ एछे मे घेरे होत घनी घर घर ।
कोट फोरि, फौज फोरि, सलिता समुद्र फोरि,
हाथिनि की गैठ फोरि कटक विकट वर ।
मारू दै दामोदो दै कै गारी दै गरूर,
महं पाउ दै सिधारै सिरदार ही के सिर पर ॥४८॥

सलीम शाह के कहने से वीरसिंह ने बड़वनि और दतिया को छोड़ दिया। तिपुर तुरकों से भी दूना दुष्ट है। उसने जाकर ऐरछ में घेरा डाल दिया। वहाँ पर घर घर में ढुढ़िया होरही है। कोटोको तोड़कर, फौज को छिन्न विच्छिन्न कर, नकी को तोड कर, हाथियों के झुड को तोड़कर, निकट युद्ध किया। मारू बाजों को बजवा कर, घमण्ड से गाली देकर, सिरदार के सिरपर पैर रख कर पार किया ॥५॥

जात जात सबही दल होइ। पीछे लागि सकै नहिं कोइ।
तिपुर गयद हीन मद भयो। वीरसिंह दतिया फिरि गयो ॥४७॥

सभी लोग कह रहे थे कि सेना जा रही है, किन्तु पीछा करने का साहस किसी का नहीं हो रहा था। तिपुर का गर्व समाप्त हो गया। वीरसिंह दतिया फिर से पहुँच गया ॥४७॥

दतिया तें फिरि करयो मिलान। जहां सलैम साहि मुलितान ॥४८॥

दतिया पहुँच कर सलीम शाह से जाकर भेंट की ॥४८॥

गयौ साहि के जब दरबार। पहिरायौ बहु दै सुखवार।
रीझि रीझि सत्री रस रयौ। उचरयौ तुरक कछौवहि गयौ ॥४६॥

सलीमशाह के दरबार में जब वीरसिंह पहुँचा तब उसने खुशी हो कर पहनाया और सभी सत्री रीझ गये। तुरक वहा से चल कर कछौवा को चले गये ॥४६॥

पग पग पेलि तिपुर कौ त्रास। गवे आगरे केसौदास।
तुरत तिपुर को भो फरमान। बोले इन्द्रजीत मति मान ॥५०॥

तिपुर को पग पग पर भय का अनुभव होने लगा और वह आगरे चला गया। इन्द्रजीत ने तुरन्त ही तिपुर को फरमान भेजा ॥५०॥

दे गढ़ इन्द्रजीत को राई। तबही कूच कियौ अकुलाइ।

॥ दोहा ॥

उचकायो रिपु गाउँ तै लै आये फरमान ॥
केसव को यह रीझ भौ लीनो दीनो दान ।५१॥

इन्द्रजीत को रई का गढ़ दे दो। ऐसी आज्ञा पाकर वह व्याकुल हो कर चल दिया। शत्रु वहा से भाग कर गया और फरमान ले आया। अत्यधिक प्रसन्न हो कर लोगा को दान दिया भी और लिया भी ॥५१॥

जात बीच लागी नहि बार। गये राय राया दरबार ॥५२॥

धन को जाने समय नहीं लगा। सभी राय राजा दरबार म गये ॥५२॥

कन्हर के सिर दीनो भार। छाड्यौ घर को सबै विचार॥
राजाराम बिदा कर दये। इन्द्रजीत हजरति पै गये ॥५३॥

घर का सभी विचार छोड़कर कन्हर के सिर पर भार दिया। राजा राम को विदा कर दिया और इन्द्रजीत हजरत से मिलने चले गये ॥५३॥

इति श्री भूमंडला खडलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे साहि रोप वर्णनं नाम पष्टम अध्याय ॥ ६ ॥

—:o:—

॥ दान उवाच ॥

सुनहु जगत जननी मति चारु। साहि कियौ पुनि कहा विचारु॥
साहि साहिजादे की बात। कहियौ हमसो उर अवदात ॥१॥

हे जगत जननी माता! इसके बादशाह ने क्या विचार किया? शाह और शाहजादे की बात को मुझसे कहो ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

जबहिं तिपुर घर के मग लगे। जहां तहां के थानें भगे॥
सूनो जानि भडेरि मुकाम। बैठे आइ साहि सग्राम ॥२॥

तिपुर जब घर चला गया तब इधर उधर के थाने भाग गये। भडौरि को सूना पाकर सग्राम साहि ने जाकर अपना प्रभुत्व जमा लिया ॥२॥

गये साहि पै साहि सलैम। भयो साहि के तन मन छैम॥
दतिया राखे बिरसिंह देव। भसनेहे मैं हरसिंह देव ॥३॥

सलीम शाह के पास शाह गये। शाहि तनमन से सन्तुष्ट हुआ। वीरसिंह को दतिया में रखा और हरिसिंह को भसनेह मे रखा ॥३॥

खड्गराइ सों भौ संग्राम। जूझे हरसिंह धी बलधाम॥
बीरसिंह सुनि कीनो रोस। मन ही मन मान्यो बहु सोस ॥४॥

खड्गराय से सग्राम का युद्ध हुआ। उसमे हरिसिंह स्वर्गगामी हुआ, यह सुन कर वीरसिंह को बहुत क्रोध आया और मन में शोक का अनुभव किया ॥४॥

भइ यहि समै प्रीति अति नई। बिरसिंह देव सग्रामैं भई॥
तब सग्राम साहि हिय हेरि। बीरसिंह को दई भडेरि ॥५॥

वीरसिंह और सग्राम में इस समय नई प्रीति हुई। तब सग्राम सिंह ने वीरसिंह को भडेरि का राज्य दे दिया ॥५॥

बीरसिंह सग्रामहि ऐन। कह्यौ लबूरा गढ़ ले दैन॥
खड्ग राइ खल खरो जिहान। महा मत्त मातग समान ॥६॥

वीरसिंह ने सग्राम सिंह से लबूरा गढ़ को देने के लिए कहा। खड्गराय ससार का सब से बड़ा खल और हाथी के समान गर्वीला है ॥६॥

बीरसिंह बरुता पर चढ़्यौ । बन्धु बरग बहु बिग्रह बढ्यौ ॥
तज्यौ लबूरा आवत दीठ । चमू चली ताकी परि पीठ ॥७॥

वीरसिंह बरुता के ऊपर बैठा । बन्धु वर्ग के कारण से विरोध बहुत अधिक बढ़ गया । उसे आता देख कर लबूरागढ़ को छोड़ दिया । सेना उसकी ओर पीठ करके चल दी ॥७॥

रुक्यौ लौटि अमिलौटा गाउ । खड़गराइ जूभयौ जिहि ठाउँ ॥
जूभयौ तब ताकौ परिवार । कोट सिर सब तज्यौ विचार ॥८॥

असिलौटा ग्राम में आकर रुक गया जहा पर खड़गराय मरा था । उसका वहा पर सारा परिवार ही मर गया । बिना किसी विचार के सभी के सिरों को काटा ॥८॥

लीनौ जीति लचूरा ग्राम । बैठारे तहं साहि सग्राम ॥
मूड़ काटि कै घाले तहां । साहि सलैम छत्रपति जहाँ ॥९॥

लचूरा ग्राम को जीत लिया और उसे सग्राम शाहि को दे दिया । सलीम शाह छत्रपती ने जहा मूड़ काट डाला था ॥९॥

अकबर साहि सुनी यह बात । मूड़ देखि सुख पायो तात ॥
उपज्यौ रोस सुनत ही बात । जालिम जलाल दीन के गात ॥१०॥

अकबर बादशाह ने जब इस बात को सुना और पुत्र के शिर को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ । जालिम और जलालदीन के सुनते ही क्रोध पैदा हो गया ॥१०॥

पठयौ तह कछवाहौ राम । साहि सलैम जहां बलधाम ॥
करि तसलीम समै जब लह्यौ । बचन निवारि राम सब कह्यौ ॥११॥

जहा पर सलीम शाह था, वहा पर रामसिंह कछुवाहा को भेजा । रामसिंह ने तसलीम की और समय पाकर उसने कहा ॥११॥

दुहु दीन प्रभु साहि जलाल । तुम ऊपर अति भए कृपाल ॥
तुम सुख सकल साहिबी करौ । सत्रुन के सिर पर पग धरौ ॥१२॥

हे जलाल ! बादशाह दोनों धर्मों का स्वामी है। वह तुम्हारे ऊपर बहुत कृपालु है। तुम साहिबी के लिए सब कुछ करो। शत्रुओं के शिर पर पग रखो अर्थात् उन्हें पराजित करो ॥१२॥

बीरसिंह बासुकी गनेहु । जो तुम मुख सरीफतों देहु ॥
हय गय माल मुलक उमराउ । इन पर कीजै प्रगट प्रभाउ ॥१३॥

वीरसिंह, वासुकी, गनेहु, शरीफता को यदि तुम मुख दो तो तुम्हें हाथी, घोड़े, माल, मुलक उमराव आदि सभी मिलेंगे ॥१३॥

इतनौ बचन कहत ही राम । साहि सलेम हसे बलधाम ॥
रामदास सुनु मेरी गाथ । यह साहिबी ईस के हाथ ॥१४॥

रामदास के इतना कहते ही सलीमशाह हँस पड़ा। सलीमशाह ने कहा कि रामदास यह साहिबी तो ईश्वर के हाथ में है ॥१४॥

स्वर्ग नरक दस दिसि धाइये। काहु की न दई पाइये ॥
रंकहि राजा होत न बार। राजा रंक भये ते अपार ॥१५॥

स्वर्ग नर्क के लिए चाहे कोई कितना ही यत्न करने का प्रयास क्यों न करे, किन्तु वह किसी के देने से नहीं मिलती है। रंक को राजा होने में देर नहीं लगती है और राजा से रंक भी अनेक हो गये हैं ॥१५॥

जो मैं कत उपजावत छोभ ? याको हमैं दिखावत लोभ ॥
बाला जू के पग उद्धरै । अपनो सीस निछावर करै ॥१६॥

अपने मन में तुम क्षोभ क्या पैदा करते हो। और इसका मुझे लोभ क्यों दिखाते हो ? बाला जी का किसी प्रकार से उद्धार हो जाय तो मैं अपने सिर तक को निछावर कर सकता हूं ॥१६॥

बीरसिंह अरु बासुकि भूप। सुनि सरीफ सा बुद्धि अनूप ॥
इन्हैं देव कैसी देखिये। हों हजरति सो सुत लेखिये ॥१७॥

वीरसिंह और बासुकी राजा को निरुपम बुद्धिशाल शरीफता को कैसे दिया जा सकता है। यद्यपि मैं हजरत का पुत्र हूँ ॥१७॥

रामदास तब ऐसो कह्यो । अब सरीफखाँ बासुकि रह्यौ ॥
अपने घर मैं सुख कीजई । राजा बीरसिंह दीजई ॥१८॥

रामदास ने तब कहा कि शरीफखां और बासुकि को अपने पास रख लो। अपने घर म सुख के लिए कम से कम बीरसिंह को दे दो ॥१८॥

सुनि सुनि साहि कह्यो बुधि लहीं। रामदास तैं नीकी कही ॥
मेरो वीरसिंह जो होइ। तौ मैं वाहि देउँ पति खोइ ॥१६॥

सलीमशाह ने कहा कि रामदास तूने ठीक कहा है। यदि वीरसिंह मेरा होता, तो मै उसे दे देता ॥१६॥

मन क्रम वचन चित्त यह लेखि। मो कहँ वीरसिंह कह देखि ॥
देन कहत जगती को राज। ताक्ह तू चाहत है आज ॥२०॥

मन, क्रम, वचन और चित्त से विचार कर तो तू देख। तू मुझसे वीरसिंह को देने के लिए कह रहा है, जो कि मुझे ससार का राज्य देने को कह रहा है, तू उसी को देने की बात कहता है ॥२०॥

वाके साथ विपति बरु परों। वा बितु राज कहा लै करौं ?
तू मेरो सदई सुखकारि। और जो होतो डारौं मारि ॥२१॥

उसकी सारी विपत्तियों मे भाग लूँगा। उसके बिना मै राज्य को लेकर क्या करूँगा। तू सदैव ही मुझे सुख देने वाला रहा है। यदि इस समय तेरे स्थान पर और कोई होता तो उसे म मार डालता ॥२१॥

जाहि वेगि जो चाहत छेम। चले कूच कै साहि सलेम ॥
करयौ कूच सभाग। गयौ प्रगट प्रभु तुरत प्रयाग ॥२२॥

यदि तू कुशल चाहता है तो अभी चला जा, सलीमशाह कूच के लिए चल दिया है। प्रयाग के लिए तुरन्त ही प्रस्थान कर दिया ॥२२॥

रामदास सब ब्यौरा कह्यो। समुझि साहि सुनि चुप है रह्यो ॥
तेही समै गयौ अकुलाइ। खड़गराइ को लहुरो भाइ ॥२३॥

रामदास ने सम्पूर्ण वर्णन किया उसे सुनकर अकबर चुप हो गया। उसी समय व्याकुल होकर खड़गराय का छोटा भाई आया ॥२३॥

करी साहि सों आइ फिरादि। अधिक अनायन दीजै दादि॥
साहि मुरादि जबै उत गये। रामसाहि तब आगे भये ॥२४॥

अकबर जाकर फरियाद की कि दोनों की सहायता कीजिये। मुराद शाहि जब पीछे हुए तब रामशाहि आगे आया ॥२४॥

तब बोले हम साहि मुरादि। हमसे दीदन दीनी दादि॥
सेवा देखि कृपा दृग दिये। खड़गराइ उन राजा किये ॥२५॥

हम मुरादशाह ने दादि दी थी। खड़गराय की सेवाओं को देखकर उन्होंने उसे राजा बनाया था ॥२५॥

सुनिये आलमपति इहि भेव। मारे सब हम बिरसिंह देव॥
राजा बीरसिंह देउ, संग्राम। इन्हीं दुहुन को एकै काम ॥२६॥

हे आलमपति! इस समय वीरसिंह ने सभी को मार डाला है। वीरसिंह और सग्राम का यही काम है ॥२६॥

हमहि मारि तब सुनहु सभाग। बीरसिंह नृप गये प्रयाग॥

हमको मारकर वीरसिंह प्रयाग गये।

॥ दोहरा ॥

बोलि विपुर सौं यह कही दिल्ली के सुलतान।
इनकी नीकै राखिये दै भोजन परधान ॥२७॥

दिल्ली के सुलतान ने विपुर के लिए प्रधान से कहा कि इन्हें भोजन देकर अच्छी प्रकार से रखो ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

रामदास सों कहियेहु येहु। कोऊ एक बिदा करि देहु॥
देखै जाइ ओड़छौ ग्राम। ल्यावै बेगि बोलि संग्राम ॥२८॥

रामदास से जाकर कहना कि किसी भी एक को भेज दें और ओड़छा ग्राम में जाकर सग्राम सिंह को तुरन्त ले आवें ॥२८॥

भीतर भवन गयें तिहि घरी। पहिरावन पठई पामरी ॥२६॥

भेजने वाली पामरी को पहनाने के लिए घर के भीतर गये ॥२६॥

रामदास सारो आपनो। पठै दियौ अपनो प्रति मनौ ॥
कहै साहि आलम रिस भर्यौ। बहुत गुनाह बुन्देलनि कर्यौ ॥३०॥

रामदास ने अपने साले को भेजा दिया। मानो अपने प्रतिनिधि को ही भेज दिया हो। आलमशाह ने क्रोध में कहा कि बुन्देलों ने अनेक अपराध किए हैं ॥३०॥

माडौला तपै खाली देस। मेरे सुत को भयौ प्रवेस ॥
बहुत बुन्देलनि बढ़्यौ प्रभाउ। करिहैं साहि सलेम सहाउ ॥३१॥

मडौला खाली देश पड़ा था। वहा पर मेरे पुत्र ने प्रवेश किया है। बुन्देलों का प्रभाव बहुत बढ़ गया है और सलीमशाह भी सहायता करेंगे ॥३१॥

रोस उठ्यो मेरे मन महा। इन्द्रजीत कौ कीजे कहा ॥
बोल्यौ असरफ खा चित-चाहि। घालै आज बुन्देलनि साहि ॥३२॥

मेरे मन बहुत क्रोध पैदा हो गया है, लेकिन इन्द्रजीत का क्या किया जाए। अशरफ खाँ बोला कि बुन्देलों का विनाश कर देना चाहिए ॥३२॥

विमुखनि को कीजै कुल नास। पद सनमुखनि बढ़ाव अकास ॥
अर्ज मेरि यह मानिय आज। इन्द्रजीत को दीजै राज ॥३३॥

विरोधियों के कुलों तक का विनाश कर देना चाहिए और जो साथी हैं उन्हें आकाश तक ऊँचा बनाना चाहिये। मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लीजिए कि इन्द्रजीत को राज्य दे दिया जाय ॥३३॥

रामदास सों कह्यौ बुलाइ। करौं नवाज सुबा की जाइ ॥
सुभ दिन होइ तो चेला करो। चेला करि बिपदा सब हरौं ॥३४॥

रामदास से बुलाकर कहा कि अब मैं प्रातः की निवाज करने जा रहा हूँ। जिस दिन शुभ दिन हो उस दिन मैं उसे अपना चेला बनाऊँ और उसके सारे कष्ट को दूर कर दूँ ॥३४॥

यह कहि साहि झरोखहि गये। इन्द्रजीत को देखत भये॥
इन्द्रजीत तैं जैहै तहा। सठ संग्राम गयो है जहा ॥३५॥

इन्द्रजीत को देखता हुआ शाह झरोखे में गया। अब इन्द्रजीत वहीं जायेगा, जहाँ दुष्ट संग्राम गया है ॥३५॥

इन्द्रजीत तब ऐसौ कह्यौ। मैं तो साहि चरन सग्रह्यौ॥
मेरे मन यहई प्रन धरयौ। हजरति चरन कमल घर करयौ ॥३६॥

इन्द्रजीत ने कहा कि मैंने तो शाह के चरणों को पकड़ लिया। मेरी तो यही प्रतिज्ञा है कि हजरत के पैरों को ही अपना स्थान बनालू ॥३६॥

इन्द्रजीत तसलीम जु करी। साहि दई आपनि पामरी॥
बूझे साहि सभा सद सबै। वीरसिंह देव कहा है अबै ॥३७॥

इन्द्रजीत के तसलीम करने पर शाह ने उसे अपनी पामरी दे दी। शाह ने अपने सभी सभासदों से पूछा कि इस समय वीरसिंह कहाँ है? ॥३७॥

इतहिं नाउ वहि आयो बैन। उत अति जल भरि आए नैन॥
जब जब साहि सुनत यह नाउँ। भूलत सब मन सुख्ख सुभाव ॥३८॥

इधर मुख से बात निकली और उधर नेत्रों में आंसू भर आये। जब जब शाह इस नाम को सुनता है, तब उसे अपना सारा सुख भूल जाता है ॥३८॥

सूल हिये तब हित सब सलै। नैननि तैं जल धारा चलै॥

उसके मन को पीड़ा सदैव साला करती है और नेत्रों से सदैव जल धारा बहा करती है।

मन क्रम वचन कही व्रत धरै। कह्यौ गुरू को चेला करै॥
जो याके हा त्यारी होइ। देउ राज जाने सब कोइ॥४३॥

मन क्रम वचन से व्रत को धारण करें और गुरु ने कहा कि इसे चेला बना लें, यदि इसके यहाँ पर सब प्रकार की तैयारी हो तो इसे जाकर राज्य दे दो॥४३॥

इन्द्रजीत सौं यहई बात। जाइ कही ऊदा के तात॥
इन्द्रजीत यह उत्तर दियौ। मैं अखत्यार सबै कछु कियौ॥४४॥

इन्द्रजीत से जाकर ऊदा के तात ने यही बात कही। इन्द्रजीत ने कहा कि मैंने सब कुछ स्वीकार कर लिया है॥४४॥

जो कछु साहि कहैंगे आजु। सबैं करौं पै लेहुँ जु राजु॥
यहै कही हजरति सौं जाइ। भीतर भवन गए दुख पाइ॥४५॥

बादशाह जो कुछ भी आज मुझसे कहेंगे वह सब कुछ मैं करूँगा किन्तु राज्य न लूगा। अत्यधिक दुखी होकर हजरत से यही बात घर में जाकर कही॥४५॥

॥ दोहरा ॥

दासी सब कुल तिय तजै ज्यौं जड़ त्यौं यह जान।
इन्द्रजीत किय कुमति हित राज श्री अपमान॥४६॥

वेलि तिपुर ताही छन माहि। दीनौ राज कृपा करि ताहि॥
मन क्रम वचन कियो अति मीत। तासौं कह्यो विक्रमाजीत॥४७॥

दासी श्रेष्ठ कुल को पाकर यदि छोड़ दे तो यह उसकी जड़ता ही है, उसी प्रकार से इन्द्रजीत ने राजश्री का अपमान किया है। शाह ने उसी समय त्रिपुर को बुलाया और कृपा करके उसे राज्य दे दिया। और उसे मन क्रम वचन से अपना मित्र बना लिया तथा उसे विक्रमाजीत की उपाधि दी॥४७॥

तासो मतो करयो करि नैंम । बोल्यो हौं मैं साहि सलेम ॥
हों अब रोकि राखिहौं ताहि । तू अब वेगि ओड़छे जाहि ॥४८॥
चल्यौं तिपुर उत इतहि बसीठ । पठये साहि पुत्र पर ईठ ॥
गये तहां जहं साहि सलेम । प्रगटयो जाइ पिता को प्रेम ॥४६॥

उसके साथ नियम पूर्वक विचार किया और कहा कि मैं सलीमशाह हूँ, अब मैं उसे रोक दूँगा और तू ओड़छा शीघ्र ही चला जा। तिपुर उधर चला और इधर बसीठ को सलीम शाह के पास भेजा गया। उसने सलीमशाह के पास जाकर पिता के प्रेम प्रकट किया ॥४८ ४६॥

तुम बिन सुनो साहिको चित्त । कल न परत मनु आलम मित्त ॥
बेगन रां तन तजि यह लोक । छोड़ि गयो लीनो परलोक ॥५०॥

तुम्हारे बिना आलम शाह को चैन नहीं आ रहा है। बेगम रा इस ससार ने शरीर को छोड़कर परलोक चला गया है ॥५०॥

तिन को दु.ख रह्यो परि पूर । दूर करै को तुम अति दूर ॥
इतनो सुनत छूटि गयो छेम । सोक समुहे साहि सलेम ॥५१॥

उसका सारा दुख बादशाह के शरीर मे व्याप्त हो गया है। तुम्हार बिना उसको कोई दूर नहीं कर सकता इतना सुनते ही सलीम शाह का सारा सतोप नष्ट हो गया और सारा शरीर शोकमग्न हो गया ॥५१॥

दिन दोई यह दुख अवगाहि । आये बाहिर आलम साहि ॥
मुजरा कियो बसीठनि आनि । पूछी तिन्हें बात जिय जानि ॥५२॥

यह दो दिन का दुख है आलम शाह बाहर आया और बसीठियों से अपने मन की बात पूछ ने लगा ॥५२॥

अकबर साह गरीब नेवाज । इन्द्रजीत को दीनों राज ॥
कहे बसीठनि सब व्योहार । जैसो कछू भयो दरबार ॥५३॥

अकबर ने इन्द्रजीत को सारा राज दे दिया है। बसीठियों ने उस समस्त व्यवहार को कहा जो दरबार में घटित हुआ था ॥५३॥

तब हँसि बोल्यो सरीफखान। बीरसिंह तजि को तन त्रान ॥
राजा वासुकि केसोराइ। तिन सों कह्यो चित्त को भाइ ॥५४॥
तब शरीफ खाँ हँस कर बोला कि वीरसिंह तू अपने शरीर के त्राण को छोड़ दे। और राजा वासुकि से उनको अच्छी लगने वाली बात कही ॥५४॥

सौंपै बेगम जू को सोग। रह्यो न जाइ भगे सब भोग ॥
मेर मन उपज्यो यह भाउ। देखौं पाति माहि के पाउ ॥५५॥
बेगम का शोक मुझको बहुत सता रहा है। मेरी भोग करने की सारी इच्छा नष्ट हो गई है। अब मेरे मन में यह भाव पैदा हो रहा है कि राजा के चरणों को जाकर देखूँ ॥५५॥

राजा वासुकि उत्तर दियो। अपने चित्त सबै समझियो ॥
करन कह्यो है साहि न सोग। सोग किये तें उपजै रोग ॥५६॥
राजा वासुकि ने कहा कि तुम अपने मन को सब सोच समझ लो। बादशाह ने शोक करने के लिये नहीं कहा है। शोक करने से अनेक रोग पैदा होते हैं ॥५६॥

रोग भए भागै सब भोग। भोग भगे नहि सुख संजोग ॥
सुख बिन दुख कर दिन उद्दोत। दुख तैं कैसे मंगल होत ॥५७॥
रोग होने से सब प्रकार की भोग करने की इच्छा नष्ट हो जाती है भोग इच्छा नष्ट होने से सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सुख के अभाव में दुख का उदय होता है और दुख के कारण से मंगल नहीं प्राप्त हो सकता ॥५७॥

तातें सोग न कीजै साहि। गवन तुम्हारो भावत काहि ॥
कैसी राइ अरज जब करी। लीनै हाथ छबीली छरी ॥५८॥
इस कारण से हे शाह! किसी प्रकार का शोक न करिये और तुम्हारा यहां से जाना किसे अच्छा लग रहा है। जब इस प्रकार से प्रार्थना की गई तब उन्होंने अपने हाथ में सुन्दर छड़ी ले ली ॥५८॥

साहि समीप गए हैं तव। कहा जाइ पुनि कीजै अब ॥
हजरत के जक यहई हिये। होव प्रसन्न न सेवा किये ॥५६॥

शाह के पास जाकर के कहा "अब जाने से क्या होगा, हजरत की तो यह समझ है कि वे सेवा से भी प्रसन्न नहीं होते ॥५६॥

करिये साहि जु करनै होय। गति न तुम्हारी जानै कोय ॥
करि तसलीम सुमिरि नर हरी। वीरसींघ तव विनती करी ॥६०॥

अब आप की जो इच्छा हो सो करिये। आप की गति जानी नहीं जाती तब वीरसिंह ने ईश्वर का स्मरण कर तस्लीम की और फिर विनती कर के कहा ॥६०॥

जैयत हैं वेगम के हेत। आलम प्रभु के नगर निकेत ॥
जिहि सुख होय साहि के गात। सोई कीजै तजि सब वात ॥६१॥

आप वेगम के कारण आलम के नगर में जा रहे हैं। जिस प्रकार से भी बादशाह को सुख मिले उसी प्रकार से काम आप सारी बात को छोड़ कर करें ॥६१॥

मोहि साहि कौं सौंपी जाइ। जातें कुल की कलह नसाइ ॥
हौं हजरत सिर सदके भयौ। एक गुलाम भयौ नहि भयौ ॥६२॥

अच्छा होगा कि मुझे बादशाह के हाथ सौंप दो, जिससे कि कुल का सारा कलह नष्ट हो जाय। आप तो हजरत के प्रिय हो जायेंगे। एक गुलाम के होने न होने से क्या होता है ॥६२॥

खां सरीफ बोले रिस भरे। वीरसिंह तुम राजा करे ॥
सुतौ साहि अव देत न वनै। राजा दीनै पातक घनै ॥६३॥

इस समय शरीफ खा गुस्से में बोला कि तुमने वीरसिंह को राजा बनाया है और अब उसे राजा को देना ठीक नहीं है। राजा को देने से अत्यधिक पातक होगा ॥६३॥

तातैं मोहि मैया करि देहु । बढ़ैं साहि सौं दिन दिन नेहु ॥
उपजावत छिति मण्डल छेम । बोलि उठे तव साहि सलेम ॥६४॥

इसलिये अच्छा होगा कि आप मुझे बादशाह को दे दें, और आप का उनसे दिन प्रति स्नेह बढ़ता रहे । तुम सारे छिति मंडल में चैन को उत्पन्न कर रहे हो । इस पर सलीम शाह बोला ॥६४॥

तुम्हैं देउ हजरत हित साज । काहि बढ़ाऊं आपने राज ॥
बहुरि न मोसौं ऐसी कहौ । मेरे जीवत निरभै रहौ ॥६५॥

यदि तुम्हें हजरत को दे दूँगा तो अपने राज्य में किसे आगे बढ़ा ऊँगा, अब आगे इस प्रकार की बात मुझ से कभी मत कहना । मेरे जीवित रहते तुम निर्भय रहो ॥६५॥

साहि सलेम साहि पै गये । साहि बहुत तिन कौं दुख दये ॥
दूरि सरीफखान भगि गयौ । सबै मुलक अति दुचितौ भयौ ॥
निरसिंघ देउ मैया संग्राम । देख्यो आनि ओड़छौ ग्राम ॥६६॥

सलीम शाह बादशाह के पास गया, बादशाह को बड़ा दुख हुआ । शरीफ खां का साथ छोड़ कर भाग गया । सारे देश में भय फैल गया । वीरसिंह और संग्राम दोनों भाई ओड़छा चले आए ॥६६॥

इति श्री भू मण्डला खण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ त्रिंधगामिनी सम्वादे छिति पति छल वर्णनं नाम सप्तम प्रकाशः ॥७॥

॥ दान उवाच ॥

॥ चौपई ॥

कहौ, देवि, कित गयौ अभीत । साहि कियो जु बिक्रमाजीत ॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

मेल्यो तिपुर सिन्धु के तीर । भुमियां मिले रीव तजि धीर ॥
तबहि तिपुर दतिया तन गये । इन्द्रजीत अपने घर भये ॥२॥

बादशाह ने उसे विक्रमाजीत की उपाधि दी थी । वह किस प्रकार से भय रहित हुआ हे देवि ! इसको बताओ । देवी नहीं कि त्रिपुर सिन्धु के पास जा कर रुका है । वहा पर उसे भुमिया कोमद धैर्य छोड कर मिले । त्रिपुर दतिया चला गया और इन्द्रजीत अपने घर चले आए ॥२॥

खोजा अब दुल्लह आइयौ । मिलि भदौरिया सुख पाइयौ ॥
तिपुर सुजानि साहि सौं कहै । चलौ बैतवै जल संग्रहै ॥३॥

अब दूल्हा राम खोजा आया । वहा पर उससे मिलकर भदौरियो को बड़ा सुख हुआ । तिपुर ने बादशाह से कहा कि बेतवै के किनारे जल सग्रह के लिए चलना चाहिये ॥३॥

बेहड़ काटत चल्यौ सुभाउ । रह्यौ आनि खम्हरौली गाउ ॥
इन्द्रजीत निरसिंघ देव आय । लीने सुभट दरैं अरि दाय ॥४॥

स्वाभाविक रूप से ही बेहड़ को काटते हुए खम्हरौली ग्राम मे आकर रुक गये । वीरसिंह और इन्द्रजीत ने स्वत.ही शत्रु योद्धाओ को दाब लिया ॥४॥

॥ दोहा ॥

दुहूँ कटक अरु ओड़छै आध कोस की बीच ।
बेहड़ काटत मिसि परवी काटतु काट लै नीच ॥५॥

दोनो ही कटक और ओड़छा आधे कोस के बीच मे थे । बेहड काटने के बहाने नीच तक को काट रहे थे ॥५॥

॥ चौपही ॥

इत कठ गरु उत सरिता कूल। मारग कियो परम अनुकूल॥
तदपि न गयो ओड़छे परै। निसि वासर सिगरो दल डरै॥
एक समय सिगरे उमराउ। लगे विचारन मगत उपाउ॥६॥

इधर कठगुरु था और उधर सरिता का किनरा था, इससे मार्ग बड़ा ही अनुकूल बन गया था। फिर भी ओड़छा जाने का साहस नहीं हुआ। रात दिन सारा दल डरा करता था। एक दिन सारे उमराव मिलकर युक्ति पर विचार करने लगे॥६॥

जौ कोऊ कछु करै विचार। मानै नहीं तिपुर तिहि बार॥
राजा राम सिंघ तब कह्यो। हमसौं वैठे जाइ न रह्यो॥७॥

जो भी कोई कुछ विचार करता था, तिपुर उसे मानता ही न था। तब राजा मानसिंह ने कहा कि बहुत समय तक रुक नहीं सकता॥७॥

भोर होत नहिं लाऊँ बार। जारि ओड़छौ करिहौं छार॥
मारू कह्यो सुनौ नरनाथ। हौं आयौं राज के साथ॥८॥

प्रात काल बिना किसी विलम्ब के ओड़छे को जलाकर क्षार कर दूँगा। मारू ने कहा कि हे नरनाथ! मैं राजा के साथ में आया हूँ॥८॥

तिपुर तिन्हैं बहु बरजत भये। बरजत ही उठि डेरहि गये॥
राजा जगे बड़े ही भोर। बजे दमामें जनु घन घोर॥६॥

तिपुर ने उन्हें बहुत रोकने का प्रयास, किन्तु फिर भी वे अपने डेरे में चले गये। राजा बड़े ही प्रात.काल उठे और उनके उठते ही घोर दमामें बजने लगे॥६॥

सकिलि सकल दल सज्जित भयौ। रह्यो न माहू हठ कौ लयौ॥
सजि चतुरङ्ग चमू नृप चल्यौ। गाजत गज चालत भुव हल्यो॥१०

सम्पूर्ण दल युद्ध निमित्त सज्जित हुआ। मारू का हठ कुछ काम न कर सका। राजा अपनी सेना को सजाकर वहा से चल दिया। हाथी गर्ज रहे थे और चलने पर पृथ्वी हिल रही थी ॥१०॥

दुंदुभि सुनि कासी सुर चढ्यौ। चढ्यौ तिपुर सबही बर बढ्यौ ॥
राजाराम साहि गल गज्यौ। वीरसिंह की दुंदुभि बज्यौ ॥११॥

दुँदुभी को सुनते ही कासी सुर ने भी चढ़ाई की। तिपुर के चढ़ते ही सभी योद्धा आगे बढ़े। राजाराम शाहि का दल गर्जना करके आगे बढ़ा। वीरसिंह की भी दुँदुभी बजने लगी ॥११॥

समकि चढ्यौ तब साहि सग्राम। ताके चित्त बसे संग्राम ॥
इन्द्रजीत अरु राउ प्रताप। बाघे कवच लिये कर चाप ॥१२॥

सग्रामसाहि के मन मे युद्ध बसा हुआ था। इसलिए वह युद्ध करने के लिए तत्पर हो गया। प्रतापराउ और इन्द्रजीत ने कवच धारण कर हाथ मे धनुष ले लिया ॥१२॥

उग्रसेन अरु केसौदास। जानत हैं बहु जुद्ध बिलास ॥
ठाकुर और कहां लौं कहीं। कहन लेउं तौ अन्त न लहौं ॥१३॥

उग्रसेन और केसौदास युद्ध के अनेक विलासो को जानते हैं। हे ठाकुर ! युद्ध का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? यदि कहने का निश्चय करूँ, तो उसका कभी भी अन्त न होगा ॥१३॥

दोऊ दल वल सज्जित भये। बहुधा व्योम विमानन छये ॥
राजसिंह की पत्नी पद्मनि। नव दुलहिनि गुन सुख सद्मिनी ॥१४

दोनों दल सजकर तैयार हुए। विमान आकाश मे उड़ने लगे। राजसिंह की नव विवाहिता पत्नी पद्मनी गुणों और सुखों का घर है ॥१४॥

सिर सब सीसोदिया सुदेश। बानी बड़ गूजर वर वेस ॥
श्रुति सिर फूल सुलङ्की जानु। लोचन रुचि चौहान बखान ॥१४॥

पन्द्रह से छब्बीस तक की चौपाइयों में उन राजपूतों की विशेषता का वर्णन किया गया है, जिन्होंने युद्ध में भाग लिया था।

सभी शिशोदिया वशी राजपूत सरदार थे। अधिक बात करने वाले सुन्दर वेष में गूजर थे। कान और शिर पर फूल लगाने वाले शोलंकी राजपूत थे और सुन्दर नेत्रों वाले चौहान थे ॥१५॥

भनि भदौरिया भूषित माल। भृकुटि भेटि भाटी भूपाल ॥
कछवाहे कुल ललित कपोल। नैषध नृप नासिका श्रमोल ॥१६॥

सुन्दर माला पहिने हुए भदौरिया थे और सुन्दर गालों वाले कछुवाहे थे और नैषध नृप की नाक अमूल्य थी अर्थात् बहुत ही सुन्दर थी ॥१६॥

दीसत दसन सुहाड़ा हास। बीरा बसै बनाफर बास ॥
मुख रुख मारु चिबुक चदेल। भीवा गौर, सुबाहु बघेल ॥१७॥

हसते समय जिसके दाँत दिखाई पड़ने लगते हैं वह सुहाड़ा है। वीर रस से युक्त बनाफर जाति के राजपूत हैं। मुख और टोढ़ी में जिनसे युद्ध करने की आभा मिलती है, वह चन्देल राजपूत हैं। गौर ग्रीवा और सुन्दर भुजाओं वाले बघेल राजपूत हैं ॥१७॥

कुल कनौजिय कंचुकि चारु। कुर करचुली कठोर विचारु ॥
पान पवैया परम प्रवीन। नृप नाहर नख कोर नवीन ॥१८॥

सुदरी कंचुकी वाले कनौजिया हैं। करचुली राजपूतों का कठोर विचार है। पान पवैया राजपूत बहुत ही चतुर हैं। नाहर राजा के नाखूनों की कोरें नवीन हैं ॥१८॥

कोसलकटि, जादौ जुग जातु। पदप लवा कैकेय बखानु ॥
तोंवर मन मथ, मन पड़िहार। पद राठौर सरूप पँवार ॥१६॥

कौशल से आये हुए राजपूता की कमर पतली है। यादौवशी साथ साथ रहते हैं। कैकेय देश के राजपूत वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी की भाँति हैं। तौंवर राजपूत मनमथ के समान हैं। अच्छे स्थानों पर राठौर राजपूत और सुन्दर स्वरुप के पवाँर रजपूत हैं ॥१६॥

गूजर वे गति परम सुवेस। हाव भाव भनि भूरि नरेस ॥
कैसी मारू सखि सुखदानि। दामोदर दासी उर जानि ॥२०॥

सुन्दर वेष भूषा धारण किये हुए गूजर राजपूत हैं और सुन्दर हाव-भाव बनाये हुए राजा लोग हैं। मारू सखी सुख देने वाली है और दामोदर उसकी दासी है ॥२०॥

॥ दोहा ॥

राजसिंघ पति पद्मनी दुलहिनि रूप निधान ॥
दूलह मधुकर साहि सुत विरसिंघ देव सुजान ॥२१॥

राजसिंह पद्मिनी दुलहिन रूप और सौन्दर्य की खान है। मधुकर शाह का पुत्र वीरसिंह उसका पति है। यहाँ पर केशव ने वीरसिंह को राजसिंह का पति बताया है, ऐसा क्यों कहा, कुछ पता नहीं है ॥२१॥

॥ चौपाई ॥

तिनकी सिर स्वयभु मय मानि। श्रवननि की वैश्रवन बखानि ॥
भाल भलौ भागनि मय मानि। वृष कन्धर सुर मेन बखानि ॥२२॥

उनका मस्तिष्क बुद्धि युक्त है और उनके कान वैश्रवन हैं। मस्तक में भाग्य है और उनके कन्धे वृष के समान हैं ॥२२॥

भुज जुग भनि भगवती समान। अति उदार उर तुम हिय मानु ॥
कटि नर केहरि के आकार। जानु वरुन मय रूप कुमार ॥२३॥

दोनों भुजायें भगवती के समान हैं और हृदय बहुत ही उदार है।

कमरसिंह की कमर की आकार की है और उनका रूप वरुण के समान है ॥२३॥

पद कर कँवल सुहावन वास । आयुध सक्र समान सहास ॥
जय कङ्कन बांधे निज हाथ । पनरथ परम पराक्रम गाथ ॥२४॥

चरण कमल के समान हैं, जिनमें उद्योग वास करता है और युद्ध के साधन शक्र के समान हजारों हैं। जय का कंकण हाथ में बांधे हुए है ॥२४॥

टोपा सोभत मोर समान । नागे सम सोहै तन-त्रान ॥
पावक प्रगट प्रताप प्रचण्ड । रच्छक नारायन नवखण्ड ॥२५॥

सिर पर लगा हुआ टोप मोर के समान शोभा देता है और तन-त्राण नाग के समान सुशोभित है। उनका प्रताप पावक के समान प्रचण्ड है और उनकी रक्षा करने वाले नवो खण्डों के स्वामी नारायण हैं ॥२५॥

पञ्च सब्द बाजत अवदात । सुभट बराती फौज बरात ॥
दोऊ दल बल विग्रह चढ़े । देखत देव विमानन चढ़े ॥२६॥

पञ्च शब्द की ध्वनि हो रही है। अनेक योद्धाओं से फौज सजी गयी है। दोनों दलों में विग्रह को बढ़ता हुआ देखकर देव विमानों पर चढे ॥२६॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंह नृप दूलहै नृपपति दुलहिनि देखि ॥
घूंघट पाल्यौ भ्रम सहित, समय सकंप बिसेखि ॥२७॥

दूल्हा वीरसिंह ने दुल्हन को देखकर घूंघट को हटा दिया। घूंघट हटाते समय वीरसिंह के मन भ्रम और भय दोनों थे ॥२७॥

॥ चौपही ॥

घूंघट सौं पठ दुलहिनि नई। वीरसिंघ राना गहि लई॥
देखि पति कासीसुर हाथ। कोप कियो कूरम नरनाथ॥२८॥

घूघट में नई दुल्हिन को देखा और वीरसिंह ने राणा को पकड़ लिया। पति को काशीपुर के हाथ में देखा। यह देखकर कूरम के राजा ने क्रोध किया॥२८॥

जहं तहं विक्रम भट प्रगटये। गज घोटक संघटित सुभये॥
तुपक तीर बरछी तिहि बार। चहू ओर तै चले अपार॥२६॥

जहाँ तहाँ योद्धाओं ने अपने विक्रम को प्रकट किया और यत्र-तत्र हाथी घोड़े इकट्ठा होने लगे। तोप तीर बर्छी आदि चारो ओर से छूटने लगे॥२६॥

जग जागरा जङ्गल जुरे। काहू के न कहू मुह मुरे॥
हींसत हय, गाजत गज ठाट। हांकत भर बरम्हा वत भाट॥३०॥

युद्धस्थल मे आकर किसी ने भी अपना मुँह पीछे की ओर नहीं फेरा। घोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी गर्जना कर रहे हैं। ब्रह्मावृत के भाँट विरुदावली का बखान कर रहे हैं॥३०॥

जहं तह गिरि गिरि उठि उठि लरैं। टूटै असि काढ़ैं जम धरैं॥
भूलि न कोऊ जानै भाजि। मारत मरत सामु है गाजि॥३१॥

योद्धा जहा-तहा युद्ध कर-कर गिरते हैं। तलवारें टूट रही हैं, किन्तु योद्धा भूलकर भी नहीं भागता है। एक दूसरे के सामने गर्जना कर मारते और मरते हैं॥३१॥

अपने प्रभु को संकट जानि। उठ्यो दमोदर गहि असि पानि॥
सकल जागरा जुद्ध अमोर। चमू चांपि आई चहुं ओर॥ २॥

अपने स्वामी को सकट मे पड़ा हुआ जानकर दामोदर तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ। सभी जागरा युद्ध में भिड़ गये और सेना ने चारो ओर से घेर लिया॥३२॥

घोरौ कट्यौ धरनि धुकि गयौ। तब संग्राम पयादौ भयौ॥
तापर आयौ राउ प्रताप। संग लिये बहु सूरनि आप॥३३॥

घोड़ा कट कर जमीन पर गिर पड़ा। घोड़ा गिरने से संग्राम पैदल हो गया। इसके बाद प्रताप राउ अनेक शूरों को लिए हुए आ गया॥३३॥

कियौ हथ्यार आपने हाथ। गावत गाथा सुर नर नाथ॥
सक्त सिंघ कछवाहे आनि। गयौ अगावमु तैं पहिचानि॥३४॥

उसने अपने हाथ से इतना भयानक युद्ध किया कि उसकी गाथा देव और मनुष्य सभी गाते हैं। इसी समय शक्तसिंह कछुवाहा को पहचान उसके आगे गया॥३४॥

घोरनि तैं दोऊ गिरि गये। भूतल लोथ क पोथा भये॥
राउ प्रतापहिं देखत आंसु। तिन पहं दौरे केसौ दासु॥३५॥

घोड़ों से दोनों गिरकर लोट-पोट हो गये। प्रताप राउ को देखकर केसौदास उनके पास दौड़ते हुए गये॥३५॥

हन्यौ दमोदर हाथहि हेरि। बरछा हन्यौ बरछी लै फेरि॥३६॥

दामोदर ने बरछे को हाथ से घुमाकर मार दिया॥३६॥

॥ हरिकेस उवाच॥

॥ कवित्त॥

कारी पीरी ढालैं देखियैं बिसालैं अति,
हाथिन की घटा घन सी घरति हैं।
चपला सी चमक घूमनि माझ तरवारि,
सारदी सौं सार फूलझारी सी झरति हैं।

प्रबल प्रताप राउ जङ्ग जुरै केसौदास,
हनै रिपु करै न छिपा पनु भरति है।

पेस हरिबेस तहा सुभट न जाय जहा,
दुहू बाप पूतै दौड़ हौड़सी परति हैं ॥३७॥

बड़ी बड़ी काली पीली ढालें दिखाई पड़ती हैं और हाथियों के झुण्ड के झुण्ड बादलों की घटा सी दिखाई देते हैं। बिजली के समान वीरों की तलवार चमकती है और उनसे फुलझड़िया सी झड़ रही हैं। प्रताप राउ युद्धस्थल मे बिना किसी विलम्ब के शत्रुओं को मार रहा है। जहा पर किसी के भी जाने का साहस नहीं होता है वहा पर पिता पुत्र (हरिबेस) में युद्ध के लिये दौड़ लगी हुई है ॥३७॥

॥ चौपई ॥

देखि पयादौ बल की धाम। मरु संग्राम साहि संग्राम।
दौरयौ उग्रसेन रनजीत। दौरे इन्द्रजीत सुभ गीत ॥३८॥

संग्रामसिंह को पैदल देखकर उग्रसेन और इन्द्रजीत दोनों ही सहयतार्थ दौड़ पड़े ॥३८॥

दल बल सहित उठे दौड़ बीर। मँनौ घना घन घोर गँभीर॥
धुन्ध धूरि धुरवा से गनौ। बाजत दुन्दुभि गर्जत भनौ ॥३९॥

दोनों ही वीर (उग्रसेन और इन्द्रजीत) दल बल के साथ इस प्रकार बढे जैसे बादल गर्जना कर बढ़ रहे हों। सेना के चलने के कारण धुध धुरवा के समान बढ़ी। दुदुभी के बजने पर ऐसा लगा मानौ मेघ गर्जना कर रहे हों ॥३९॥

जहां तहां तरवार कढ़ी। तिनकी दुतिजनु दामिनि बढ़ी॥
तुपक तीर ध्रुव धारापात। भीत भये रिपुदल भट ब्रात ॥४०॥

इधर उधर लोगों ने अपनी तलवार निकाल ली। उन तलवारों की दुति बिजली के समान थी। तोप, तीर और तलवार की धार से शत्रु दल अत्यधिक भयभीत हो गया ॥४०॥

श्रोनित जल पैरत तिहिं खेत । कूरम कुल सब दलहि समेत ॥
परम भयानक भौ यह ठौर । भागि बचे मारू हरधौर ॥४१॥

युद्धस्थल में खून ही खून बहने लगा। सारा का सारा कूरम दल उसमें बह रहा था। इस स्थान पर अत्यधिक भयानक युद्ध हुआ। इस अवसर पर माह हरधौर भागकर बच गये ॥४१॥

जगमनि प्रोहित घोरो दियो। चढ़ि सग्राम साहि हरखियो ॥
जूझि परयो दामोदर जबै। भागि बच्यो कूरम दल तबै ॥४२॥

जगमन प्रोहित ने अपना घोड़ा सग्राम शाहि को दिया। घोड़ा पाकर सग्राम शाहि बहुत प्रसन्न हुआ। जिस समय दामोदर जूझ गया उस समय कूरम दल ने भाग कर अपनी जान बचा ली ॥४२॥

जगमनि दामोदर तिहिं बार। पठये सिरि खोटे सिरदार ॥
राजसिंह भये अति बह बहे। जाइ औंड़छें रावर गहे ॥४३॥

जगमनि ने दामोदर का शिर सरदार के पास भेज दिया। इस अवसर पर राजसिंह अत्यधिक भयभीत हुआ और वह भागकर महल (रावर) में चला गया ॥४३॥

अति रुरी राजति रन थली। जूझि परे तहँ हय गय चली ॥
रुण्डनि मुण्ड लसैं गज कुम्भ। श्रोनित भर भभकन्त भुसुण्ड ॥४४

रण स्थली अत्यधिक रुरी दिखाई पड़ने लगी। वहाँ पर अनेक योद्धा, हाथी और घोड़े जूझ गये। हाथियों के रुण्ड तथा खून ही खून दिखाई पड़ रहा है ॥४४॥

रुधिर छांड़ि अँग अँग रुति स्रवै। गैरिक धातु सैल जनु द्रवै ॥
धाव अन्ध कबन्ध अपार। छिदी सौंह थीं उरनि उदार ॥४५॥

अग से निकलती हुई खून की धार सुन्दर लगती है। ऐसा लगता है मानो पर्वतों से गैरिक धातु निकल रही है। इधर से उधर अन्ध कबन्ध दौड़ रही हैं और लोगों के हृदयों में तलवारें छिदी हुई थीं ॥४५॥

हीन भये भुज बल के भार। जनु हिय हरषि गहे हथियार ॥
उठि बैठे भट तरु की छांहि। लागी सागि तिन्हें मुँह माहिं ॥४६॥

जब भुजाओं की बल भार कम हुआ, तब हृदय में प्रसन्न होकर अस्त्रों को हाथों में ले लिया। योद्धागण वृक्ष की छाया में उठकर बैठ गये। इस अवसर पर उनके मुँहों में साग आकर लगी ॥४६॥

दांतन की किरचन रँग रगे। बहु विधि रुधिर हलूरा लगे ॥
मखि तमोर तिपई मनु हरै। मनहुँ कपूर करूरा करै ॥४७॥

दांत टूट गये और उनसे रुधिर की धारा बह निकली। ऐसा लग रहा था कि कोई तिपरी व्यक्ति पान (तंबोर) खाकर दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है अथवा कपूर को खाकर कुल्ला कर रहा है ॥४७॥

घन घाइनि घाइल घर परैं। जोगिनि जोरि जघ सिर धरैं ॥
अञ्चल मुख पोंछति जग मगी। कण्ठ श्रोन पिय मासा लगी ॥४८॥

अनेक योद्धा घायल होकर घर पर पड़े हुए हैं। उनकी पत्नियाँ अपने पतियों का जंघे पर शिर रखे हुई उनके मुखों को अंचल से पोंछ रही हैं ॥४८॥

सांचहु मृतक मानि भय दली। मानहु सती छोड़ि सत चली ॥
गाधिनि के सुत सोभित घनैं। ललित पल मुख श्रोनित सनैं ॥४९॥

मानो सचमुच मृतक समझ कर भययुक्त हो गई हो और उन्हें छोड़कर सभी पत्निया चल दीं। उनके चलते समय ऐसा लगा कि सती अपने सत्य को छोड़ कर जा रही हैं। गीध पुत्र वहां पर चक्कर काट रहे हैं। सुन्दर मुख खून से सने हुए पड़े हैं ॥४९॥

चन्द्र जानि वासर चहुँ ओर। चुंचनि चुनत अगार चकोर ॥
श्रोनित सोभा रचे शरीर। तह देखिये डरे बर वीर ॥५०॥

योद्धाओं के मुखों को खनते खना हुआ देखकर ऐसा लगा कि चकोर दिन में चन्द्रमा को उगा हुआ जानकर अंगार खा रहा है। खून से सभी के शरीरों को सरावोर देखकर योद्धागण भयभीत हो गये ॥५०॥

खेलि फागु मानौ फगुहार ।
सोइ रहे मद मत्त गँवार ॥
एक बूम्फि भूतल पर परे ।
एक बूड़ि सरिता महँ मरे ॥५०॥

ऐसा लगता है कि होली का फाग खेलकर कुछ मस्त गवार सो गये हों। कोई घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा है और कोई नदी में गिरकर बूड़ गया है ॥५१॥

गय घोटक कर भनि को गने।
छूटे वन वन डोलत घने ॥
ऐसी भयी करम को जोग ।
तज्यो न कारो आलम लोग ॥५१॥

हाथी, घोड़े और ऊँटों की गिनती नहीं की जा सकती है। ये वन-वन मारे-मारे फिरते हैं। कुछ कर्म का ऐसा योग हुआ है कि आलम लोग ने नक्कारा को ही छोड़ दिया है ॥५२॥

जहं जहं हसम खसम बिन भये।
जल थल रसत बसत भगि गये ॥
माही महल मरातब साथ ।
आई पति कामीपुर हाथ ॥५३॥

जहा तहा नौकर (हसम) बिना स्वामी के रह गये। सभी लोग स्थान छोड़कर भाग खड़े हुए हैं। पृथ्वी, महल और पताका कालीपुर के हाथ लगी है ॥५३॥

लीनौ खलक खजानौ लूटि।
कूरम भगे चहूं दिस फूटि॥
देखै तिपुर तमासौ आप।
ऊपर होहि नहीं परताप॥५४॥

खलक और खजाना दोनों को ही लूट लिया। इस अवसर पर सभी कूरम पठानों इधर उधर भाग खड़े हुए। किन्तु तिपुर खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था, उस पर ऊपर से किसी भी प्रकार का परिताप नहीं दिखाई पड़रहा था॥५४॥

॥ कवित्त ॥

ह्वै गयौ बिठान बल मुगल पठाननि कौ,
भभरे भदौरियाउ सभ्रम हिये छयौ॥
सूखे मुख सेखानी के, खरथोई खिसान्यौ
खत्री गाढ़ी गह्यौ गाढ़ पाउ एकौ न इतै दयौ॥
बीर सिंघ लीनी जीति पति राजसिंह की
तुसरर कैसौ मारयौ मारू केसौदास ह्वै गयौ॥
हाथी मय हय मय हसम हथ्यार मय लोह
मय लोथि मय भूतल सबै भयौ॥ ५५॥

विजय के उपरान्त मुगल और पठानों की शक्ति नष्टप्राय हो गयी। भदौरियों को विजय से बड़ा भ्रम हुआ। शेख लोगों के मुँह सूख गये। खत्री अत्यधिक खिसिया गये। वे तो उस ओर एक कदम तक न बढ़ा सके। वीरसिंह ने राजसिंह की पति को जीत लिया और उसका वीरत्व और भी अधिक जाग्रत हो उठा। पृथ्वी पर हाथी, घोड़े, नौकर, लोह, लोथें पड़ी हुई चारों ओर दिखाई पड़ती थीं॥५५॥

॥ चौपाई ॥

बीर सिंह अति हर्षित हिये। राजसिंघ पति दुलहिनि लिये॥
घेरयौ नगर ओड़छौ जाइ। मारु केसौदास रिसाइ॥५६॥

वीरसिंह हृदय में अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजसिंह ने दुलहिन को साथ में लेकर ओरछा नगर को जाकर घेर लिया। इस समय वीरसिंह अत्यधिक क्रुद्ध था ॥५६॥

घुस्यो घूँसि ज्यौं घर के कोन। तजि रजपूती साधी मौन ॥
राजा राजसिंह हिय डरयौ। सोक छाड़ि मन संसय परयौ ॥५७॥

जैसे ही घर मे प्रवेश किया वैसे ही राजपूती गुणों को छोड़ कर मौन धारण कर लिया। इस अवसर पर राजसिंह बहुत अधिक भयभीत हुआ। शोक को भुलाकर मन सभ्रम में पड़ गया ॥५७॥

अमल कमल दल लोचन ऐन। स्यामल जल भरे आये नैन।
पति दुलहिनि करुनारस भरी। बीरसिंह सौं बिनती करी ॥५८॥

स्वच्छ कमल सदृश नेत्रों में पानी भर आया। अत्यधिक करुणारस से ओत प्रोत हो कर दुलहन ने विनती की ॥५८॥

महाराज जौ करौ सनेहु। इनकौं धर्म द्वार अब देहु ॥
इतनौ कहत आइयो रोय। ह्वै गयौ करुनामय सब कोय ॥५६॥

यदि महाराज आप स्नेह करना चाहते हैं, तो इन्हें अब धर्म द्वार दें। इतना कहते ही रोने लगे। इस अवस्था को देखकर सभी के हृदय में करुण भाव जाग उठा ॥५६॥

बीरनि बोलि अभै धौं दये। बीरसिंह तब डेरहि गये ॥
मारु महित सोक रंग रये। राजसिंह तब कुठौलो गये ॥६०॥

वीरों को बुलाकर अभय करके बीरसिंह अपने डेरे में चला गया और राजसिंह कुठौली को चले गये ॥६०॥

॥ सवैया ॥

ओरनि लै अरु ओरम उसीर उरै जब केसर जेन्ह बिमाती।
घोरि घनौ घनसार तुसार सों अंक लगावत पंकज पाती ॥

मोधि सबै सियरे उपचारनि ज्यों ज्यों सिरावत त्यौं अति ताती।
केसव मारू गये पुर नारन सो न जरयो पै जरी उठि छाती ॥६१॥

चाँदनी रात में ओला और ओस की खस की टट्टी लगाते हैं। तुषार में कपूर को मिलाकर शीतल करते हैं। शीतल करने के जितने भी उपचार हैं. सभी को करते हैं, किन्तु ज्यों ज्यों शीतल करने की चेष्टा करते हैं, त्यों-त्यों गरम होता है। मारू पुरनार को चले गये हैं। वह तो नहीं जले, किन्तु हम सब की छाती अवश्य जल उठी ॥६१॥

॥ चौपाई ॥

वा दिन तैं सिगरे उमराउ। चल दल कैसो गह्यो सुभाउ।
आवन जान न पावै कोय। सब दल रह्यो महा भय होय ॥६२॥

उस दिन सभी सरदार वृक्ष के पत्तों की भांति चचल हो गये। इधर से उधर कोई आनेपाता है और न जाने ही पाता है। सम्पूर्ण दल में भय व्याप्त हो गया है।

इति श्रीमूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री बीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभ बिन्ध्यवासिनी सम्वादे वर्णन नाम अष्टम प्रकाश ॥८॥

लोभ उवाच

राजसिंह मारू की हार। कहा करयौ सुनि साहि विचार
सो तुम कहो जगत बदिनी। जिनके जस की चिर चदिनी ॥१॥

राजसिंह मारू की हार सुनकर शाह ने क्या विचार किया, उसे जग वदनी कहो। हे जगवदनी ! जिसके कारण सदैव चादनी रहती है ॥ १ ॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

राजसिह के युद्ध विधान । सुनि सुनि सीस धुन्यौ सुलतान ॥
उमराउनि कौं प्रगट प्रमान । यह लिखि पठै दियो फरमान ॥२॥

राजसिंह के युद्ध का विधान सुनकर सुलतान अपना शिर धुनने लगा। सभी उमरावों को स्पष्ट रूप से यह फरमान लिखकर भेज दिया ॥२॥

कै तुम गहियो हज की राहु । कै उनकी वसहिनि पै जाहु ॥
उन नृप पति लीनी करि नेहु । तुमहू उनकी पतिनी लेहु ॥३॥

या तो तुम हज का रास्ता ले लो या तुम भी उनकी बस्तीही पर जाओ। उन्होंने स्नेह करके नृप पति को ले लिया और अब तुम भी उनकी पत्नी ले लो ॥३॥

जह जह जाइ तहा तुम जाउ । मेरो मेरे उर को दाहु ॥
यह सुनि वीरसिंह सुख पाय । वसहिनि माँझ चले अकुलाय ॥४॥

जहा कहीं भी वह जाय, वहीं तुम भी सब जाओ। मेरे हृदय के दाह को मिटा दो। यह सुनकर वीरसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह आतुर होकर बस्तीही क चल दिया ॥४॥

को मन मीच अधर मधु छकै । को मेरा दासी लै सकै ॥
वरजि रहे बहु राजा राम । ऐसो करि छोड़ौ घर धाम ॥५॥

कौन सा वह मृत प्राय मन है, जो कि मेरा दासी के अधरों का पान करना चाहता है। मेरी दासी को लेने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। राजाराम ने अनेक प्रकार से रोका और कहा कि ऐसा करके घर को छोड़ दो ॥५॥

॥ सवैया ॥

कालिंदि बैठि गुपाचल से गढ़ सोधि सुरेसन कै गुन गाहीं।
दान कृपान निधानन केशव दुष्ट दरिद्रिन के उर दाहीं ॥

खान जिहान के खान करी सब खान जमान वृथा अब गाही ॥
मेरे गुलामनि हैं है सलाम सलामति साहि सलेमहि चाही ॥६॥

कल ही ग्वालियर गढ़ में बैठकर सभी योद्धाओं की खोज खबर लूँगा। दान द्वारा दरिद्रों का कृपाण द्वारा दुष्टों के हृदय के दाह को समाप्त कर दूँगा। अब सम्पूर्ण संसार मो खान करके मानूँगा। मेरे गुलामों तक को सभी सलाम करेंगे और शाह को सलाम करने की सभी की इच्छा प्रबल बनी रहेगी ॥७।

॥ चौपाई ॥

बीर सिंह राजा बर धीर । बरही जाय लई धरि धीर ॥
तेही समय छाड़ि भुव लोक । अकबर साहि गये परलोक ॥ ७ ॥

राजा बीरसिंह ने बसही में जाकर श्वास ली। इसी समय संसार छोड़कर अकबर स्वर्गवासी हो गया ॥७॥

काशीपुर जहँ तहँ गल गजे। जहाँ तहाँ ते थाने भजे ॥
पात साहि भो साहि सलेम। मानो छिति मण्डल को छेम ॥ ८ ॥

काशीपुर में यत्र तत्र गर्जना होने लगी। लोग इधर उधर थाने की ओर भागने लगे। सलीम शाह बादशाह हुआ ॥८॥

॥ कवित्त ॥

दाम बल, दल बल, बांहु बल बुद्धि बल,
बस हू को बल जु निधानों जान्यो जबही ॥
बाधि कटि तट फेंट पीत पट को निकट,
पाँइनि पयादों उठि धायो प्रभु तबही ॥
निपट अनाथ नाथ दीन बन्धु दया सिंधु,
केसौदाम सांचे जाने अबही ॥
हाथी की पुकार लोग कानिनि सुन्यो हैं,
हरि ओड़छे की लागत पुकार देखे सबही ॥ ६ ॥

दान बल, सैनिक शक्ति, बाहु शक्ति, बुद्धि बल, वश बल का वह निधान है, ऐसा सभी ने समझा। प्यादा कमर में पीले वस्त्र की फेंट बाँधकर पैदल ही अपने स्वामी के पास दौड़कर गया। हे नाथ! मैं निरा अनाथ हूँ। आप दीन बन्धु, दया के सागर हैं, इसे मैंने अभी जाना है। हाथी की पुकार कानों से सुनने लगे। यह पुकार ओड़छे की ओर से आ रही थी, सभी ने सुना है ॥६॥

॥ दोहा ॥

दान लोभ सब आदि दै कही जु बूझी मोहि ॥
जाहु जहा जाके गुननि रही सकल मति तोहि ॥१०॥

देवी ने कहा कि हे दान और लोभ! जो कुछ भी तुमने पूछा उस को मैंने कह दिया। अब तुम दोनों उसी के पास जाओ, जिसके गुणों का सुनने की तुम्हारी इच्छा है ॥१०॥

॥ दान उवाच ॥

जग माता औरो कहौ जौ परि पूरन प्रेम।
वीरसिंह कहँ का दयौसाहिब साहि सलेम ॥११॥

देवी के वचनों को सुनकर दान ने कहा कि हे जगमाता! यदि आप पूर्ण प्रेम है तो और भी कहो। सलीम शाह ने वीरसिंह को क्या दिया ॥११॥

॥ श्री देव्यु वाच ॥

चौपाई

दान लोभ तुम परम सुजान। जानत है सब के परमान ॥
अकबर साहि गये परलोक। जहाँगीर प्रभु प्रगटे लोक ॥१२॥

देवी ने कहा कि हे दान और लोभ! तुम दोनों ही बहुत चतुर हो और तुम सभी को अच्छी प्रकार से जानते हो। जब अकबर स्वर्गगामी हुआ तब जहाँगीर राजा हुआ ॥१२॥

गाजी तखत बैठियो गाजि। सोक गये लोभनि के भाजि॥
पारस मो सबको गिरि गयो। चिंतामनि सो कर पर गयो॥१३॥

जहांगीर गर्जना करके सिंहासन पर बैठा। उसके बैठते ही लोगों के सारे दुख भाग गये। ऐसा लगा कि चिंतामणि पर हाथ पड़ने से सभी का पारस गिर गया हो॥१३॥

अर्द्ध बर सो भयो अरिष्ट। सुर तरु सो देख्यो हग इष्ट॥
अर्थ गया ससि सो, सतु दान। सूरज सो भयो उदित जहान॥१४॥

अर्द्धस्वर के समान वह अरिष्ट हुआ, किन्तु लोगों ने उसे कल्पवृक्ष के समान देखा। हे दान! वह चन्द्रमा की भांति अस्त हो गया और सूर्य की भांति इस ससार में उदित हुआ॥१४॥

रज, तम सत्य गुननि के ईस। तिन करि मडल मडित दीस॥
बैठे एक छत्र तर लसै। छाह सबै चिति मण्डल बसै॥१५॥

सत, तम, रज गुणों से युक्त ऐसे राजा के अन्तर्गत सभी मडल रह रहे थे। एक छत्र के नीचे वह बैठा शोभा पा रहा था और उसकी छत्र-छाया में पृथ्वी के सभी मण्डल पल रहे थे॥१५॥

एसो राज रमा महँ करै। भुमिया के नोक भुव धरै॥
गढ़नि गढ़ोई के बलदेव। सेवत वह जोरे नर देव॥१६॥

पृथ्वी पर इस प्रकार से राज्य कर रहा था। जहांगीर पृथ्वी के छोर (किनारे) तक राज्य करता था। गढ़ों के स्वामी उसकी हाथ जोड़े सदैव सेवा किया करते थे॥१६॥

राजसिंह सोहत चहुँ पास। दिन देखत गजराज प्रकास॥
बैठे तखत सकल सुख लिये। सुधि आई हजरत के हिये॥१७॥

राजसिंह उसके पास रहकर सेवा किया करता था। आनन्दपूर्वक सिंहासन पर बैठा हुआ राज्य कर रहा था। एक दिन जहांगीर को याद आई॥१७॥

राजा वीरसिंह दै आउ। दियौ तुरङ्गम स्यौं मिष पाउ ॥
पठयौ लेखि अनिश जानु। अपनै हाथ लिख्यौ फरमानु ॥१८॥

एक आदमी को घोड़ा देकर वीरसिंह के पास अपनेने फरमान लिखकर भेजा ॥१८॥

डाग चौकिया, पहुँचे सेख। वीरसिंह देख्यौ सुभ वेख ॥
जो पायौ प्रभु को फरमान। महा मृतक पावै जो प्रान ॥१६॥

शेख उधन जगल को पार कर वीरसिंह के पास पहुँचा। शेख ने वीरसिंह को सुदर वेष में पाया। जहाँगीर के फरमान को पाकर वीरसिंह इतना प्रसन्न हुआ कि माना मृतक ने प्राण पा लिए हों ॥१६॥

लै सग भारथ वीर सुठाउँ। तब प्रभु आए एरछ गाउँ ॥
हिलि मिलि रामसाहिं नर नाथ। है गयौ इन्द्रजीत लै साथ ॥२०॥

भारथसिंह को वीरसिंह लेकर ओड़छा ग्राम में आये। फिर रामसिंह का साथ लिया और इन्द्रजीत को लेकर चल दिए ॥२०॥

खेलत हसत बहुत दिन भरे। आये निकट नगर आगरे ॥
ऐसौ मग देख्यौ बाजार। मनौ गनागन बनित विचार ॥२१॥

हँसते खेलते सभी बहुत दिनों में आगरे पहुँचे। उन्हें नगर ऐसा सुन्दर और व्यवस्थित ढग से बसा हुआ लगा मानों किसी कवि ने गणों का अच्छी प्रकार से विचार करके कविता की रचना की हो ॥२१॥

देख्यौ जोई सोइ अपार। मनहुँ धनपति को व्यवहार ॥
जाहि देखि भूल्यौ ससार। देख्यो अति अद्भुत बाजार ॥२२॥

जिस चीज को देखा वही वहा पर अपार मात्रा में थी। ऐसा लगा कि आगरे में सारा लेन देन कुबेर का चल रहा हो। जिस अद्भुत बाजार को देखकर सारा ससार अपने को भूल जाता है, उसी बाजार को उसने देखा ॥२२॥

॥ कवित्त ॥

परम विरोधी अविरोधी ह्वै रहत सव,
दीनन के दीन हीननि सों छेम है।
अधिक अनत आप सोहत अनत अति,
असरन सरननि रखिवे कौ नेम है॥
हुत भुक हित मति श्री पति बसत हिय,
जदपि जलेम गंगा जलही सो नेम है॥
केसौदास राजा वीरसिंह देव देखि कहें,
रुद्र हैं समुद्र हैं कि साहिब सलेम हैं॥२३॥

केशवदास वीरसिंह की प्रशंसा में कहते हैं कि वीरसिंह के जो विरोधी हैं, वे भी उन्हें देखकर विरोध करना छोड़ देते हैं। दीनों को दान देने का उन्होंने सकल्प ले रखा है। अशरण लोगों को शरण देने का नियम बना रखा है। हृदय में विष्णु जी का निवास है, फिर भी गगा जल से अत्यधिक स्नेह है। इस प्रकार के वीरसिंह को रुद्र कहा जाए या समुद्र की संज्ञा दी जाए या सलीम शाह कहा जाए, इसमें से क्या कहना ठीक होगा, इस असमंजस में केशवदास पड़ गये हैं॥२३॥

॥ चौपाई ॥

जहांगीर जगती कौ इन्द्र। देख्यो वीरसिंह देव नरिन्द्र॥
कर जोरे सेवत दिगपाल। विद्याधर, गंधर्व रसाल॥२४॥

ससार के इन्द्र, जहागीर ने मनुष्यों में इन्द्र के समान वीरसिंह को देखा। जहागीर की सेवा हाथ जोड़े हुए दिक्पाल, विद्याधर, एवं गधर्व कर रहे हैं॥२४॥

सोभत है गजराज चरित्र। ढारत चॅवर कलानिधि, मित्र॥
सकल मजु घोषा सुन्दरी। गावति सुखद सुकेसी खरी॥२५॥

जहागीर के ऊपर सूर्य और चन्द्र तो चवर ढल रहे हैं। अनेक सुन्दरियाँ—घोषा, सुकेशी आदि—गान कर रही हैं॥२५॥

पूरब दिव दुति दीपित करै। मनि गति मण्डित यत्रहि धरै।।
साहि देखि राख्यौ उरलाय। ज्यौं हरि सुखन सुदमहि पाय।।२६।।

पूर्व दिशा को मणि दीप्त कर रही थी। ऐसा लगा रहा था कि मणि चत्र को धारण किए हुए हैं। इसी अवसर पर वीरसिंह दरबार में घुसा। उसे देखते ही सलीमशाह ने उसे उसी प्रकार से हृदय से लगा लिया जिस प्रकार से सुदामा को कृष्ण ने लगा लिया था।।२६।।

देखत दुख दूरि सब गयौ। पाइनि परि जब ठाढ़ौ भयौ।।
पूछें साहि सबनि सुख पाय। नीके हैं राजन के राय।।२७।।

देखते ही सारे दुख भाग गये। वीरसिंह पैरों पर गिरकर खड़ा हो गया। सलीमशाह ने वीरसिंह से पूछा कि आप कुशल पूर्वक तो रहे।।२७।।

अब नीकै देखे जब पाय। उज्जल अमल कमल से राय।।
हय गय हीरा बसन हथ्यार। हजरत पहिरायौ बहुवार।।२८।।

वीरसिंह ने उत्तर दिया-आप को सानन्द देखने के बाद मैं भी आनन्द में ही हूँ।" सलीमशाह ने वीरसिंह को बहुत से हाथी, घोड़े हीरा, वस्त्र, हथियार आदि दिए।।२८।।

भारत साहि बहुरि इन्द्रजीत। मिलतन भयो साहि के मीत।।
जब जब गयौ बीर दरबार। तब तब शोभा बढ़े अपार।।२६।।

भारत शाहि और इन्द्रजीत भी सलीमशाह से मिलते ही मित्र हो गये। जब जब वीरसिंह दरबार में जाता था तब तब दरबार की शोभा बढ़ जाती थी।।२६।।

खान राउ राजा मनहार। ऊपर बीर लिये हथियार।।
कटरा कटि दायें तरवारि। साहि समीप रहे सुख कारि।।३०।।

अनेक खान, राजा और उनके वीरसिंह अपनी कमर में कटारी तलवार रखे हुए शाह के समीप रहते हैं जो कि सब प्रकार से सलीमशाह को सुख पहुँचाने वाले हैं।।३०।।

कबहू हय गय हेम हथ्यार। कबहू खग मृग बसन अपार॥
कबहूँ बाजे भूखन छेम। दै बहुरावत साहि सलेम ॥३१॥

सलीमशाह भूखे लोगों को दान में कभी तो हाथी घोड़ा हथ्यार आदि देता है और कभी खग मृग बसन आदि दान में देता था ॥३१॥

कौन गनै राजा अरु राउ। खोजा देखे सब उमराउ॥
काहू को न जाय मन जहाँ। वीरसिंह को आसन वहाँ ॥३२॥

राजा और रावों की गिनती नहीं की जा सकती है। सभी उमराव वीरसिंह के स्थान को ढूढ़ा करते हैं, किन्तु वीरसिंह के आसन तक किसी का मन नहीं पहुँच पाता है ॥३२॥

एक समय हजरति हँसि कह्यौ। वीरसिंह तू दुख सो रह्यौ॥
और बड़ी बड़ी परिगन लेखि। मेरो राज आपनों लेखि॥३३॥

एक बार सलीम शाह ने हँसकर कहा "तुम वीरसिंह बड़े ही दुख में रहे।" वीरसिंह ने इस पर उत्तर दिया "आप मेरे सभी परगनों को अपना ही समझो। मेरा राज्य तुम्हारा ही है।" ॥३३॥

जाहि भुवन त्रिभुवन सुख देखि। सबै तुम्हारा सौं कछु पेखि॥
सकल बुंदेलखण्ड हैं जितो। तुमको मैं दीनो हैं तितो ॥३४॥

जो कुछ तुम्हारे पास है उसे देख कर तीनों लोक सुखी होते हैं। मैं आज तुम्हें सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड का राज्य दे रहा हूँ ॥३४॥

औरौ बड़े बड़े परिगने। तो कहु मैं दीने बहु घने॥
हौं जु भयो सहनि सिरताज। तुहू होइ राइनि को राज ॥३५॥

और भी जो बड़े-बड़े परगने हैं वह भी मैं तुम्हें दे रहा हूँ। मैं यदि सभी शाहों का सिरताज हुआ हूँ तो तुम भी सभी रावों के सिरताज हो ॥३५॥

तोहि न मानै मारौं ताहि। विदा होय अपने घर जाहि॥
वीरसिंह कीनो तसलीम। गाजी जहांगीर के भीम ॥३६॥

यदि तुमे कोई स्वीकार नहीं करेगा अर्थ तुझे सम्मान नहीं प्रदान करेगा तो मैं उसे मार डालूंगा। वीरसिंह ने दस्तनीम की ॥३६॥

तिन बोलि इन्द्रजित लये। करन बिचार सुडेरहिं गये ॥
कियौ बिचार बहुत विधि जाय। एकहु भांति न जिय ठहराय॥३७॥

वीरसिंह इन्द्रजीत को बुलाकर डेरे में विचार विनिमय करने गये। अनेक प्रकार से विचार किया, किन्तु मन किसी भी प्रकार से सुस्थिर नहीं हो सका ॥३७॥

कोऊ छाड़ै कोऊ धरै। कछु बिचार नहिं जिय मैं परै ॥
जाइ गहीं आगे आपनै। हमैं जतहरा लेत न बनै ॥३८॥

दोनों—वीरसिंह, इन्द्रजीत—मिलकर यह निश्चित नहीं कर सके कि कौन सा भाग कौन लेगा। कुछ भी निश्चित विचार दोनों मन में धारण नहीं कर पा रहे हैं। अन्त में वीरसिंह ने कहा कि जतहरा मैं नहीं लूंगा ॥३८॥

कह्यो सरीफ खान समुझाय। वीरसिंह सो अति सुख पाय ॥
अपनी भइ मैं तू प्रभु होहि। मुगल गये दुख ह्वै है तोहि ॥३९॥

सरीफखा ने अत्यधिक सुखी और प्रसन्न होकर वीरसिंह को समझाया कि तुम अपनी भूमि में स्वामी हो जाओ। सभी मुगलों के जाने से तुम्हें दुख होगा ॥३९॥

कीनी विदा वेग यहिराय। दिये परिगने बहु सुख पाय ॥

॥ दोहा ॥

राजा निरसिंह देव की, विदा करी सुलतान ॥
एरछ गढ़ आये सुने, केशव निधान ॥४०॥

अनेक आभूषणों को पहनाकर बहुत से परगने देकर वीरसिंह ने विदा किया। ओड़छा गढ़ में जाकर वीरसिंह रहने लगा।

॥ चौपही ॥

आये घर तब भारत साहि । कही राज सों बात निबाहि ॥४१॥

भारत शाहि ने घर आकर वीरसिंह से जा कर कहा ॥४१॥

पटहारी आये नृप राम । सबही जान्यो विग्रह काम ॥
यह सुनि प्रताप राउ बुलये । वीरसिंह पुर एरछ गये ॥४२॥

पटहारी व राजा राम आये । उन्हें आया देखकर सभी ने समझ लिया कि निश्चित रूप से विग्रह होने वाला है । प्रताप राव को दान करने के लिये बुलाया गया । वीरसिंह ओड़छा को चले गये थे ॥४२॥

यह सुनि राम साहि गुन ग्राम । बैठे मतै आपने धाम ॥
निजै नरायन देवा राय । लीनै गिरधर दास बुलाय ॥४३॥

यह सुनकर रामशाह ने निजय नारायण, देवराय और गिरधर दास को विचार विमर्श के निमित्त अपने घर पर बुला लिया ॥४३॥

मंगद पैंमु बहादुर अली । बूझी बात इन्है प्रभु भली ॥
कही मतौ तुम बुद्धि विसाल । करनै मोहि कहा यहि काल ॥४४॥

रामशाह ने मगद, पैंमु, बहादुर अली से पूछा कि तुम सभी बताओ कि मुझे क्या करना है ॥४४॥

ऐसी बात बुंदेलनि कही । एक सूझ हम कीनै सही ॥
जूझ गयौ हमरौ परिवार । तब तुम कीजहु और विचार ॥४५॥

बुंदेलों ने ऐसी बात कही थी उसे हम सभी ने पूरा किया । हमारा सम्पूर्ण परिवार उस बात को पूरा करने में जूझ गया । इस बात को ध्यान में रखकर फिर और विचार कीजिये ॥४५॥

कह्यो पायकनि मन्त्र सु येहु । उनहीं की बातैं सुनि लेहु ॥
सन करि लीवौ तैसो मतौ । अब ही तें उन सो जनि दतौ ॥४६॥

सभी ने यही कहा कि तुम उनकी भी सारी बातों को सुन लो। उनकी (राम) बात को सुनकर उसी के अनुरूप हम सब विचार कर लेंगे अभी से उनसे क्यों झगड़ा किया जाए ॥४६॥

दुहुं पारिन कहि लीनो जबै। मिश्र उदीन बोलियौ तबै॥
हौं जु कहौं सब सुनियौ आप। मिले सुने हम राउ प्रताप॥४७॥

दोनों दलों की बातों को अच्छी प्रकार से सुन कर मिश्र बोले। हम प्रताप राव से मिले भी थे और दूसरों से भी सुना था। इसलिए जो कुछ भी मैं कहूँ, उसे आप सब सुने ॥४७॥

उनको बेटा केसौदास। जिनहीं देस दियो उदवास॥
इन्द्रजीत घर नाहीं राज। उग्रसेन बीधे यहि काज॥४८॥

उन्हीं मिश्र का पुत्र केशौदास हैं, जिसे बहुत कष्ट दिया। गया है इन्द्रजीत इस समय घर पर नहीं हैं और उग्रसेन इस समय इसी काम में उलझे हुए हैं ॥४८॥

बेटो ऐसौ भयो न होय। मानौ जानि हमारो लोय।
भैया बन्धु मिलत ही जात। परिजहु लोग सबै अकुलात॥४६॥

अभी तक ऐसा पुत्र न किसी के हुआ है और न होगा। यह बात हमारी मान लीजिये। सभी बन्धु आपस में मिलते जा रहे हैं, इसके कारण से परिजनों में व्याकुलता फैल रही है ॥४६॥

नाहीं फौज मांझ सरदार। कीजो कैसो बुद्धि विचार॥
एरछ ही जैए सब छोड़ि। हौं जु कहत हौं आंली ओड़ि॥५०॥

फौज में कोई अच्छा सरदार भी नहीं है। इस अवस्था में कैसे विचार किया जा सकता है। सब कुछ छोड़कर ओड़छा चले जाइये। मैं इस बात को आपके सामने आंचल पसार कर कह रहा हूँ ॥५०॥

वहाँ गये मिटि जैहै धर्म। इहि विधि रहत सबनि को धर्म ॥
मीठो खाए विनसै व्याधि। कौन मरै औषध कटु साधि ? ॥५१॥

वहा जाने से धर्म का विनाश हो जायेगा। यहाँ रहने से सब प्रकार से धर्म की रक्षा होगी। मीठा खाने से यदि व्याधि का विनाश हो जाय तो कोई कड़ुई औषधि क्यों खाये ॥५१॥

॥ दोहा ॥

मुगलनि आए जो कहु, अपने चित्त विचार ॥
तौ अवही सब समझिए, बूझो प्रभु परिवार ॥५२॥

मुगलो के आने पर यदि आप विचार करने की सोच रहे हो, तो उस सब को अभी परिवार के लोगों के साथ विचार करके समझ लेना चाहिये ॥५२॥

॥ चौपही ॥

यह सबनि ठहराई बात। कियौ पयानौ होतहि प्रात ॥
रामदेव एरछगढ़ गए। बीरसिंह आनन्दित भए ॥५३॥

सभी ने इस बात को निश्चित करके प्रात.काल प्रस्थान किया। राम सिंह ओड्छा गये, यह जानकर बीरसिंह बहुत प्रसन्न हुये ॥५३॥

बहुत भांति तिन आदर कियो। फाट्यो देखि रायै कै हियो।
कीनी सब जन कैसी काम। मनहुँ भरत के आये राम ॥५४॥

वीरसिंह ने रामदेव का आदर किया। उनकी अस्त व्यस्तता को देखकर वीरसिंह बहुत दुखी हुए। एक जन को जिस प्रकार से सभी प्रकार का आदर सत्कार करना चाहिये, उसी प्रकार का सारा वीरसिंह ने किया। उस व्यवहार को देखकर ऐसा लगा कि माना भारत के राम ही आ गए हों ॥५४॥

भोजन करि कीनो विश्राम। भयो दिवस को चौथो जाम ॥
जितने साहि परिगने दिये। तिनके पटे आपु कर लिए ॥५५॥

भोजन करके दोनो ने विश्राम किया। विश्राम करते-करते दिन का

चौथा चान (काल) हो गया। रामसिंह ने कहा "सलीमशाह ने जितने भी परगने दिए, उन सभी को आपने अपने कब्जे में कर लिया ॥५५॥

वीरसिंह अति आदर भरे। रामदेव के आगे धरे ॥
रामदेव त्रिष्ठारौ करयौ। बातनि बतानि अन्तर परयौ ॥५६॥

वीरसिंह ने अत्यधिक आदर से सभी परगनों को रामदेव के सामने रख दिया। रामदेव ने बटवारा किया, किन्तु धीरे धीरे दोनों की बातों में अन्तर आ गया अर्थात् अनबन हो गई ॥५६॥

॥ दोहा ॥

निपट अटपटी काल गति, करन गये हे प्रीति।
भूलि सयान सबै गए, है गइ उलटी रीति ॥५७॥

काल की विचित्र रीति है। रामदेव करने तो मित्रता गये थे, किन्तु हो अनबन गयी। सभी चतुरता नष्ट हो गयी ॥५७॥

॥ चौपाई ॥

बहुत बिनौ विरसिंह देव कियो। राजा तिनमें चित्त न दियो ॥
किर्यो मतौ कूरो मुन अपार। भूलि गयौ सब चित्त विचार ॥५८॥

वीरसिंह ने रामदेव की बहुत विनती की, किन्तु राजा ने (रामदेव) उसकी थोड़ी भी चिन्ता नहीं की। मन के सभी सात्विक विचारों को भुलाकर बुरा विचार करने लगे ॥५८॥

॥ दोहा ॥

जन परिगहु उमराउ सब, बेटा भैया बन्ध।
वीरसिंह सो मिलि गये, विविध भांति प्रतिबंध ॥५९॥

सभी परिजन, उमराव, पुत्र, बन्धु अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों में बंध कर वीरसिंह से आकर मिले ॥५९॥

नृप परिहारी आये जबै। धीर चले एरछ तैं तबै।
आये वीरसिंह पिपरहा। मिल्यौ खान अब्दुल्ला तहां ॥६०॥

परिहारी के राजा जब आये तब वीरसिंह ओड़छा को चले गये। वीरसिंह ने पिरहा में आकर अबदुल्लाखाँ से मिले। ६०॥

छाड़ि लचूरा छाड़ि गुमान। मिल्यौ तुरत ही दरिया खान॥
छूटि गयौ पुनि गढ़ कुंडार। छूट्यौ जन्त्र घटा गढ सार॥६१॥

दरिया खाँ सब प्रकार के अभिमान को छोड़ कर वीरसिंह से मिले। गढ़ कुंडार आदि सब छूट गये॥६१॥

छांडी पटहारी नृप राम। मैने आनि वनिगवाँ माम॥६२॥

परिहारी का राजा अपने परिहारी स्थान को छोड़ कर बनिगवा में रहा॥६२॥

॥ दोहा ॥

प्रात भये तारानि ज्यौं रवि की होत प्रवेस॥
हरै हरैं छूटत चल्यौ केसव दीरघ देस॥६३

जिस प्रकार से प्रात.काल सूर्योदय होते ही तारात्रों का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे अपने वह भी अपने देश को छोड़ कर चला॥६३॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डला खण्डलेश्वर महाराजधिराज राजा श्रीवीरसिंह देव चरित्रे दानलोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे जन पद सग्रह वर्णनो नाम नवमः प्रकाश॥९॥

॥ दानउ वाच ॥

चौपाई

राजा राम साहि के लोग। पुरिखा गति तैं सुरत सजोग।
पायक, प्रोहित परिगहु, दास। फौजदार, सिक्न्दर खवास॥ १॥
सुत, सोदर, परिवार अपार। वृती मुरजु जानै संसार॥
राजा वीरसिंह कौं अरै। कैसे मिलन बूझिये सरै॥ २॥

राजा रामशाहि अपने पूर्वजों के कारण सुख को प्राप्त करते रहते हैं। पायक, पुरोहित, दास, फौजदार, सिकदार, पुत्र, भाई परिवार के अन्य लोग तथा वृती (वृत्तिधारी) लोग मिलकर विचार कर रहे हैं कि वीरसिंह से किस प्रकार भेंट की जाय ॥१,२॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

राम राज बैठे तहि खरे। उदासीन सिगरेई करे ॥
मुनि अभिषेक समै नरनाथ। एकौ रानी लेइ न साथ॥ ३ ॥

रामशाहि इस अवसर पर चुपचाप बैठा हुआ था। उनके इस मौन ने सभी को उदासीन बना रखा था। नरनाथ के अभिषेक का अवसर सुनकर कोई भी रानी साथ नहीं दे रही है ॥३॥

सुतनि समेत सबै त्रिय त्रसीं। अपनें अपनें गांवनि बसीं ॥
रिपु दल खण्डन दुरगादास। दान कृपान विधान निवास॥ ४ ॥

सभी रानियों को पुत्रों सहित कष्ट प्राप्त हुआ। इसलिए सभी रानियाँ अपने-अपने गावों में जाकर बस गयीं। रिपुदल का विनाश करने वाली दुर्गादास की तलवार है और साथ ही उसमें (तलवार) अभय वरदान देने की भी क्षमता है ॥४॥

जासौं प्रेम हिये जब ह्यौ। उदासीन सिगरो कुल भयौ ॥
रन भैरव भनि खान जहान। जाके जस कौं जपै जहान ॥ ५ ॥

जिसके लिए हृदय में सभी के प्रेम था, उसी की ओर से सब परिवार निराश हो गया। जिसके विकट रण करने के कौशल का सारा संसार यश गान करता है ॥५॥

ताको रिरति गिरिधि विधि दयौ। सो लै अपनें पुत्रनि दयौ ॥
सैद समुद्र गहिर अति घोर। जूभयो अमनदास अमोर॥ ६ ॥

उसको बहुत सी जागीर प्रदान की गयी। उसने उस जागीर को अपने पुत्रों में बाट दिया। समुद्र की भांति गभीर सैद को भी प्राप्त मिला ॥६॥

ताके सिर साटे कौ गांउ। अपनै सुत कौ दयौ सुभाउ॥
मुगल-बुलाय बानपुर लियौ। राउ प्रताप परावो कियौ॥ ७॥

सैद को साँटे का ग्राम मिला। उसने उस ग्राम को अपने पुत्र को दे दिया। सभी मुगलो को बानपुर में बुला लिया और वहा पर प्रताप राव ने बटवारा कर दिया ॥७॥

तजि पँवार भगवान सुधीर। कीनी साहिब माँट वजीर॥
सुंदर जिहि लोभहिं दुख दिये। ऐसे पुरिख दूरि तिन किये॥ ८॥

पवाँर को छोड़कर सभी जागीर को बाँट दिया। ऐसी सभी सुन्दर वस्तुओं का बटवारा कर दिया, जिनके कारण लोभ उत्पन्न होकर दुख होता था ॥८॥

रैयत राउत भये उदास। जाचक जीव न आवैं पास॥
दोऊ अपने अपने धाम। देखत तरुनिन के गुन ग्राम॥ ९॥

इसके कारण से प्रजा और राजे दोनों ही उदास हो गये। याचना करने वाले पास तक नहीं आते हैं। दोनो ही अपने अपने घरों पर युवतियों के गुणों को देखा करते है ॥९॥

राजा श्री घर घर पग धरै। दुवा विकल रच्छा को करै॥
तारा चन्द पैम के पूत। अरु प्रोहित मन्त्री रजपूत॥१०॥
इहि विधि उदासीन सब भये। बीरसिंह राजहि मिलि गये॥
लै पटहारी बीर सुभाउ। मेले आनि बरेठी गाउ॥११॥

यद्यपि राजश्री सभी के घर पर है, किन्तु उसकी रक्षा कौन करे। पैम का पुत्र ताराचंद, पुरोहित, मत्री, राजपूत आदि सभी उदासीन हो कर राजा बीरसिंह से मिल गये। बीरसिंह ने उन सभी को बरेठी ग्राम में रखा ॥१०,११॥

॥ दोहा ॥

वीर बरेठी, बनिगवाँ राजाराम सुजान।
आध कोस कौ अन्त है दुहू भूप उर आन॥१२॥

दोनो ही राजाओं ने अपने मन में विचार किया कि बरेटी ग्राम का अन्तर केवल एक मील का है ॥१२॥

॥ चौपाई ॥

आवत जात गुपाल खवास। दुहूँ ओर कौ करि उपहास ॥
यही बीच खुसरो सुलतान। भाग्यौ दुचितो भयौ, जहान ॥१३॥

आते जाते सभी गुपाल और खिदमतगार दोनों ओर का उपहास करते हैं। इसी अवसर पर खुसरू मुलतान भाग गया, जिससे सहार बड़े आश्चर्य में पड़ गया ॥१३॥

पीछें लग्यौ साहि सिरताज। ज्यौं सुवास पीछे अलि राज ॥
वीरसिंह के सुत सग गये। इन्द्रजीत घर आवत भये ॥१४॥

खुसरू भाग कर बादशाह के पीछे उसी प्रकार पड़ गया, जिस प्रकार से सुगन्ध के पीछे भ्रमर पड़ जाता है। वीरसिंह के पुत्र उसके साथ गये और इन्द्रजीतसिंह भी आने की तैयारी करने लगा ॥१४॥

आनि राम के पायन परे। मानौ लछिमन आनद भरे ॥
रामदेव भेटे सुख पाय। जैसो प्यासो पानिहि पाय ॥१५॥

इन्द्रजीत सिंह रामसिंह के पैरों पर गिरकर उसी प्रकार आनन्दित हुआ, जिस प्रकार से लक्ष्मण राम के चरणों का स्पर्श करने से आनन्दित होते थे ॥१५॥

॥ राम उवाच ॥

आनन्दे जन पद चहुँ ओर। मेघ गजे ज्यौं चातक मोर ॥
तुमही मेरे सुत के ठौर। भैया बन्धुन के सिर मौर ॥१६॥

आनन्द अवस्था देखकर दोनों ओर के जन उसी प्रकार प्रसन्न हुए, जिस प्रकार से मेघ गर्जन से मोर होते हैं। रामसिंह ने कहा कि तुम्हीं मेरे पुत्र के स्थान पर हो और सभी भाइयों के शिर मौर हो ॥१६॥

तुमही बल बुधि वचन विचारु। तुमहि बाहु लोचन उर चारु॥
तुमही सेनापति सरदार। तुमही कर तुमही करवार॥१७॥

तुम्हारे अन्दर शक्ति, बुद्धि है और विचार करने की क्षमता भी है। तुम्हारे बड़े बड़े नेत्र हैं और अन्त करण [illegible] है। तुम्हीं सच्चे सेनापति और सरदार हो। तलवार तुम्हारे [illegible] ही शोभा देती है॥१७॥

तोही राज काज को भार। सौंप्यो तुमहीं सब परिवार॥
बीरसिंह उत राउ प्रताप। जूझ करहु कै करहु मिलाप॥१८॥

सम्पूर्ण राज्य के भार को मैं तुम्हें सौंपता हूँ और सारे परिवार का भार भी तुम्हारे ऊपर ही है। वीरसिंह और प्रताप को या तो युद्ध में पराजित कर अपनी ओर मिला लो या उनसे स्वाभाविक रीति से मेल कर लो॥१८॥

तजी आजु तैं मैं सब बात। सबै लाज तेरे सिर, तात॥
पति अरु सम्पति सब सुखदाय। तुम राखी ज्यौं राखी जाय॥१९॥

आज से मैंने सभी बातों को छोड़ दिया है। अब सम्पूर्ण लज्जा का भार आप के शिर पर है। स्वाभिमान और सम्पत्ति की जिस प्रकार से भी रक्षा की जा सकती हो, उस प्रकार से तुम करने का प्रयत्न करो॥१९॥

मंत्री मित्र बोलि नरनाथ। सौंपे इन्द्रजीत के हाथ॥
दुहुँ दिसि भटन होय भट भेर। दिन उठियत उन टेरा टेर॥२०॥

सभी मंत्री तथा मित्रों को बुलाकर रामशाहि ने इन्द्रजीत के हाथों में सौंप दिया। नित्यप्रति नकारे की आवाज पर सभी दासों की पुकार प्रारम्भ हो जाती है॥२०॥

बिरसिंह को सौंप्यो परिवार। इहि बिच मिले कटेहरा वार॥
एक बेर गोपाल सवास। स्यामदास परितीति निवास॥२१॥

जिस समय वीरसिंह को परिवार की जिम्मेवारी मिली, उस समय बटेहरा आकर मिला। गोपाल खवास ने अपने स्नेह को श्यामदास के घर जाकर व्यक्त किया ॥२१॥

पायक दुर्जन लीनें सङ्ग। गये बरेठी बात प्रसङ्ग॥
वीरसिंह सौं प्रीति बनाइ। भारथ साहिहि गये लिवाइ॥२२॥

अनेक दासों तथा दुष्टों को साथ लेकर भारथशाहि वीरसिंह के पास गया ॥२२॥

सुख सौं सौंपे भारत साहि। सबै साहिबी सौंपी ताहि॥
भैया बन्धु हते भट जिते। रैयति राउत सौंपे तिते॥२३॥

अत्यधिक प्रसन्न होकर सम्पूर्ण प्रभुता वीरसिंह ने भारथ शाहि को सौंप दी। सभी बन्धु, योद्धा, प्रजा और सरदारों को भी सौंप दिया ॥२३॥

जेते राज काज के गाऊ। राखे सब बाहिरे सुभाउ॥
वीरसिंह अरु भारथ साहि। कीनी सौंह दुहू चित्त चाहि॥२४॥

राज काम के जितने भी ग्राम थे, उन सब को अलग रखा। वीरसिंह और भारथ शाहि—दोनों ने—सौगंध खाई ॥२४॥

इतनी बात जु मेटै कोय। ताकौ भलौ न कबहूँ होय॥
ताके बीच दये जगनाथ। हरि हरि सामुहे पसारयो हाथ॥२५॥

आपस में हुई बात को यदि कोई न मानेगा, तो उसका भला कभी न हो, ऐसा जगन्नाथ को बीच में रखकर तथा हरि के सामने हाथ उठाकर सौंगध दोनों ने खाई ॥२५॥

राजा अपने वचन रहाय। तजि बनिगवा ओड़छे जाय॥
इन बातन की करी मनीठि। आये कुवँरहि छोड़ि बसीठि॥२६॥

राजा अपने वचनों की रक्षा करके बनिगवाँ को छोड़ कर ओड़छा चला जावे। इन बातों पर विश्वास करके बसीठी को छोड़ कर कुवर चले आये ॥२६॥

जब यह बात सुनी नृप राम। भूलि गये सिगरेई काम ॥
अब हम तुमको ऐसी कही। करि यह सौंह छांडु यह मही ॥२७॥

रामशाहि ने जब इस बात को सुना, तब उन्हें सारे काम भूल गये। अब मेरा तुमसे यही कहना है कि तुम इस जगह को छोड़ कर चले जाओ ॥२७॥

सबै बसीठी झूठी करी। बिन पूछे जु जुने नर हरी ॥
तब बसीठ उठि एकै लये। इन्द्रजीत केरावर गये ॥२८॥

बसीठी ने सब कुछ झूठा कर दिया। उसने बिना पूछे ही काम किया। इस पर बीरसिंह एक बसीठ को लेकर इन्द्रजीत केरावर गये ॥२८॥

इन्द्रजीत सुनियौ यह बात। तन मन दुख पयौ निज गात ॥
करि करि अपने चित्त बिचार। गये राजा पहँ राजकुमार ॥२९॥

इन्द्रजीत इस बात को सुनकर तन मन से बड़े दुखी हुए। अपने मन में विचार करके राजा के पास इन्द्रजीत गये ॥२९॥

तिनि यह बात नृपति सौं कही। अब तौ सबै बसीठी रही ॥
जब भगवन्त होय प्रतिकूल। फूल फूल ते होय त्रिसूल ॥३०॥

बीरसिंह ने राजा से कहा कि अब तो सब कुछ बसीठी ही हो गया है। जब भगवान प्रतिकूल हो जाता है, तब फूल भी त्रिशूल बन जाते हैं ॥३०॥

तजि बनिगवाँ चलहु नरनाथ। हरि राखिये आपने हाथ ॥
गये ओड़छै अबहिं नरेस। तबहीं जानौ छूट्यो देस ॥३१॥

हे नरनाथ, अब बनिगवा को छोड़कर चलिए और हरि को अपने हाथ में कर लीजिए। ओड़छा को जब नरेश गये, तब उन्होंने समझ लिया कि देश उनसे छूट गया है ॥३१॥

राजा नगर ओड़छें आय। बहुत भांति मन को समुभाय ॥
कहा होय गुन गन के नाथ। फाट्यौ दूध न आवै हाथ ॥३२॥

राजा ने ओड़छा आकर अपने मन को बहुत समझाने की चेष्टा की, किन्तु परिणाम कुछ न निकला। जिस प्रकार से फटा हुआ दूध हाथ नहीं आता है, उसी प्रकार मन भी सन्तुष्ट न हुआ ॥३२॥

मङ्गद पायक पैम बनाय। पठये केशव मिश्र बुलाय॥
जो कछु करि आवहु सुप्रमान। यों कहि पठये राम सुजान ॥३३॥

मगद, पायक पैम तथा केशव मिश्र को रामशाहि ने कार्य सिद्धि के निमित्त भेजा ॥३३॥

गये बरेठी कहं बहु घने। बीरसिंह पै तीनो जने॥
पहिले देखे केशव दास। बीरसिंह नृप रूप प्रकाश ॥३४॥

बीरसिंह से मिलने के लिए तीनों बरेठी गए। केशवदास ने सब से पहले बीरसिंह को देखा ॥३४॥

बैठे सिंहासन सिर छत्र। चौंर ढुरत भूमि भाजत सत्रु॥
निकट भयो देख्यौ भव भूप। जैसो कछु सुभाव कौ रूप ॥३५॥

केशवदास ने बीरसिंह को सिंहासन पर बैठा हुआ देखा। सिर के ऊपर चौंर चल रहा था, जिसे देखकर शत्रु के भ्रम का विनाश हो जाता था। केशवदास ने निकट जाकर बीरसिंह के स्वाभाविक रूप को देखा ॥३५॥

नियरे ही बैठारे भूप। कुशल प्रश्न पूछे बहु रूप॥
पायक पैम चलाई बात। सुनन लग्यौ नृप उर अवदात ॥३६॥

बीरसिंह ने तीनों लोगों को अपने पास बैठा कर अनेक प्रकार से कुशल प्रश्न पूछी। पायक पैम ने अपनी बात कहना शुरू कर दिया। बीरसिंह देव उसकी बात को ध्यानपूर्वक सुनने लगे ॥३६॥

पैम कहै जोई जब बात। बीरसिंह सुनि हँसि हँसि जात॥
समुझै पैम सहज की हास। मङ्गद जान्यौ है उपहास ॥३७॥

पैम जभी कोई बात कहता है बीरसिंह तभी उसपर हँस देता है। पैम ने स्वाभाविक हास को जान लिया और मगद ने बीरसिंह के हँसने में उपहास का अनुभव किया ॥३७॥

बोलि कह्यौ यह नृप सिरमौर। मेटहु सौंह चलावहु और ॥
केसव मिश्र कही यह बात। सुनिये महाराज के तात ॥३८॥

वीरसिंह ने कहा कि अब सौगन्ध बात को मिटाकर और किसी बात का प्रसङ्ग चलाओ। इसपर केशव मिश्र ने कहा कि हे महाराज! सुनिये ॥३॥

राजनि सौं बैठे दीवान। विनती करत परम अज्ञान ॥
जब हम समय पाय, हैं राज। विनती करि हैं नृप सिरताज ॥३६॥

सभी दीवान राजाओं के समान बैठे हुये हैं और उसमें आप अज्ञानतापूर्ण बात कह रहे हैं। जब मेरा समय आयेगा तब विनती करेंगे ॥३६॥

इतनी सुनि हिय पति सुख पाय। बैठे न्यारे ह्वै नृप जाय ॥
बोलि लिये कवि केसवदास। कियौ नृपति वह वचन प्रकास ॥४०॥

इतनी बात सुनकर वीरसिंह अत्यधिक प्रसन्न हो गए और जाकर एक ओर अलग बैठ गये और वहीं पर केशवदास को बुलाकर वीरसिंह ने कहा ॥४०॥

कासी सनि के तुम कुल देव। जानत हो सबही के भेव ॥
जानत भूत भविष्य विचार। वर्तमान की समुझत सार ॥४१॥

शशि कुल के तुम कुल देव हो। इसलिये उस कुल के सभी भेदों को तुम भली प्रकार जानते हो। तुम्हें भूत और भविष्य दोनों का ही ज्ञान है और वर्तमान की स्थिति से भली प्रकार परिचित ही हो ॥४१॥

जिहि मग होय दुहुन कौ भलौ। तेहि मग हौंहि चलाऔ चलो ॥
यह सुनि केसवदास विचारि। बात कही सुनिये सुखकारि ॥४२॥

जिस प्रकार से भी हम दोनों का भला हो, उसे बताओ। उसी मार्ग से हम दोनो चलेंगे। यह सुनकर केशवदास ने विचार करके कहा ॥४२॥

नृपति मुकुटमनि मधुकर साहि। तिन के सुत द्वै दिन दुख दाहि ॥
दुहूँ भांति सुख के फर फरे। परमेस्वर तुम राजा करे ॥४३॥

राज शिरोमणि मधुकरशाह के दो पुत्र है, जो कि दुख देने वाले हैं। आज आपके राजा होने से दोनों प्रकार से सुख के फल फले हुये है ॥४३॥

तुम नरहरि नृप कीने नाउ। कहौ कौन पर मेटे जाउ॥
है द्वै बाट भली अन भली। चलिबौ कुशल कौन की गली॥४४॥

आप तो मनुष्यों में भगवान हैं। राजा तो केवल आप नाम मात्र के हैं। दो मार्ग—अच्छा, बुरा—हैं। इनमें से किस पर चलना मङ्गलकारी है ॥४४॥

बांईं एक दाहिनी ओर। सुखद दाहिनी बांईं घोर॥
वीरसिंह तजि बोले मौन। कौन दाहिनी बांईं कौन॥४५॥

एक मार्ग बाईं ओर को जाता है और दूसरा दाहिनी ओर को। दाहिनी ओर का मार्ग सुखद है और बाईं ओर का कष्टदायक। केशव के इस कथन पर वीरसिंह ने अपना मौन तोड़ कर कहा कि कौनसा दाहिनी ओर का मार्ग है और कौन सा बाईं ओर का ॥४५॥

सकल बुद्धि तेरे नर नाथ। दल बल दीरघ देख्यौ साथ॥
देह दाम बल दीसहि घनैं। धर्म कर्म बल गुन आपनैं॥४६॥

हे नाथ! "तुम सब प्रकार से बुद्धिमान हो। तुम्हारे साथ बहुत बड़ी सेना है। आपके पास धन, शक्ति, धर्म, कर्म, गुण सब कुछ दिखाई पड़ता है" ॥४६॥

सोधि सील बल दीनो ईस। सकल साहि बल तेरे सीस॥
तुमहि मित्र अकपट बलवंत। जुद्ध सिद्धि बल अरु जसवंत॥४७॥

आपके शील को देखकर ही ईश्वर ने तुम्हें शक्ति दी है। सब प्रकार की शक्ति आपके पास है। तुम्हारे मित्र अकपटी और बलवान हैं और साथ ही वे युद्ध कला में प्रवीण और यशस्वी हैं ॥४७॥

उनके इनमें एक न आज। कीने चित्त जुद्ध की साज॥
जद्ध करे ते जानि न परैं। को जानैं को हारैं मरैं॥४८॥

आज उन मित्रों से यहा पर एक भी नहीं है, फिर भी तुमने युद्ध का विचार किया है । युद्ध होने पर इनका पता न चलेगा। इस स्थिति में कौन जीतेगा और कौन हारेगा, कहा नहीं जा सकता है ॥४८॥

इतकों उतको दल सघरै। तुमकू दुहू भांति घटि परै॥
उत आँगे भुवपाल अजीत। सो जूझै जूझै इन्द्रजीत ॥४६॥

चाहे इस दल का विनाश हो और चाहे उस दल का, तुम्हारी दोनों प्रकार से हानि है। उस ओर अजयी राजा है। उस राजा के न रहने पर इन्द्रजीत अपने प्राण दे देगा ॥४६॥

इन्द्रजीत बिना राजा मरै। राजा बिनपुर जौहर करै॥
पुर मे ब्राह्मन बसत अपार। कीजै राज जू परै विचार ॥५०॥

इन्द्रजीत के न रहने पर राजा प्राण दे देगा। राजा के अभाव में सारा नगर जौहर करेगा। नगर में ब्राह्मणों की बस्ती अधिक है। हे राजन्! इस स्थिति पर विचार करके जो तुम्हारी इच्छा हो, वह करो।" ॥५०॥

यह मैं बाट बताई बाम। महा विषम जाके परिनाम ॥५१॥

इसे ही मैंने बायें का मार्ग बताया है, जिसका परिणाम बड़ा भयानक होगा ॥५१॥

॥ दोहा ॥

भैया राजा ब्राह्मननि मारे यह फल होय।
स्वारथ परमारथ मिटैं बुरो कहै सब कोय ॥५२॥

भाई, राजा और ब्राह्मण को मारने का यह फल होता है कि स्वार्थ और परमार्थ—दोनों का—विनाश हो जाता है और सभी बुरा कहते हैं ॥५२॥

॥ चौपाई ॥

सुनिये बाट दच्छ दाहिनी। जो दिन दुसद दु:ख दाहिनी॥
इक पुरिया अरु राजा वृद्ध। दुहू दीन दीरघ परसिद्ध ॥५३॥

अब बाईं ओर के मार्ग को सुनिये। एक तो वे तुम्हारे पुरिखा (सब से बड़े) दूसरे वृद्ध हैं और तीसरे राजा हैं और दोनों ही धर्मों में प्रसिद्ध हैं ॥५३॥

नैन विहीन रोग संयुक्त। जीवत नाहीं जेठौ पुत्र॥
ताके द्रोह बड़ाई कौन। मुख द्वै के बैठारौ भौन॥५४॥

राजा नेत्रहीन है और साथ ही रोगी भी है। ज्येष्ठ पुत्र भी जीवित नहीं रहता। ऐसे राजा के विरोध में विद्रोह करने से क्या बड़ाई होगी? उसे तो आपको सुख देकर घर पर रखना चाहिये ॥५४॥

सेवा के सुख दै सुखदानि। पाउ पखारि आपने पानि॥
भोजन कीजौ तिनके साथ। ढारौं चौंर आपने हाथ॥५५॥

उनकी सब प्रकार से सेवा करके सुख दीजिये और अपने हाथों से पैर धोइये। उनके साथ ही भोजन कीजिये और अपने हाथ से ही चौंर ढालिये ॥५५॥

पूजा यों कीजे नर देव। ज्यों कीजे श्रीपति की सेव॥
जौ लगि रामसाहि जग जियैं। बनि है राज सेव ही कियैं॥५६॥

जिस प्रकार से लोग विष्णु भगवान की आराधना करते हैं, उसी प्रकार से आप उनकी सेवा कीजिये। जब तक रामशाहि जीवित हैं तब तक उनकी सेवा करने से ही राज्य की व्यवस्था बनी रहेगी ॥५६॥

पीछै है सब तुमहीं लाज। लीबो पद, जन, साज समाज॥
निपटहिं बालक भारत साहि। तिन तन कुसल कृपा दग चाहि॥५७॥

रामशाहि के बाद तो तुम्हारा ही सब कुछ है। सम्पूर्ण पद प्रतिष्ठा, राज्य और सारे समाज के साज तुम्हारे ही होंगे। भारतशाहि निपट बालक है। उस पर आपकी कृपा दृष्टि चाहिये ॥५७॥

भारत साहि राउ भूपाल। उग्रसेन सब बुद्धि विसाल॥
इनकी तुम्हैं सुनी, नरनाथ। राजा सौंपे अपने हाथ॥५८॥

भारतशाहि भूपाल, बुद्धिमान उग्रसेन को राजा ने आपके हाथों में सौंपा है अर्थात् उनकी सुरक्षा का भार आपके ऊपर है॥५८॥

तब तुम जानौ ज्यों त्यौं करौ। राज लाज आनें सिर धरौ॥
अपने कुल की कीरति करौ। यहई बाट दाहिनी भली॥५६॥

अब तुम जिस प्रकार से भी हो राज्य का भार अपने शिर पर ले लो। अपने कुल की कीर्ति की रक्षा का मार्ग ही दूसरा मार्ग है॥५६॥

यह सुनि सुख पायौ नरनाथ। वही आपने जिय की गाथ॥
राजहि मोहिं करौ इक ठौर। विविध विकारनें की तजि दौर॥६०॥

केशव के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर वीरसिंह बहुत प्रसन्न हुए अपने मन की बात को कहा। सभी प्रकार के विकारों को (द्वेष) छोड़कर मुझे और राजा को एक साथ कर दो॥६०॥

मैं मानौं, जौं मानैं राज। सफल होंहि सबही के काज॥
तब हँसि मगद पैम बुलाय। कीनौं बिदा परम सुख पाय॥६१॥

जिस वस्तु को राजा स्वीकार कर लेंगे उसे मैं भी स्वीकार कर लूंगा। सभी की मनोकामनायें पूर्ण हों। वीरसिंह ने अत्यधिक सुखी होकर प्रसन्नता के साथ पैम और अंगद को विदा किया॥६१॥

सुनि यह राजहि परो विचार। कीजे मिलन विप्र यहि बार॥
यहि बिच पैम कह्यौ हरखाय। कल्यान दे रानि सों जाय॥६२॥

यह सुनकर राजा ने विचार किया कि इस बार विप्र ने हम दोनों की भेंट करवा दी। इसी बीच में पैम ने प्रसन्न होकर कल्यान देवी से जाकर कहा॥६२॥

हम न मते को जानैं भेव। जानै मिश्र कै वीरसिंह देव॥
ज्यौं क्यौं हू घटि बढ़ि परि जाइ। हमको दोष न दीजै भाइ॥६३॥

दोनों में क्या सलाह हुयी, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं। उस सलाह का पता या तो बीरसिंह को है या केशव मिश्र को है ॥६३॥

इतनी कहत महा भय छियौ। कल्यान दे रानि कौ हियौ ॥
रानी कह्यौ सु पूछै काहि। लै आवहु सुव भारत साहि ॥६४॥

इतना सुनते ही कल्यान देवी का हृदय भयभीत हो गया। रानी ने भारतशाहि को बुलाने के लिये कहा ॥६४॥

॥ कुण्डलिया ॥

कीनो कछु कल्यान दे कल्यान न चित चाहि।
पैम जु कीनो प्रेम कछु ल्याये भारत साहि॥
ल्याये भारत साहि डाहि मरजाद पंथ की।
मिलई धूरिहि धरा धरनि धर धर्म अरथ की।
फूटि गयौ जस कलस फट्यौ पट मन रस मीनौं।
परमेश्वर पग पेलि बुरौ वरु अपनो कीनौं ॥६५॥

कल्यान देवी का विचार मंगलकारी न रहा। पैम ने भारतशाह को पथ की मर्यादा का विनाश करके बुला लाया उसने धर्म अर्थ की मर्यादा को धूल में मिला दिया। यह उसी प्रकार से हुआ जिस प्रकार से यश का कलश फूट जाने से होता है। परमेश्वर की ओर पैर बढ़ाकर उसने आप अपना बुरा किया ॥६५॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री बीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे शपथ भङ्ग वर्णनो नाम।

दशमः प्रकाशः ॥१०॥

जबही टूटि बसीटी गई। तबही बरषा हर्षित भई॥
आई बीच करन को मनो। सकल साज साजे आपनो॥१॥

जब बसीटी टूट गई तब वर्षा अत्यधिक प्रसन्न हुयी। उसने आकर अपने सब प्रकार के साज सजाने शुरू कर दिए॥१॥

चहु दिसा बादल दल नचै। उज्जल कज्जल की रुचि रचै॥
दिसि दिसि दमकति दामिनि घनी। चकचौंधति लोचन रचि घनी॥

चारों ही दिशाओं में सफेद और काले बादल नाच रहे थे। सभी ओर बिजली चमकती है और कौंधा लपकता है॥२॥

गाजत बाजत मनो मृदङ्ग। चातकि पिक गायक बहु रङ्ग॥
नन्दन बन में रंभा घनी। तहँ नाचत जनु रंभा बनी॥३॥

चातक कोयल तथा अन्य अनेक प्रकार के गायक ऐसा गा रहे हैं, मानो मृदंग बज रहा हो। नंदन वन के बीच में गायें रंभा रही है तो ऐसा लगता है कि रंभा (एक अप्सरा) नृत्य कर रही है॥३॥

अति सज्जल बद्दल की पाँति। तामैं हँसावलि बहु भाँति॥
जल स्यो मरावलि पी गई। उगिलत तासी सोभा भई॥४॥

बादलों की सजल पंक्ति है, उसमें हंसों की कतारें अर्थात् तारे शोभा दे रहे हैं। ऐसा अनुमान है कि सपावली ने जल पी लिया और उसी को उगल दिया है, जिसकी यह सब शोभा दिखाई दे रही है॥४॥

शक्र सरासन सोभा भर्यो। बरन बरन बहु जोतिन धर्यो॥
रतनमयी अनु बारुन मार। वर्षा गम दिनि गधी बार॥५॥

इन्द्र धनुष शोभा युक्त होकर अनेक वर्णों की ज्योतियों को धारण कर रहा है। मानो रत्नयुक्त वरुण हो गये हैं और वर्षा के आगमन की सूचना दे रहे हैं॥५॥

बरसत बुन्द वृन्द घन घनै। बरनत कवि कुल बुधि बल सनै॥
बीर प्रगासा नर परगास। ताकौ धूम धर्यो आकास॥६॥

धीरे-धीरे पानी बरस रहा है। अनेक कवि वर्षा का वर्णन कर रहे हैं। आकाश में जो धूम वर्ण के जो बादल दिखाई दे रहे हैं, मानो वे वर्षा के यश का प्रकाश कर रहे हैं॥६॥

खेचर दग गन दीरघ इली। जिनकी जल धारा जनु चली॥
बिन अपराध धरा बन नवे। तिनकी पीड़ा पीड़ित भवे॥७॥

मानो आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की अश्रु धारा प्रवाहित हो उठी हो। वे बिना किसी अपराध के पृथ्वी पर गिरे हैं। केवल उनकी पीड़ा से पीड़ित हुए थे॥७॥

मेघ घोष मघवा बल बढ़े। मानों तमकि तपनि पर चढ़े॥
गरजत ज्याजनि बजै निसान। जंत्र पात निरोत नियान॥८॥

मघवा की शक्ति से बादल गर्मी के ऊपर तनक कर चढ़ आये हैं। सच में तो युद्ध की घोषणा निशान बजा कर रहे हैं, किन्तु बहाने से गरज रहे हैं। वायु का आवागमन बन्द हो गया है॥८॥

इन्द्र धनुष घन मण्डल धार। चातक मोर सुभट किलकार॥
खद्योतन कौं बिपदा भई। इन्द्र वधू घर घरनिहिं दई॥९॥

इन्द्र धनुष से युक्त बादल पानी से भरे हुए हैं। बादलों को देखकर चातक, मोर और योद्धा किलकारें मार रहे हैं। खद्योतों पर विपत्ति आ गई है। इन्द्र वधू ने घर में घरनी की तरह रहना शुरू कर दिया है॥९॥

किधौं धूम के पटल बखानि। जग लोचननि तिमोपक मानि॥१०॥

या तो आकाश पर धूम की तह जम गई है जो कि संसार के नेत्रों में अंजन लगाने के काम में आयेगी॥१०॥

कैधौं तमकि चढ़्यो तमराज। ज्योतिपत सब मेटन काज।
रिपुराज सेना सी लसै। दच्छिन मुखी न काहू त्रसै॥११॥

या तमराज रजत, सभी ज्योतिवतों का विनाश करने के लिए चढ़ा है। राक्षसों की सेना सी सुशोभित हो रही है। दक्षिन मुनी से कोई भी भयभीत नहीं हो रहा है ॥११॥

अनसूया सी सुनैा मुद्देस। चारु चन्द्रमा गर्ग सुवेश ॥
रक्षसपति सी दल दरसियो। स्वर्ग सामुही गति लेखियो ॥१२॥

अनसूयाके समान वह सुन्दर थी। सुन्दर चन्द्रमा के समान गर्व से अच्छे वस्त्र धारण किये हुये थी। राक्षसपति का दल सा सामने देखा और सामने स्वर्ग को प्राप्त करने की गति भी देखी ॥१२॥

कुमज कालिका सी सोहियैं। नीलकण्ठ तन मन मोहियैं॥
परकीया सी अभिसारिनी। सत मारग की निर्घासिनी ॥१३॥

चतुर कालिका के समान सुशोभित थी और नीलकण्ठ के मन को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। परकीया नारी के समान अभिसार किया था। वह सत मार्ग का विनाश करने वाली थी ॥१३॥

द्रुपद-सुता कम' दुति धरै। भीम भूमि भूरि भार्गनि अनुसरै॥

द्रोपदी के समान कांति को धारण करती थी और भीम के मार्ग का अनुसरण कर रही थी।

॥ दोहा ॥

बरनत केसव सकल कवि विषम गाढ़ तम सृष्टि ॥
कुपुरुष सेवा ज्यों भई सन्तत मिथ्या दृष्टि ॥१४॥

वर्षा के कारण ऐसे सघन अन्धकार की उत्पत्ति हुई कि सर्वदा (रात्रिदिन) दृष्टि मिथ्या प्रमाणित होती है (कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है) जैसे बुरे मनुष्य की सेवा से कोई आशा फलीभूत नहीं होती है ॥१४॥

बीते बरषा काल त्यों आई सरद सुजाति ॥
गये अन्धारी होति हैं चारु चाँदनी राति ॥१५॥

वर्षाकाल बीतने पर शरद सुन्दरी इस प्रकार आ गई जैसे अंधेरी रात बीत जाने पर सुन्दर चांदनी रात आ जाती है ॥१५॥

लछिमन कैसी लछमी लसै । रामानुगत प्रेम हिय बसै ॥
मढ़ी देव दीपति अनुसार । अर्द्ध चन्द्रमा ललित लिलार ॥१६॥

हे लक्ष्मण ! लक्ष्मी किस प्रकार से शोभायमान है । राम का प्रेम इनके हृदय में निवास करता है । देवानुकूल कान्ति शोभित है और मस्तक में अर्द्धचन्द्रमा है ॥१६॥

मंडित मंडप हंस अपार । मनो सारदा उदित उदार ॥
नारद कैसी दसा विसेखि । तमकि तमोगुन लोपक लेखि ॥२०॥

मंडप अनेक हंसों से भरा हुआ है । ऐसा लगता है कि शारदा स्वयं उदित हुई हैं । मानो सारे तमोगुणों का लोप कर देंगी ॥२०॥

तमकि देवननि कैसी सिद्धि । समुझत सत मारग की बुद्धि ॥२१॥

देवताओं के प्रकार की सिद्धि है और सतमार्ग के लाभ को समझती है ॥२१॥

॥ दोहा ॥

काहू को न भयो कहू ऐसी सगुन न होत ॥
बीरसिंह के चलत ही भयो मित्र उद्दोत ॥२२॥

इस प्रकार का सगुन कभी किसी को नहीं हुआ है । वीरसिंह के चलते ही सूर्य भगवान उदित हुए ॥२२॥

॥ चौपाई ॥

मोहत अरुन रूप भगवन्त । जनु रिपु रुधिर वली वलवन्त ॥
रामचन्द्र जू को अनुसरै । तारापति के तेजहिं हरै ॥२३॥

सूर्य अरुन रूप में शोभित हैं । सूर्य भगवान रामचन्द्र जी के अनुसार चलते हैं और तारों के तेज का विनाश करते हैं ॥२३॥

चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै । चोर चकोर चितसी लसै ॥२४॥

सूर्य को देखते ही कोकावेली अपने मन में डरती है और चोरों तथा चकोरों के लिए चिता के समान है अर्थात बहुत दुःख देने वाला है ॥२४॥

॥ छप्पद ॥

अरुन-गात अति प्रात पद्मिनी प्राननाथ भय।
जनु केशव हैं गए कोकनद कोक प्रेममय॥
किधौं सक्र को छत्र मढ्यो मानिक मयूख पट।
परि पूरन सिन्दूर पूर मगल घट॥
कै श्रोणित कलित कपाल के किल कापालिक काल को।
ललित लाल कैधौं लसत दिग भामिनि के भाल को॥२५॥

सूर्य प्रातः काल लाल होकर निकले हैं। ऐसा लगता है कि कमल और चक्रवाक के प्रति उनके हृदय मे जो प्रेम है वह बाहर निकल आया है। या इन्द्र का छत्र है जो मणि की किरणों से बुने हुए कपड़े से बनाया गया है। या कोई मगल घट है जो सब का सब सिंदूर से रगा हुआ है। या यह निश्चित ही काल रूपी कापालिक के हाथ में किसी का रक्त भरा सिर है, जिसे उसने बलि चढ़ाने के लिए अभी अभी काटा है अथवा पूर्वदिशारूपी स्त्री के मस्तक का मणि है॥२५॥

॥ चौपाई॥

पसरे कर कुमुदिनि को लीन। कैधौं कमलनि को सुख दैन॥
चढ़ै जानि जनु तारा भगी। जहँ तहँ अरुन जोति जगमगी।२६॥

सूर्य की किरण फैली हैं। मानो वे सूर्य के हाथ हैं जो कुमुदिनी को पकड़ने के लिए फैले हुए हैं, या कमलिनी को सुख देने के लिए फैले हुए हैं। तारे डर कर मानो अस्त हो गये हैं क्योंकि उन्हें सूर्य की किरणों में फँसने का डर था। चकोर भी सूर्य की किरणों को फंदा समझ कर ठगा सा हो रहा है॥२६॥

॥ दोहा ॥

दिनकर बानर अरुनमुख चढ्यौ गगन तरु धाय।
केसर तारा कुसुम नितु कीनी झुकि झहराय॥२७॥

सूर्य रूपी लाल मुख वाला बंदर आकाश रूपी वृक्ष पर दौड़ कर चढ़ गया है। आकाश रूपी वृक्ष के तारा रूपी फूलों को हिला कर पुष्प रहित कर दिया है ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

गगन अरुन दुति लसी विसाल। ज्यौं वारिधि बड़वानल ज्वाल ॥
हरि दल खुरनि दरी दल मली। उचरहिं धूरि पूरि मनु चली ॥
मिटी अरुनता सोभा भनौ। निर्त्तक्काल तमनि का मनौ ॥
दूरहि ते तम नासत भयौ। जनु अज्ञान जगत को गयौ ॥२८॥

आकाश में लालरी इस प्रकार से फैल गई मानों समुद्र में बड़वाग्नि लग गई हो। हरि दल का खुरों से मानो दलमल दिया है। सूर्य की धुलि से मानों आकाश परिपूर्ण हो गया है। लालरी मिट गई और शोभा दिखाई पड़ने लगी। सूर्य दूर से अंधकार का विनाश कर रहा है। मानों सारे संसार का अज्ञान समाप्त हो गया है ॥२८॥

॥ दोहा ॥

जबही वारुनी की करी रच्छक द्विजराज ॥
तहां कर्‌यो भगवन्त निज सपति सोभा साज ॥२६॥

जैसे ही चन्द्रमा पश्चिम दिशा में जाने की इच्छा करता है, वैसे ही सूर्य उसे सपत्ति, शोभा तथा सामान हीन कर देता है। जैसे ही कोई ब्राह्मण थोड़ी भी मदिरा की इच्छा करता है वैसे ही भगवान उसकी कान्ति और सपत्ति हर लेते हैं ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

चलत गयन्द तरुन पर चढ़े। मनौ मेघमाला हरि चढ़े ॥
नदी वेतवै परम पवित्र। देखी बीर नरेस विचित्र ॥३०॥

गयंद के चलने ही वृक्ष पर चढ़ गये, मानों मेघमाला पर हरि चढ़े हैं। राजा वीरसिंह ने नदी बेतवा के किनारे पर देखा ॥३०॥

दरसे दूरि करै तन ताप। परसे लोपै पाप कलाप ॥
स्नान करे सब पातक हरै। देखत ज्ञान उदौ जल करै ॥३१॥

बेतवा को देखने मात्र से शरीर का सारा ताप नष्ट हो जाता है। स्पर्श करने से सारे पापों का विनाश हो जाता है। स्नान करने पर सभी पातकों को हर लेती है। देखने से हृदय में ज्ञान का उदय होता है ॥३१।

सव्द्गति चञ्चल चतुर विभाति। मनौ रामसों रूसी जाति ॥
अविवेकी कैसी गति गहैं। परसि असाधु साधु गति लहैं ॥३२।

प्रात काल की वायु चली जा रही है। मानो राम से रूठ होकर चली जा रही है। अविवेकी लोगों के समान व्यवहार करती है। साधु और असाधु लोगों का स्पर्श करके गति को प्राप्त करती है ॥३२॥

विधि मग मति सो बड भागिनी। हरि मन्दिर मों अनुरागिनी ॥
हरि पद पदवी सो मसार। चक्रादिन के चिन्ह अपार ॥३३॥

वह बड़ी सौभाग्यशालिनी है। हरि मंदिर में उसका अनुराग है। हरि पद में अनुराग होने के कारण ही उसमें चक्रों के अनेक चिन्ह हैं ॥३३॥

भव मारग भूमिनी विचारु। नृप चरननि के चिन्हित चारु ॥३४॥

संसार में वह भूमिनी की भांति है। नृप के सुन्दर चरणों के चिन्ह उस पर हैं ॥३४॥

॥ दोहा ॥

सुर नर मुनि गुनि गनत गन केसव सेवत सिद्ध।
कलि में गङ्गाजल सबै कहत पुरान प्रसिद्ध ।३५॥

अनेक मनुष्य, मुनि, देवता, सिद्ध उसकी सेवा करते हैं। कलियुग में गंगा जल ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा पुरान प्रसिद्ध है ॥३५॥

॥ चौपाई ॥

पार उतरि सब करि स्नान । गये वीर गढ़ दै बहु दान ॥३६॥

पार जाकर सभी ने स्नान किया । अनेक दान देकर वीरसिंह गढ़ को गये ॥३६॥

गये सुवीरसिंह गढ़ वीर । कै गये राम सचित्त सरीर ॥
राजा रानी लै इन्द्रजीत । लै भूपाल राउ मन मीत ॥३७॥

वीरसिंह गढ़ में गये । रामसिंह मिलने के लिए गए । इन्द्रजीत राजा, रानी और अपने मित्रों को लेकर गये ॥३७॥

कह्यौ सबै तुम बुद्धि विसाल । करने कहा मोहि यहि काल ?॥
रानी कह्यौ सुनौ नरनाथ । बुधि बल इन्द्रजीत के साथ ॥३८॥

हे बुद्धि विशाल ! तुमने सभी कुछ कहा है, लेकिन मुझे इस समय क्या करना है ? रानी ने कहा कि हे नरनाथ ! इन्द्रजीत के साथ में इस समय बुद्धि और बल है ॥३८॥

करौ जु इनके चित्त विचार । और कछू समुझौ इहि बार ॥
इन्द्रजीत यह कह्यौ प्रवीन । मेरे जीवन होहु न दीन ॥३९॥

इस बार इनके अनुसार विचार कीजिये । मेरे कथन का और कोई अर्थ मत लीजियेगा । इन्द्रजीत ने कहा कि मेरे कारण से आप दीन न हों ॥३९॥

जाही मांझ तुम्हारौ काजु । हमसों सोई करनै आजु ॥
कह्यौ राउ भूपाल विचारि । कीजै केवल जूझ विचारि ॥४०॥

जिससे आप का काम पूर्ण हो, वही काम आज मुझे करना है । भूपाल राव ने विचार कर कहा कि युद्ध करने में आज ही कुशल है ॥४०॥

केसव मिश्र कह्यौ गुनि चित्त । दोऊ तुम हो इनके मित्त ॥
कहि जै जिहि सब की प्रतिपाल । अबहीं नहीं सकुच कौ काल ॥४१

केशव दास ने कहा कि तुम दोनों ही इनके मित्र हो जाओ। जिस प्रकार से सभी का प्रतिपाल हो, उसे बिना सकोच के इस समय कहिये ॥४१॥

जितनी जुद्ध करन को साज। तामै देख्यौ एक न आज॥
तुम मे नहीं मन्त्र बल एक। नहीं मित्र बल बुद्धि विवेक ॥४२॥

युद्ध करने के लिए जितनी सामग्री की आवश्यकता है, उसमें से आज एक भी दिखाई नहीं पड़ती है। तुम्हारे अन्दर एक होने का मन्त्र नहीं है। बुद्धि, विवेक और मित्र बल भी नहीं है ॥४२॥

दल बल नहीं दुर्ग थल आजु। देखत नहीं दान बल साजु॥
नहीं बाहु बल राज शरीर। नहीं ईस वर तुम कौ वीर ॥४३॥

न तो सैनिक शक्ति है और न दुर्ग ही ठीक अवस्था में हैं और न दान का बल ही आज दिखाई पड़ता है, और न भुजाओं में अब वह शक्ति है और न तुम्हें ईश्वर का अब वह वरदान ही प्राप्त है ॥४३॥

समझौ अपने मन मत - शुद्ध। कहौ कौन विधि जीतै जुद्ध॥
जूझ वृत्त तीनों फल करे। जीति हारि कौ प्रभु सहरे ॥४४॥

अपने मन में ऊपर की सारी बातों को अच्छी प्रकार से समझ लो कि युद्ध किस प्रकार से जीता जायगा। युद्ध होने से तीन लाभ होंगे। जीतने और हारने पर प्रभु का सहारा कौन करेगा ॥४४॥

जौ तुम कैहूँ जीतौ राज। उनकी है हजरति सो लाज॥
जौ तुम भागे जाउ तजि भौन। तौ राजा की रक्षक कौन? ॥४५॥

यदि तुम किसी प्रकार से युद्ध जीत लोगे, तो भी हजरत उनकी लाज रखने वाला है। यदि तुम घर छोड़कर भाग गये, तो फिर राजा की रक्षा कौन करेगा ॥४५॥

जो, तुम जूझि जाउ नृपनाथ। राजा परै सत्रु के हाथ ॥
जीवत ताको होय अलोक। अरु दिन दूनौ बाढ़ै सोक ॥४६॥

हे राजा! यदि तुम युद्ध म मारे गये, तो राजा शत्रु के हाथ में पड़ जायेगा। जीवित ही उसे नर्क मिल जायगा और रात दिन शोक बढ़ता ही जायगा ॥४६॥

तातें हठ छाडहु वर वीर। हठी भये सब परम अधीर ॥
हठ हीं अधगति कीन त्रिसकु। हठ ही हारी रावन लंक ॥४७॥

इस कारण से हे श्रेष्ठ वीर! हठ छोड दो। जितने भी हठ करने वाले लोग हुये हैं, वे सभी अधोगति हो गये हैं। हठ के कारण ही त्रिशंकु की अधोगति हो गयी और हठ के कारण रावण लंका को हार गया ॥४७॥

हठ तें भयौ कंस को काल। हठ ते दुरजोधन कौ साल ॥
मत्री मठ द्विज राजा हठी। इनकी बात देखिए नठी ॥४८॥

हठ के कारण ही कंस मारा गया और हठ ही दुर्योधन के विनाश का कारण हुआ। यदि मंत्री दुष्ट हो और ब्राह्मण तथा राजा हठ करने वाले हों, तो निश्चित विनाश होगा ॥४८॥

सब तजि वीरसिंह को आज। लै आवहु घर दीजै राज ॥
सेवक ज्यों वे करिहैं सेव। ये है वर रक्षो नर देव ॥४९॥

सब प्रकार के बैर भाव को भुलाकर वीरसिंह को बुलाइये और उन्हें राज दे दीजिये। सेवक की भांति ही वे सेवा करेंगे ॥४९॥

यह सुनि रानी अति दुख पाय। केसव मिश्र दये वहुराय ॥
वहुत राज सो औगुन गनै। इनि की जनि जानौ आपनै ॥५०॥

यह सुनकर रानी को बहुत दुख हुआ। उसने केशव मिश्र को वापस कर दिया। जो राज्य में बहुत से अवगुण देखते हों, उनको अपना कभी मत समझो ॥५०॥

इन्द्रजीत पादारघ लये। केसौदास वीर गढ़ गये ॥
वीरसिंह तब कियौ पयान। लियौ बचौना उत्तिम थान ॥५१॥

इन्द्रजीत ने पादारघ लिया। केशवदास वहाँ से उठकर वीरसिंह के गढ़ को चले गये। वीरसिंह ने उस स्थान को छोड़कर बबीना स्थान को ले लिया ॥५१॥

॥ दोहा ॥

आवत सैद मुदफ्फरहि कीनो फेरि पयान ॥
उपवन स्वामि सराय कैं मेल्यौ बुद्धि निधान ॥५२॥

सैय्यद मुदफ्फर को आता हुआ देखकर, फिर वहाँ से भी चल दिया। वन में आकर अपने स्वामी से मिले ॥५२॥

॥ चौपाई ॥

आये तिहि डेरा जनु भूत। ग्वोना अबदुल्लह के दूत ॥
देखि लिखे के आखर नये। वीरसिंघ चित्त दुचिते भये ॥५३॥

उमे डेरे मे अबदुल्ला के दूत इस प्रकार से आये, मानो भूत आ गये हो। नये अक्षरों को देखकर वीरसिंह चिंतित हुए ॥५३॥

जाकैं होय प्रेम अविकार। जाइ सु राजा देस न जाइ ॥
सावधान है लोहो गहौं। पुर उजारि सूधे ह्वै रहौं ॥५४॥

जिसके हृदय मे राजा के प्रति सबसे अधिक प्रेम हो वह राजा को न जाने दे। अब सावधान होकर युद्ध करें और पुर को उजाड़ कर सीधे रहूँगा ॥५४॥

लिखि पठयौ तब केसवदास। लेख देख कीनो उपहास ॥५५

केशवदास ने वीरसिंह के विचारों को लिखकर भेज दिया। केशव के लेख को देखकर लोगो ने उपहास किया ॥५५॥

॥ दोहा ॥

समय सरोस सलोभ कछु समद मोह को जाल।
आये करन बसीठई। आनन्दी गोपाल ॥५६॥

आनदी गोपाल समीत, लोभ सहित, क्रुद्धित, मोह के जाल मे फँसकर बसीठी करने के लिये आये ॥५६॥

॥ चौपाई ॥

मन और मुह और कहै। सत्रु मित्र की सुधि नहिं लहै ॥
देखै, सुनै न समुझै वात। आनै नहीं काल की बात ॥५७॥

मन में कुछ और है और मुह से कुछ और निकलता है। मित्र शत्रु का विचार नहीं कर रहा है। न उसे समय की कोई बात समझ में आती है और न कुछ दिखाई ही पडता है ॥५७॥

तिनकी सिगरी देखि सयान। बीरसिंघ कीनौ प्रस्थान ॥५८॥

उसकी सारी चालाकी देखकर वीरसिंह ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया ॥५८॥

तिनही के आगे बलबीर। सेना बांटि दई रन धीर ॥
किए विचारि चमूपति चारि। सूर सुबुधि ते हितू विचारि ॥५६॥

उसी के सामने वीरसिंह ने सेना का विभाजन कर दिया। अपने हितू, स्नेहियों से विचार करके सेना के चार भाग कर दिये ॥५६॥

इति श्री मत्सकल भूमण्डला खण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंहदेव चरित्रे दानलोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे मन्त्र विभ्रमो नाम एकादशमोध्याय. ॥११॥

—❀—

॥ चौपाई ॥

॥ दान उवाच ॥

बिन्ध्यवासिनी सुनहु सभाग। किये कहा करि चमू विभाग ॥
क्यों पुर आयो कहौ निदान। वीरसिंह अब्दुल्लह खान ॥१॥

हे विन्ध्यवासिनी ! यह बताओ कि सेना का विभाजन करके क्या किया ! वीरसिंह और अब्दुल्ला ने पुर में प्रवेश क्यों किया ॥१॥

॥ श्री देव्युवाच ॥

सुनौ दान तुम जुद्ध विधान। चारि चमूपति बुद्धि निधान ॥
जादौराइ और गम्भीर। वीरसिंह कौ दूजो वीर ॥२॥

हे युद्ध विधान दान ! सुनो । चारों सेनाओं के चार सेनापति नियुक्त हुये । वीरसिंह के बाद का दूसरा योद्धा जादौराइ था, जो कि शक्तिशाली और गंभीर था ॥२॥

कृपाराम ताकौ सुत राज । जाके सीश राज की लाज ॥
वीरसिंह मन्त्री सो कियौ । राज भार ताकें सिर दियौ ॥३॥

कृपाराम उसका पुत्र था, जिसके सिर पर राज्य की लज्जा का भार था । वीरसिंह ने उसे मन्त्री बना कर सारे राज्य का भार उन दे दिया ॥३॥

साचे सूरौ मित्र सयान । सदा सहोदर पुत्र प्रमान ॥
सो समर्थ सनामुख चल्यौ । राजसिंह को जिहि दल दल्यौ ॥४॥

वह सच्चा शूर और मित्र था । सदैव भाई और पुत्र के समान कार्य रत था । उसी समर्थ ने सेना का सचालन किया और राजसिंह की सेना का विनाश कर दिया था ॥४॥

गयौ दमोदर तजि सब साज । मारयौ जिहि रन मैं जुगराज ॥
मुकुट गौर कौ पूत बसत । चल्यौ वाम दिसि बनि बलवत ॥५॥

दामोदर सारे साजों को छोड़कर गया और उसने रण में युवराज को मारा । मुकुट गौर का पुत्र, बसत बायीं दिशा को चला ॥५॥

केसौदास जुद्ध जमदूत । देवागढ़ गूजर कौ पूत ॥
सो दच्छिन दच्छिन दिसि चल्यौ । हसन खानको जिहिदल दल्यौ॥६॥

देवागढ़ गूजर का पुत्र युद्ध में यमदूत की भांति था । वह दक्षिण दिशा में गया और उसने हसन खा की सेना का विनाश किया ॥६॥

ईसरर राउत जुद्ध अभीत । लौंधी लोहू गहै रनजीत ॥
सो सैना के पाछे भयौ । भीमसेन को जिहि जस लयौ ॥७॥

युद्ध मे निर्भीक और निडर ईसरर राउत सेना के पीछे रहा और भीमसेन को पराजित किया ॥७॥

भोर होत ही चारों ओर। आये सेना सजे गंभीर॥
गज बाहनि सोहें पाखर। सुन्दर सिर सूर मन हरें॥८॥

प्रातःकाल ही चारों ओर सेना साज कर आने। हाथियों पर पड़ी हुई झूल शोभा दे रही थी और घोड़ों के मस्तक पर श्री (गहने) शूरों के मनों को आकर्षित कर रहा है॥८॥

अति ताते अति तरल तुरङ्ग। मान्यो चहत भयो विहङ्ग॥
सुभटनि सहित सजे तन त्रान। रहे भूमि पर बुद्धि निधान॥९॥

घोड़े चतुर हो तेज और चंचल हैं। ऐसा लगता है कि पक्षी बनकर उड़ जायगा। ऐसे योद्धा युद्ध की तैयारी कर रहे हैं॥९॥

गज गाजत सुनि परदल हलैं। कुनित किंकिनी द्युति झलमलैं॥
घूघर घन घटा घननात। अति मदमत्त भौंर भननात॥१०॥

हाथियों की चिंघाड़ सुनकर शत्रुदल का हृदय दहल जाता है। किंकिणी शब्द कर रही है और उनकी कांति झलमला रही है घुंघुरू और घंटे बज रहे हैं। ऐसा लगता है कि मस्त भौंरे भनभना रहे हैं॥१०॥

मातंगन सहित मनो गिरि बन। तरल तड़ित जुत जनु घन घने॥
मनो तमो गुन गगनहिं ग्रस। धाये जीवन्त तन लसे॥११॥

ऐसा लगता कि मणियों युक्त पर्वत हो अथवा बिजली युक्त बादल हो। मानो तमोगुण आकाश को जीवित शरीर धारण करके ग्रस रहा है॥११॥

आगे सबै अमला किया। तिहि पाछे पैदल दल दियौ॥
तिन पाछे गाजत गजराज। तिनके पाछे सुभट समाज॥१२॥

सबसे आगे तोपखाना किया और उसके पीछे हाथी थे और उनके वीर समाज था॥१२॥

इहि विधि चमू चारहू ओर। मध्य प्रताप राउ जिय जोर॥
सुन्दर सूर सुभट अभीत। वीरसिंह की मानहु भीत॥१३॥

इस प्रकार से चारों ओर सेना थी, और उसके बीच में प्रतापराउ था। प्रतापराउ सुन्दर शूर वीर था और वीरसिंह का मानो मित्र हो ॥१३॥

बीरसिंह यह चढ़ि चल चढ्यौ। मनौ पवन पर पावक चढ्यौ ॥

बीरसिंह इस प्रकार से युद्ध में चढ़ा, मानो वायु पर पावक चढ़कर जा रहा हो ॥१४॥

॥ सवैया ॥

जुद्ध कौं वीर नरेश चढ़े धुनि दुंदुभी की दसहू दिसि धाई।
प्रात चला चतुरंग चमू वरनी अंग केसर क्यौं हू न जाई।
यों सब के तन आनन ते झलकी अरनोदय की अरनाई।
आपर तैं जनु रंजन को रनपूतन की रज ऊपर आई ॥१५॥

दुदुभी की ध्वनि को सुनकर वीर नरेश युद्ध के लिए तत्पर हो गये। जिस समय प्रातः काल सेना चली, उस समय की शोभा अवर्णीय थी। सभी योद्धाओं के अंग प्रत्यंग अरुणिमा झलक रही है। ऐसा लगता है कि राजपूतों के प्रत्येक वरण की रज लोगों का रंजन करने के लिए ऊपर आ गई है ॥१५॥

॥ चौपाई ॥

भूतल सकल भ्रमित ह्वै गयो। लोक लोक कोलाहल भयौ ॥
गाजि उठे दिग्गज तिहि काल। सक्ति सकल भ्रक दिगपाल ॥१६॥

समस्त पृथ्वी भ्रम पड़ गई और सभी दिशाओं में कोलाहल व्याप्त हो गया। इसी समय हाथी चिंघाड़ उठे, इससे सभी दिक्पाल सशंकित हो गये ॥१६॥

रौंद परी सुर पुरी अपार। बाढ़े सुरपति चित्त विचार ॥
कलप वृच्छ गज बाजि समेत। सौंपे सुर गुरु कौं इति हेतु ॥१७॥

इन्द्रलोक में कोलाहल मच गया, इससे इन्द्र के मन में चिंता उत्पन्न हो गई। इन्द्र ने अपने गुरु को कल्प वृक्ष, हाथी और घोड़े सौंप दिये ॥१७॥

धर्मराज के घरु पक भई। दड नीति कुभज कौ दई॥
चिंता तरुन वरुन उर गुनी। तवही उतरि गई बारुनी॥१८॥

धर्मराज मरमीत हो गये, इससे उन्होंने दण्ड विधान कुभज को सौंप दिया। जैसे ही वरुण देव को चिंता हुई वैसे ही वारुणी का नशा उतर गया॥१८॥

कामधेनु केशव सुखदाय। सौंपी शेष नाग कौं धाय॥
तव कुबेर जच्छनि के नाथ। नौ निधि दई ईस के हाथ॥१६॥

जब कामधेनु शेषनाग को सौंप दी, तब यक्षों के स्वामी कुबेर ने नवों निधियाँ ईश को सौंप दी॥१६॥

मधुकर साहि नद रिंगि चल्यौ। खड खड भुव मडल हल्यौ॥
सव दल हिन्दू तुरक प्रकास। सोभत मनो सिवासित मास॥२०॥

मधुकर शाह नदगिरि को जब चला, तब समस्त पृथ्वीमंडल का खण्ड-खण्ड हिलने लगा। वर्षा ऋतु के समान अर्थात कभी श्वेत, कभी काली सेनायें शोभित हैं॥२०॥

॥ दोहा ॥

तन आननि प्रति तननि प्रति प्रति विंवित रवि रूप॥
आगें है जनु लै चले कहि केशव वहु भूप॥२१॥

ऐसा लगता है कि सभी के के शरीरों पर सूर्य का प्रतिबिंब पड़ रहा है। मानो सूर्य आगे आगे चलकर सभी राजाओं का मार्ग दर्शन कर रहे हैं॥२१॥

॥ चौपाई ॥

अधर धूरि अकाशहि चली। हय गय खुरनि खरी दलमली॥
जानि गगन को हालत हियौ। ठौर ठौर जनु थभित कियौ॥२२॥

हाथी और घोड़ों के खुरों से उठी हुई धूल आकाश की ओर चलने लगी। आकाश के हृदय को दहलता हुआ जानकर सूर्यमण्डल स्थाह-स्थान पर रुक जाता है॥२२॥

रह्यौ अकाश विमानन पूरि । मनौ उसारनि धाई धूर ॥
जूझहिंगे रन सुभट अपार । समुहैं धायनि राजकुमार ॥२३॥

आकाश में विमान इस प्रकार से छा गये मानों उसारों से उड़ी धूल जा रही है। अनेक योद्धा और राजकुमार सामने युद्ध में जूझेंगे ॥२३॥

तिनको सुखद मनहु मग कियौ । स्वर्गारोहन मारग वियौ ॥
रही धूरि परि पूरि अकास । मिटे निकट ह्वै सूर प्रकास ॥२४॥

ऐसा लगता है कि उनके जाने के लिए स्वर्ग तक सीढ़ी तैयार कर दी गयी है। सम्पूर्ण आकाश धूल से मण्डित हो गया है, यहा तक कि सूर्य का प्रकाश भी मिट जाता है ॥२४॥

॥ दोहा ॥

अपने कुल कौ कलह क्यौं देखै रवि भगवन्त ।
यहै जानि अन्तर करयौ मानहु मही अनन्त ॥२५॥

सूर्य भगवान अपने कुल के कलह को न देख सकने के कारण ही आकाश और पृथ्वी मे अन्तर कर दिया है ॥२५॥

॥ चौपाई ॥

तामैं बहुत पताका लसैं । धूम अनल ज्यों ज्वाला बसैं ॥
मनहुं काल की रसना घोर । कैधौं मीच नचति चहुँ ओर ॥२६॥

सेना में अनेक पताकायें सुशोभित थी, ऐसा लगता था कि वे अग्नि की लपटें हैं या यह काल की जिह्वा है या मृत्यु ही चारों ओर नाच रही है ॥२६॥

पवन प्रकाश दीह गति होति । मनहु अकाश दियन की जोति ॥
ननु अकाश वन कलित कलत्र । तरलित तुग ताल के पत्र ॥२७॥

वायु जब चलने लगती है तब वायु मण्डल स्वच्छ हो जाता है और ऐसा लगता है कि आकाश में दीपकों की ज्योति है अथवा आकाश रूपी वन में तुगताल के पत्र फैले हुए हैं ॥२७॥

किधौं विमानन की दुति हलै। देवनि के अंचल सी चलैं॥
जय श्री भुज सी धुज देखिये। किधौं चौंर चञ्चल लेखिये॥२८॥

या विमानों की दुति हिल रही है या देवियों के अंचल हिल रहे हैं। युद्ध स्थल में चचल या तो भुजायें हैं या चवर॥२८॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंह की वल ध्वजा धूरिनि मैं मुख देति॥
जुद्ध जुरन कौं मनहु प्रति जोधनि बोले लेति॥२६॥

वीरसिंह की पताका धूरि में भी मुख देती है। मानों युद्ध करने के लिए योद्धाओं का अपनी ओर बुलाये ले रही है॥२६॥

॥ चौपाई ॥

टूटत तरु फूटत पाखान। चमकत आयुध अरु तन त्रान॥
नगर सामुहे सेना चली। दुदुंभि ध्वनि दिसि विदिसनि भली॥३०॥

वृक्ष टूट रहे हैं। पत्थर फूट जाते हैं और तलवारें चमक रही हैं। सभी दिशाओं में दुंदुभी बज उठी और सेना नगर के सामने होकर चलने लगी॥३०॥

येही बिच अब्दुल्लह खान। आनि औंड़छे कर्‌यौ विहान॥
ताके योधा भैरो भूत। मानौ काल जमन के पूत॥३१॥

इसी बीच में अबदुल्ला खा ओड़छे में आ गया। उसके योद्धा साक्षात भैरव नाथ के भूत थे अथवा काल के पुत्र॥३१॥

राम नृपति के दुदुभि बजैं। जह तहं सूर घोर गल गजें॥
तब भुपाल राउ गज चढ़े। इन्द्रजीत बहुधा बल बढ़े॥३२॥

राम राजा की भी दुदुभी बजी और योद्धा इधर उधर गर्जना करने लगे। इस समय भूपाल राव हाथी पर चढे। इनके हाथी पर चढ़ने से इन्द्रजीत को बहुत अधिक बल मिला॥३२॥

रचे दुहून जुद्ध के भेव। मानौ दीरघ देखत देव॥
प्रगट परसपर जोधा लरैं। कहूं वेग बिजुरी सी मरैं॥३३॥

दोनों ओर से युद्ध का विधान हुआ। ऐसा लगा कि देवता उसे देख रहे हों। दोनों ओर से योद्धा आपस मे लड़ने लगे। म्यानों से निकली हुई तलवारें ऐसी लगती थी मानो बिजली चमक रही हो ॥३३॥

टूटत वाहु कन्ध सिर कटैं। इभ भुसुंड घोटक पग घटैं॥
गिरि गिरि सुभटनि उठि उठि लरैं। धरैं खड्ग खपुवा जम धरैं॥३४॥

युद्ध में कुछ लोगों के कधे टूट रहे हैं और कुछ के शिर धड़ से अलग हो जाते हैं। अनेक योद्धा गिर गिर कर युद्ध करते हैं। सभी योद्धा तलवार, खपुवा और जमधर को धारण किए हैं ॥३४॥

दौर्यौ इन्द्रजीत रनजीत। जुद्ध जुरै जनु जम को मीत॥
मारत ही भट हय तैं धक। भट नट मनों कुल्हाटैं चुकैं॥३५॥

इन्द्रजीत रण में इस प्रकार से दौड़ा मानों यम का मित्र हो। मारने पर योद्धा अपने घोड़ों पर से गिर पड़ते हैं और अनेक योद्धा वार होने पर नटों की तरह कलाबाजी करते हैं ॥३५॥

कोप्यौ काल राज भूपाल। पावक सम जनु पवन कराल॥
एक पठान बान कर लयौ। इन्द्रजीत को घोरौ हयौ॥३६॥

भूपालराउ काल की भाँति कुपित हो गया। उसका क्रोध अग्नि अथवा कराल वायु के समान था। इसी समय एक पठान ने बाण चलाया, जिससे इन्द्रजीत का घोड़ा घायल हो गया ॥३६॥

लागत ही ह्वै गयौ अचेत। गिर्‌यौ भूमि असवार समेत॥
भूमि होत ही राजकुमार। दौरे मुगल गहे करिवार॥३७॥

बाण के लगते ही घोड़ा अचेत होकर सवार सहित धराशायी हो गया। राजकुमार जैसे ही भूमि पर गिरा वैसे ही अनेक मुगल तलवार लेकर दौड़ पड़े ॥३७॥

मथुराई मार्‌यौ असवार। इन्द्रजीत हय मारन हार॥
एही समय राउ भूपाल। दुर्जन दौरि करे बेहाल॥३८॥

इन्द्रजीत के घोड़े को मारने वाले को मथुरा ने मार दिया और भूपालराउ ने इसी समय दौड़कर अनेक दुष्टों को बेहाल कर दिया ॥३८॥

कीनी हाथ हथ्यार अपार । भयी लाल लौहू करिवार ॥
भभरि गयौ अब्दुल्लह खान । भूलि गयौ सव जुद्ध विधान ॥३६॥

भूपालराउ ने कठिन युद्ध किया जिसके कारण तलवार लाल हो गई। अब्दुल्ला खाँ घबड़ा गया और उसे युद्ध का सारा विधान भूल गया ॥३६॥

॥ दोहा ॥

कांपन लागी भूमि भय भागि गयो जनु भानु ॥
बाजि .उठ्यौ दिसि वाम तै बीरसिंह नीसानु ॥४०॥

भय के कारण से पृथ्वी कांपने लगी और सूर्य आकाश मण्डल को छोड़कर भाग गया। बाईं ओर से वीरसिंह की विजयश्री का डंका बजने लगा ॥४०॥

चौपाई

सुनि सुनि मुर्‌यौ राउ भूपाल । जदपि कर्‌यो-मुगलनि की चाल ॥
आयौ तहां जहां इन्द्रजीत । विह्वल अङ्ग देखियत भीत ॥४१॥

सुन सुन कर भूपालराउ बड़ा दुखी हुआ। वह वहां पर गया जहाँ इन्द्रजीत व्याकुल अवस्था में पड़ा हुआ था ॥४१॥

करच मध्य घायनि की भीर। अन्तर पीड़ा मूँदी पीर ॥
सुधि सरीर की गई नसाइ । सुभट सबै लै चले उठाइ ॥४२॥

इन्द्रजीत के कवच के बीच में और हृदय में पीड़ा हो रही थी। उसे अपनी सारी सुध भूल गई थी। अनेक योद्धा उसे उठाकर वहाँ से चले ॥४२॥

पहुँचे जानि दूरि इन्द्रजीत । या कहि सब सौं रह्यौ अभीत ॥
मुगलनि घेरि लियौ अवरोघ । कीजै अब राजा को सोध ॥४३॥

इन्द्रजीत कुछ दूर पहुँचा हुआ जानकर उसने उठकर कहा कि मुगलों ने घेर लिया है। इसलिए अब हमें राजा का पता लगाना चाहिये ॥४३॥

॥ कुण्डलिया ॥

भाजन हारे जाउ भजि जिनकौ प्यारो गात।
मरी तौ मो सँग लागियौ मैं राजा पै जात ॥
मैं राजा पै जात सुनो प्रोहित गुन गायक।
फौजदार, सिकदार, सूर, सरदार सहायक ॥४४॥

जिन्हें अपना शरीर प्रिय है, वे भाग सकते हैं, किन्तु मैं राजा के पास जा रहा हूँ। मैं राजा के पास जा रहा हूँ, इसे पुरोहित, चारण, फौजदार, सिकदार, शूर सभी अच्छी प्रकार से सुन लें ॥४४॥

व्रतधारी बानैत मित्र मन्त्री जन साजन।
कहौ राउ भूपाल सबै तुम सुभट समाजन ॥४५॥

हे भूपालराउ तुम इसे सभा का सुनाकर कह दो ॥४५॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे युद्ध वर्णन नाम द्वादशमो प्रकाश ॥१२॥

॥ चौपाई ॥

काहू कछू न उत्तर दियो। यों कहि कुंवर पयानौ कियौ ॥
देखि अकेलोई भुवपाल। बोलि उठ्यो तब छेत्रमुपाल ॥१॥

कहीं पर भी किसी ने कुछ उत्तर न दिया। इन्द्रजीत उपरोक्त बात कहकर वहां से चल दिया। भुवपाल को अकेला देखकर क्षेत्रपाल बोल उठा ॥१॥

॥ क्षेत्रपाल उवाच ॥

अब्दुल्लह खां खेत खर्ग बल तें मुरकायौ।
अपने हाथ हथ्यार कर्‌य जग कौ जस पायौ ॥
प्रबल घना घन मनहु सुनहु यौं दुंदुभि बाजत।
यौं गाजत गजराज लाज दिग्गज गन साजत ॥

ध्वज देख धार वारसिंह की चमक मनौ चपलानि की।
अब कुसल कुसल घर जाहि जनि बांधें मोट कलानि की ॥२॥

अपने हथियारों के बल से तुमने अबदुल्ला खा को रणक्षेत्र से भगा दिया और उसके कारण ही तुम्हें संसार में यश प्राप्त हुआ है। दुदुभी इस प्रकार से बज रही थी मानो आपस में टकरा कर घनघोर बादल गर्जना कर रहे हो। वीरसिंह की पताका और बिजली की तरह चमकने वाली तलवार को देखकर लोग अपनी कुशल नहीं समझते थे ॥२॥

॥ भुवपाल राज उवाच ॥

भूपति भूल्यो मत्र बैर बहु भांति बढ़ायौ।
करि करि झूठो रोस कोस सब पाइ नसायौ॥
लिये वाजि गज रीझि देस मिसही मिस लीनौ।
सोये निसि लै तियन चेत कछु चित्त न कीनौ॥
सब सुख समाज जिहि राज किय कहि केशव जानति मही।
रन छांडि भगे ता राज को कौन कला हू पै रही॥३॥

हे भूपति! तुमने मत्र को भुलाकर अनेक प्रकार से शत्रुता को बढ़ाया। व्यर्थ का क्रोध करके सम्पूर्ण कोष को नष्ट कर दिया। रीझकर अनेक हाथी और घोड़े ले लिये और धोखे से अनेक देशों को जीत लिया। स्त्री को रात्रि में लेकर सोते रहे, मन में कुछ भी विचार नहीं किया। जिसे सारी पृथ्वी राजा के रूप में जान जाय, वही उसका सुख और सम्पति है। उस राजा के पास कोई कला शेष नहीं रह जायगी, जो रण छोड़कर भाग खड़ा होता है ॥३॥

॥ दैव उवाच ॥

कौनउ एक अदिष्ट गयौ पचि विस पियूस है।
चन्दन सो सुख कन्द भयौ ज्यौं दहन देह छ्वै॥
को जानै जिहि पुन्य भयौ केहरि गो जन सौं।
कहि उपर सो परयौ लर्‌यौ सुभ सोम सुमन सौं॥

कहि केसव कौनहुं काल जो माल भये अहिवाल को।
किहि भाग भग्यौ अहि जाहि घर पीठि परहि जनि काल की ॥४॥

कोई भी तो वस्तु अनिष्टकारी हो गई है, जिसके कारण से चंदन के समान शीतल और सुख देने वाली वस्तु जलाने वाली हो गई है और पता नहीं किससे पुण्य के प्रताप से सिंह लोगों के लिये गो के समान हो गया है। मस्तक पर पुष्प की भाँति सुशोभित होने वाली, पता नहीं कहाँ आ गई। केशव पूँछते हैं कि क्या किसी भी युग में सर्पों की भी माला हुई है। उसके किस भाग्य का विनाश हो गया है, जिसके घर पर सर्प जाता है ॥४॥

॥ कुवर उवाच ॥

दिल्ली दल दलमलन राज रावर महं छाड्यौ।
का बिलपतिहि भजाइ जुद्ध जिहि काबिल माड्यौ ॥
कुल कामिनि परिवार सहित राजा अरु रानी।
सुर सुंदरी समेत इन्द्र सँग ज्यो इन्द्रानी ॥
बहु बालक जाल रसाल सब पति पतिनी सम्पत्ति वर।
छितिपाल सुनहु यह काल भजि कहौ कहा लै जाउ घर ॥५॥

दिल्ली सेना का विनाश करने के लिए राजा ने रावर में छोड़ दिया। आज वह विलाप क्या कर रहा है, जिसने काबुल तक युद्ध किया था। परिवार की स्त्रियां, राजा और रानी उसी प्रकार से आनन्द पूर्वक रह रही हैं, जिस प्रकार से देव लोक में इन्द्र और इन्द्राणी रह रहे हैं। केशव कहते हैं कि काल से रक्षा करने के लिये पत्नी, पुत्र, श्री सम्पत्ति आदि को कहाँ ले जाया जाये ॥५॥

॥ देव उवाच ॥

जौ जीवन तौ जगत बहुरि कै फिरि पति पावहि।
जौ जीवन तौ पुत्र मित्र वित्तन उपजावहि ॥
जौ जीवन तौ राज राजकुल लैउर गावहि।
भव में भीम समान दुःख दै दिवस गवावहि ॥

वाकीभनै जि भाभी भली जन साजन सजनी जनी ।
सुनि कुवरि जीउ लै जाहि जौ जीवन तौ जुवती घनी ॥६॥

यदि जीवन है तो फिर इस देश में तुम वापस आओगे । यदि प्राण रहेंगे तो पुत्र, मित्र और धन फिर पैदा कर लिया जायगा । यदि प्राण रहे, तो राजकुल को आलिंगन करने का पुनः अवसर मिलेगा किन्तु भविष्य के विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता है ॥६॥

॥ कुवर उवाच ॥

जह जह उरगन जाहु कहैं सोइ स्वामी द्रोही ।
गाइ न जानैं नाचि मागि आनैं नहि मोही ॥
मैरा करि करि मरहि राति दिन दीरघ छाटी ।
वीरसिंघ मतु छाड़ि देहि कबहू नहिं रोटी ॥
अब पति पतिनी कह छोड़ि को जरै भूग भर आगि भर ।
चढ़ि आज बाजि रन पीठि दै व्याधा काके जाउँ घर ॥७॥

जहाँ-जहाँ म जाऊंगा, वहीं मुझे सब स्वामी का द्रोही कहेंगे । मुझे न तो गाना आता है और न नाचना ही, जिसके सहारे पर मैं कुछ माग सकता । मैरा करते हुए ही अब मरना श्रेयस्कर समझता हू । रोटी के लिए वीरसिंह कभी सत्य को नहीं छोड़ सकता है । अब स्वामी को छोड़कर पत्नी सवार की आग में जलकर भूखा क्या मरे ? अब आज घोड़े पर सवार होकर अकेलिया किसके घर जाये ? ॥७॥

॥ देव उवाच ॥

पति पतिनी बहु करैं, पति न पतिनी बहु करही ।
पति हित पतिनी जरहि, पति न पतिनी हित मरही ॥
एक नायिका दुःख कहा बहु नायक दूखे ।
सूखे सरिता एक कहा बहु सागर सूखे ॥
कहि केसव काटै काल ज्यौं काल न काटै तोहि वर ।
नृप नंदन आनंद मय देखि असाहीं जाइ घर ॥८॥

पति अनेक विवाह करता है, किन्तु पत्नी नहीं। पत्नी अपने पति के लिए जलती है, किन्तु पति पत्नी के लिए नहीं मरता है। एक नायिका के दुखी होने से कहीं नायक दुखी होता है? जिस प्रकार से एक नदी के सूख जाने से सारे समुद्र नहीं सूख जाता है मैं काल का विनाश कर दूँगा, वह तुम्हारे पास नहीं आने पायेगा। अब मैं युद्ध करने के बाद ही घर जाऊँगा ॥८॥

॥ कुमार उवाच ॥

इक राजा अरु वृद्ध इते पर हीन सुलोचन।
हमही सेवक, सुभट सखा सेवक दुख मोचन ॥
हमही मंत्री मित्र पुत्र हमहीसुनि सपति।
हमही हाथ हथ्यार हियौ है सही बुद्धि मति ॥
हौं करत सौंह जगदीश की ता बिन जीव न लेखिहौं।
जो जियौं त घर सुर पुर करौं मरे अखारौ देखिहौं ॥६॥

एक तो राजा दूसरे वृद्ध और उस पर भी नेत्रहीन है। हमीं सब उनके सेवक मित्र और योद्धा हैं और उनके दुखों का विनाश करने वाले हैं। हमीं उनके मन्त्री, पुत्र और सम्पत्ति हैं। हमीं उनके हाथ और हथियार हैं। मैं सौगन्ध खाता हूँ कि उनके बिना जीवित नहीं रहूँगा। यदि जीवित रहूँगा तो उसके घर को देवपुरी के समान बना दूँगा अन्यथा युद्ध स्थल में मर जाऊँगा। ६।

॥ दोहा ॥

साईं छांडे साँकरे फेर लेइ दै दान।
तिनि कै नामहि लेतही थूकै सकल जहान ॥१०॥

जो स्वामी दान देकर फिर वापस ले लेता है, उसके नाम पर सारा संसार थूकता है ॥१०॥

॥ देव उवाच ॥

तूं छत्री कुलपाल तोहि सब दुनी सराहै।
तू सूरो सब भांति सिद्ध संग्रामहि थाहै ॥

तू अभीत रनजीत सत्यव्रती जग वंदन।
तू उदार परिवार तोहि लायौं नृप नंदन ॥
सुनि रतन सैनि रनधीर मुत दूरि करहि सब चलि कलुस।
हौं मरन काल आयौ निकट देहि मोहि मांगौ जु मुरस ॥११॥

तू क्षत्री कुल का बालक है तेरी सभी सराहना करते हैं। तू सब प्रकार से वीर है और सग्राम में तुझे विजय मिलेगी। तू युद्ध में अभय है और ससार तेरे सत्य की प्रशंसा करता है। तू अत्यधिक उदार है। इसीलिये राजा तेरे पास है। हे रतनसेन! तू चलकर सब प्रकार के कष्टों को दूर कर दे। मेरी मृत्यु निकट आ गई है। इसलिए मैं जो कुछ भी तुमसे मागता हूँ वह मुझे दो ॥११॥

॥ कुमार उवाच ॥

मांगहु मंत्री मित्र पुत्र प्रभु सकल कलित्रन।
मांगहु भोजन भवन भूमि भाजन भूषन गन ॥
मागहु आसन असन ग्रान जनिन मांगहु मनि।
मागहु बाग तडाग राग वड भाग भोग भनि ॥
कहि केसव मागहु सकल पुरसुत समेत समु असु धर्नौ।
सब देहौं जो कछु मागिहौ धर्म न देहौं आपनौं ॥१२॥

मन्त्री, मित्र, पुत्र, परिवार के लोग, भोजन वस्त्र, मुक्तायें भवन भूमि, बाग, तालाव, सवारी तथा अन्य भोग की वस्तुएँ तथा सम्पूर्ण ग्राम, मांग लो। मैं ऊपर की सारी चीजें दे दूँगा, लेकिन धर्म न दूँगा ॥१२॥

॥ देव उवाच ॥ दोहा ॥

विविधि धर्म ध्रुव धरनि मैं वरनत वेद पुरान।
कौन धर्म जु न देहि तू देहौं कहत जु प्रान ॥१३॥

अनेक ध्रुव धर्मों का वर्णन वेद और पुराणों में मिलता है, उनमें से तुम किस धर्म को नहीं देना चाहते हो ॥१३॥

॥ कुमार उवाच ॥

सत्य गाय द्विज मीत की सतत रक्षा धर्म।
स्वामी तजै न सांकरै यहै हमारो धर्म ॥१४॥

सत्य, गाय, ब्राह्मण और मित्र की रक्षा करना सतों का धर्म है। और स्वामी सेवक को सकट काल में नहीं छोड़ता है, यही धर्म है ॥१४॥

॥ देव उवाच ॥ छप्पै ॥

नारी हुँ नरदेव बचे सब परसुराम डर।
देव बचे करि मेर अंध दस कंधर के घर॥
धैई हाथ हथ्यार हुते अपने मन भाये।
अर्जुन नारिन ग्याइ घरै नीके ही आये॥
रन मारयौ कुंजर नर कह्यौ जब भारत भव मंडियौ।
भुवपाल राउ जग जीव लगि सत्य जुधिष्ठिर छंडियौ ॥१५॥

परशुराम के डर के कारण सभी देव नारी होकर अपनी रक्षा कर सके थे। घमण्डी रावण की सेवा कर देवताओं ने अपनी रक्षा की थी। अर्जुन के पास अपने प्रिय अस्त्र भी थे, फिर भी नारी का रूप धारण करने के बाद ही कुशलपूर्वक घर वापस आये थे। रण में अश्वत्थामा हाथी को मारने के बाद भी युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा से कहा था। वहा पर ससार के जीवों की रक्षा के लिये सत्य को छोड़ दिया था ॥१५॥

॥ कुमार उवाच ॥

प्रथम जाय मतिमान लाज जिय तैं जसु भाकी।
चौंकि चले चतुराइ तेहु तब हित की ताकी॥
सुर सोभा नसि जांइ सुपुनि पति परगट मुक्कइ।
तच्छिन लच्छइ लच्छ नाउ लेतहिं जग थुक्कइ॥
यह लोक नसै परलोक पुनि सग्र निसंकहि खंडइ।
कहि केश सत्रु न छंडिये जौ छंडत सब छुडइ॥ १६॥

हे मतिमान! पहले तो जाकर अपने मन की लज्जा को निकाल दो। उन लोगों की ओर भी थोड़ा देखिये जो कि तुम्हारे साथ चल

दिए हैं। इसका जो ध्यान नहीं रखता है, उसका सारा सुख नष्ट हो जाता है। उसका अथवा उसका नाम लेने पर सारा संसार उस पर थूकता है। ऐसे लोगों का यह लोक और परलोक, दोनों नष्ट हो जाते हैं और शत्रु पराजित करने में सफल होता है। ऐसे शत्रु को कभी नहीं छोड़ना चाहिये जो छोड़ देने के बाद विनाश करने लगे ॥१६॥

॥ देव उवाच ॥

पेस भगे परदेस छाँड़ि मया भारथ कहं।
होरिल रावहि छांडि भगे निज देस जुद्ध महं॥
भजे करहरा छाड़ि राम दूलह कहं दिक्खहु।
सब भागे यहि भांति छत्रि जन जिय जनि लिक्खहु॥
भूपाल राउ का सीस सुनि जब जब जिहि रन मडियौ।
तब तब कहि केशव दास जग कोनहि सत्य न छडियौ॥१७॥

भाई पेस भारथ को छोड़ कर विदेश चले गये हैं। होरिलराव देश के युद्ध को छोड़कर भाग गये हैं। करहरा को छोड़कर दूलहराम भाग गये हैं। इसी प्रकार से सारे क्षत्री भाग गये हैं। इस बात को आप समझ ले। भूपालराव ने भी अनेक बार युद्ध किया है। इस संसार में किसने सत्य को नहीं छोड़ दिया है ॥१७॥

॥ कुमार उवाच ॥

महाराज मलखान पाउ रन दियौ न पीछैं।
अमन दास अमोल मरयौ सुति जस जिय ईछैं॥
मरयौ न होरिल राउ वाम बैकुंठहि पायौ।
खरगसैन रनक जूझि राजा पहुंचायौ॥
रन कियौ पच्छि मेरे पिता मृतक पच्छि के पच्छ को।
कहि क्यौं न करौं अब पच्छि मैं जीवत अपनै पच्छ को॥१८॥

महाराज मलखान ने युद्ध में आगे पैर बढ़ाकर पीछे नहीं रखा। अमलदास अमोल मर गया, लेकिन सत्य नहीं छोड़ा। क्या होरिल

मरा नहीं ? क्या उसे वैकुन्ठ वास मिल गया है ? खगसेन ने मरकर भी राजा की रक्षा की। मेरे पिता ने मृतक पक्षी का पक्ष लेकर युद्ध किया। अब मैं जीवत रहते हुए अपने पक्ष का पक्ष क्यों न लूँ ? ॥१८॥

॥ देव उवाच ॥ कवित्त ॥

भैरो कैसे भारे भूत, गनपति कैसे दूत,
सज्जे जीमूत जनु कारे वेस कारे के।
विधि कैसे बधव मदध प्रति वधन को,
कलित कराल गन्ध करि न कलेस के॥
काली कैसे छौना काल जौन कैसे दौंवा,
महानीच कैसे भैया चेति हौंवा परदेश के।
आपुनु यौ मागि रच्छि कौन करै पच्छिदच्छ,
काल कैसे साथी हाथी आये हैं बीरेस के ॥२०॥

शंकर के दूत के समान, गणेश के दूता के समान, काले काले बादल सजकर आ गये हैं। इस प्रकार के हाथी विधि के बाघत्र और विकराल हैं। वे काली के छौना के समान, काल के दौवा और मृत्यु के भाई के सदृश (हाथी) लगते हैं। बीरेस के हाथी अपने पक्ष की रक्षा करने के लिये और शत्रु पक्ष के लिये कराल बनकर आये हैं।

॥ कुमार उवाच ॥

भीति करहि जनि मीति बस रन जीति हमारी।
व्रतधारी जस अमल ताहि अब करौ नकारी॥
राजनि कै कुल राज कहा फिरि फिरि अब तारियौ।
अब तब जब कब मरन कहत अबहीं किनि मरियौ॥
सुर सूरज मन्डल भेदि ज्यों बिना गये हरि सरन।
सब सूरनि मण्डल भेदि त्यौं रामदेव देखै सरन ॥२१॥

अब भय मत करो। मेरा यश अभीत है। व्रतधारी मेरा वंश है, उसी के अनुरूप अब नकारा बजाओ। राजकुलों का बार-बार विमारा

नहीं होता है। अब आगे मरने की बात क्या कहते हो, अभी क्यों न मरा जाय। सूर्य मण्डल को भेद कर जिस प्रकार से अन्य योद्धा उसकी (भगवान) शरण में जायँगे उसी प्रकार रामदेव भी जाये।

॥ देव्युवाच ॥

उतहि चमू चतुरंग इतहि तेरे संग को है?।
लग्यौ अगमं वायु महा मेरो मन मोहै ॥
तुपकैं तीर अपार चलति चहुं ओर चपल गति।
नगर गली चौहटें रहे भट भूरि पूरि अति ॥
है जाइ कछू जी बीच ही कीनहु काज न सुद्धरै।
कहि केसव कैमें कुवर तूं राज लोग कौं उद्धरै? ॥२२॥

उस ओर बहुत बड़ी सेना है, इधर तुम्हारे साथ कौन है। मेरे अगों में जो वायु लग रही है, वह मेरे मन को आकर्षित कर रही है। चपला की भाँति चारों ओर तोपें चल रहा है। नगर की गलियाँ तक योद्धाओं से भर गई हैं। यदि कुछ बीच में ही गड़बड़ी हो जायगी, तो कोई भी काम न हो सकेगा। हे कुवर! तू लोगों के राज्य का कैसे उद्धार करेगा ॥२२॥

॥ कुमार उवाच ॥ कुंडलिया ॥

पीछे पुर विक्रम वली सत साहस वल साथ।
स्वामि-धर्म मैं करत हौं सिर पर सीतानाथ ॥
सिरपर सीतानाथ चितै को सकै तिरछैं।
जिनके बल हौं जाँउँ राखिहैं आगें पीछैं ॥२३॥

पीछे की ओर से सात सहस्त्र की सेना लिए हुये विक्रम बली है। मैं स्वामि धर्म का निर्वाह कर रहा हूँ। मेरे सिर पर भगवान राम का हाथ है, मुझे तिरछी दृष्टि से कोई कैसे देख सकेगा। जिनके बल से अभी तक रहा हूँ, वही अब भी मेरी आगे पीछे रक्षा करेंगे ॥२३॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर, महाराजाधिराजा राजा श्री बीरसिंह देव चरित्रे दानलोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे, युद्ध वर्णनं नाम त्रिदशमोऽध्यायः ॥१३॥

॥ चौपाई ॥

तब तिनि बिदा करी सुख पाइ । निर्भय पट पियरौ पहिराई ॥
भाल सुजस को टीका कियौ । सकल सिद्धि कौ बीरा दियौ ॥१॥

निर्भय होकर पीले वस्त्रों को पहनाकर विदा कर दिया। सुयश का टीका मस्तक पर लगा दिया और सभी सिद्धियों को देने वाला पान का बीड़ा दिया ॥१॥

करि प्रनाम कहि चल्यौ कुमार । अभय करी बर दियौ अपार ॥
सोभ्यौ तब सुग्रीव समान । राम काज जिनको परिवान ॥२॥

कुमार प्रणाम करके चल दिया और राजा ने अभय होने का वर दान दिया। चलते समय कुमार सुग्रीव की भांति सुशोभित हुआ। ऐसा लगा कि राम का काम करने के लिये जा रहा हो ॥२॥

सुभ लच्छन लच्छिमन सो लसै । मन क्रम बचन राम ब्रत बसै ॥
औरन उर आयौ तिहि काल । अङ्गन ज्यों अङ्गद रिपु काल ॥३॥

कुमार में शुभ लक्षण लक्ष्मण के समान है और मन क्रम, बचन से राम का अनुगामी लगा। अन्य लोगों के हृदय में उस समय काल में अपना भय जमा दिया ॥३॥

रामदेव, दुख हतन अनन्त । सोभ्यौ कुवर मनौ हनुमन्त ॥
रिपु भट भागि गये भहराय । भीतर भवन गयो सुख पाय ॥४॥

रामदेव के दुखों का विनाश करने के लिए उस समय कुमार हनुमान जी की भाँति सुशोभित हुआ। उसे देखते ही शत्रु भाग गये। कुमार घर में सुख के साथ वापस आ गया ॥४॥

देखि राजकुल आनन्द भर्यो । रामदेव के पायनि पर्यो ॥५॥

राजकुल में आनन्द देख कर कुमार रामदेव के पैरों पर गिर पड़ा ॥५॥

॥ दोहा ॥

काज सुधारि विदारि दल यौं आयौ बलवीर ॥
अभय देव संग्राम ज्यौं रामदेव के तीर ॥६॥

कार्मों को ठीक करके इस प्रकार से बलवीर आया जिस प्रकार से देवों का भय रहित करने के लिए राम ने अपने तीरों को छोड़ा था ॥६॥

॥ चौपाई ॥

राजहि भयो परम सुख गात । तिहि सुख फूले अंग न समात ॥
अति प्यासौं ज्यौं पानी पाइ । बहु भूखौं भोजन सुखदाइ ॥७॥

राजा को अत्यधिक सुख हुआ । उसका सारा शरीर पुलकायमान हो उठा । जिस प्रकार से भूखे को भोजन और प्यासे को पानी मिल जाने से सुख होता है, उसी प्रकार से राजा को भी हुआ ॥७॥

परम पङ्गु ज्यौं पाये पाँव । गुङ्ग लह्यो ज्यौं बचन बनाय ॥८॥
लहै अध ज्यौं लोचन चारु । भीजत जनु पायौं अगारु ॥
सीतारत ज्यौं अगिनी लहै । बन भूल्यौं मारग ज्यौं गहै ॥६॥

लगड़े को पैर मिल जायँ, गूंगे को बोलने की शक्ति मिल जाय, अंधे को आखें, भीगे हुए को आग, मिल जाय और बन में भूले हुए को मार्ग मिल जाने से जो प्रसन्नता होती है, वही राजा को हुई ॥६॥

॥ दोहा ॥

राज लोक अरु राज के तन मन फूले फूल ॥
फूले रवि कौं परइ ज्यौं अमल कमल के फूल ॥१०॥

सम्पूर्ण राज्य और राजा उसी प्रकार से आनन्दित हो उठे, जिस प्रकार से सूर्य की किरणों को पाकर कमल खिल उठता है ॥१०॥

॥ चौपाई ॥

अंग लगायौ लै सिर बास । निपट मिट्यौ कुल कौ उपहास ॥
पँछी नृपति जुद्ध की बात । बार बार तन की कुसलात ॥११॥

राजा ने उसे अपने अग से लगा लिया और कुछ का जो उपहास हो रहा था वह सारा समाप्त हो गया। राजा ने युद्ध और उसके शरीर कुशलता के सम्बन्ध में कुमार से बरबार पूछा ॥११॥

करै न कोऊ करिहै काज। जैसैं कुवरै करनैं आज ॥
दान लोभ सुनियत तिहि काल। बाजि उठे दुंदुभी कराल ॥१२॥

कुमार ने जिस प्रकार से आज काम किया है, उस प्रकार का काम न तो आज तक किसी ने किया है और न कोई कभी करेगा। इसे दान और लोभ उस समय सुन रहे थे। इस अवसर पर दुन्दुभी भी बज उठी ॥१२॥

वीरसिंह आयौ रन रुद्र। प्रलय काल कौ मनौ समुद्र ॥
देखत ही भागे रिपु लोग। ज्यों धन्वन्तर आए रोग ॥१३॥

रन में रुद्र के समान वीरसिंह को आया हुआ देख कर शत्रु भाग खड़े हुए। शत्रु उसी प्रकार से भागे जिस प्रकार से धनवतर को आया हुआ जान कर रोग भाग खड़ा होता है ॥१३॥

अरि की फौज भगी गहि त्रास। अन्धकार ज्यौं सुर प्रकास ॥
परम दानि सुनि जैसैं रार। जैसैं नखत बड़े ही भोर ॥१४॥

शत्रु की सेना उसी प्रकार से भगी, जिस प्रकार से सूर्य के प्रकाश को देख कर अधकार, दानी को देख कर दुख और प्रात.काल नक्षत्र भाग जाते हैं ॥१४॥

जहाँ तहा भट यों भगि गए। राम सुनत ज्यों पातक नये ॥१५॥

राम का नाम सुनने से जिस प्रकार पातक भाग जाते हैं, उसी प्रकार से योद्धा इधर उधर भाग गये ॥१५॥

॥ दोहा ॥

आये वली पहार तहँ वीरसिंघ नरसिंघ ।
पायक पुञ्ज समेत जहँ वसत हेत रनसिंघ ॥१६॥

वीरसिंह अपने समस्त योद्धाओं के साथ में उस स्थान पर आये जहा पर रनसिंह रहता था ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

छूटि गई जहँ तहँ की गढ़ी। चमू चमकि सिगरे पुर मढ़ी ॥
भय सधूम अटारी अटा। मानहु सजल सरद की घटा ॥१७॥

जहा तहा के छोटे-छोटे गढ़ छूट गये। सारी सेना गाव में छा गई। गई। अटारी और अटा भय के कारण से सधून हो गये। ऐसा लग रहा था कि जल युक्त शरद की घटा छाई हुई है ॥१७॥

लुटन लग्यो पुर सघन अपार। जच्छराज कैसो भण्डार ॥
यौं मनुन के सत छुटि गये। द्विज-देखिन के ज्यौं मुस नए ॥१८॥

सभी लोग इस प्रकार से नगर को लूट रहे थे मानो यक्ष का भण्डार लूट रहे हों। इससे शत्रुओं का सत छूट गया और द्विज-दोषियों को बड़ा आनन्द हुआ ॥१८॥

पकरी सूरन की सुन्दरी। काम कलप तरु कैसी फरी ॥१९॥

शूर योद्धाओं की सुन्दरियों को पकड़ लिया गया। वे कल्प वृक्ष की भाँति फली हुई लग रही थीं ॥१९॥

॥ दोहा ॥

किरवाने काँधे कवच तन लीन्हे हथियार।
बन्दि परे सब सूरि वकि सुन्दरि सहित कुमार ॥२०॥

तलवार, कवच और हथियारों को धारण किये हुए थे। सभी योद्धाओं और कुमारियों के साथ में कुमार बन्दी हो गया ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

वीरसिंघ तब देखत भये। करुनामय तबही ह्वै गये ॥
कोऊ जनि काहू कौं हनौ। बरज्यौ लोग सबै आपनौ ॥२१॥

वीरसिंह ने जब देखा तब उन्हें करुणा हो आई। वीरसिंह ने एक दूसरे को मारने के लिये रोक दिया ॥२१॥

अबदुल्लह खा ढोवा ठयौ। वीरसिंघ आए बल भयौ ॥
मुगल राम दूलह के लोग। गटन लागे जुद्ध प्रयोग ॥२२॥

वीरसिंह के आने से अबदुल्ला खां को बल मिला। दूलह राम युद्ध करने के अनेक विधान सोचने लगा ॥२२॥

आस पास तुरकनि कौ जाल। राजत मध्य राउ भुवपाल ॥
मत्त गजनि ज्यौं कर्यौ विचार। घेरि लियौ मृगराज कुमार ॥२३॥

आस पास तुर्कों का जाल बिछा हुआ था, उसके बीच राजा सुशोभित हो रहा था। ऐसा लगता था कि मस्त हाथियों ने विचार करके मृगराज, कुमार को घेर लिया है ॥२३॥

मनहु पर्वतन अति बल भयो। इन्द्रपुरी कौ ढौवा ठयौ ॥
मनौ निसाचर गन बलवंत। घेरि लियौ मानौं हनुमंत ॥२४॥

ऐसा लगता था कि पर्वतों ने अत्यधिक शक्तिशाली होकर इन्द्रपुरी को ढौने का निश्चय कर लिया। मानो निशाचरों ने बली होकर हनुमान जी को घेर लिया है ॥२४॥

मानौ अधरार बल लये। भारक सूर सामुहैं गये ॥
दीरघ सर्प बहुत पुर कढ़ैं। मानहु कोपि गरुड़ पर चढ़ैं ॥२५॥

सूर्य के सामने से जाने पर अधकार बलशाली हो गया हो। मानों अनेक सर्प कुपित होकर गरुड पर चढ़ाई कर दिए हो ॥२५॥

जनु प्रहलाद रामरस रयौ। घेरि पिता के दोखनि लयौ ॥
अध ऊरध मन्दिर चहुं कोद। बाहिर भीतर भवन अमोद ॥२६॥

राम में अनुरक्त प्रह्लाद को मानों उसके पिता के पापों ने घेर लिया हो चारों दिशाओं के मदिरों में आनन्द हो रहा था ॥२६॥

कैसे हूँ काहू नहि डरै। सब सौं कुवर अकेलौ लरै ॥
छल बल दल बल बुद्धि निधान। कै अटक्यौ अबदुल्लह खान ॥२७॥

कुमार किसी से नहीं डर रहा है। वह सबसे अकेले ही युद्ध कर रहा है। छल, बल, बुद्धि बल तथा दलबल से अबदुल्ला खाँ ने उसे रोक लिया ॥२७॥

॥ कवित्त ॥

सहि कौं सराहि मिट सैद अबदुल्लह सुभायौं,

ओंड़छे कौं मुढ मोहनी सी मेलि कैं।
पचम प्रचारि लर्यो और न बिचार कर्यौ,
ठौर ठौर टेल्यौ दल सगा रोलि रौलि कै॥
राख्यौ राजलोक पन रन रस भीज्यौं मन,
केसोदास देवगन रीझ्यौ हग पेलि कै।
मागैं पालजैं न कछू बदूहू अमोल पात लै,
रह्यो भुपाल राउ सबको मरेलि कैं॥२८॥

शाह की सराहना कर मोहिनी छोड़कर अब्दुल्ला ओड़छा की ओर चल दिया। बिना किसी विचार के वह स्थान-स्थान पर ललकार कर सभी से युद्ध करता रहा। राजलोक का प्रतिज्ञा रखा, रण में उसकी अनु रक्तता देखकर देवता प्रसन्न हो गये। मांगने से कुछ भी प्राप्त न होता किन्तु भूपालराउ ने बलपूर्वक सबका सब कुछ छीन लिया॥२८॥

राजत रन अगन सुखकारि। कन्ध धरे नांगी तरवारि॥
अति रातो रिपु सोनित भरी। तरनि-किरन सी उज्जल खरी॥२६॥

युद्ध में अग प्रत्यग शोभा दे रहा है। वह कंधे पर नंगी तलवार रखे हुए है। पृथ्वी शत्रु के खून से लाल हो गई है। वह सूर्य की किरणों के समान उज्वल है॥२६॥

रतन सेन सुत कौं तिहि घरी। बरनत देव देव सुन्दरी॥
रन समुद्र बोहित कौ छियो। करिया सौ किरवारी लियो॥३०॥

रतनसेन के पुत्र का उस समय सभी देव और देवरानियाँ वर्णन कर रही हैं। रण समुद्र के समान अथाह होगया था, उसमें पड़ी नौका के लिये उसकी तलवार ने पतवार का काम किया॥३०॥

पारथ सो सैना मथरै। जनु जम कालदण्ड कौं धरै॥
सोभत वलि कैसी प्रतिहार। गदाधरैं सेवत दरबार॥३१॥

काल के समान रूप धारण कर पार्थ के समान वह सेना का सहार

कर रहा है। वह बाल के प्रतिहार के समान सुशोभित हो रहा है। दरबार की सेवा गदा धारण किए हुए कर रहा है ॥३१॥

राज श्री चचल मानियैं। ताकौ दामिनि सी जानियैं॥
जनमे जय तैं ज्यौं हरि डरै। तक्षक की रक्षा भी करै ॥३२॥

राजश्री अत्यधिक चचल है, इसे बिजली के समान समझना चाहिये। मानों इन्द्र जनमेजय से डरकर तक्षक की रक्षा कर रहे हो ॥३२॥

॥ कवित्त ॥

कालिका की कौलि सी, कै काल कूट वेलि सी,
कै काली कैसी जीभ किधौं का कामिनी।
किधौं केसौदास आछी तच्छक की देह दुति,
जात की जोति किधौं जात अत गामिनी॥
मीच कैसी छाह, विष कन्या कैसी बाह,
किधौं रन जय साधि ताका सिद्धि अभिरामिनी।
राती राती माती अति लोहू की भूपाल,
राइ तेरी तरवारि पर वारि डारौं दामिनी ॥३३॥

हे भूपालराय! तेरी तलवार—कालिका की भाँति क्रीड़ा करती है, वह काली की जीभ के समान विकराल है, उसमें तक्षक के शरीर की दुति सी है, वह मृत्यु की छाया है, वह विष कन्या की भुजा के समान है, वह खून से अत्यधिक लाल—पर दामिनी को भी तेरी तलवार निछावर कर सकता हूँ।॥३३॥

॥ कवित्त ॥

मन जिमि निकसि लराई कीनो मन ही ज्यौं,
आनि छिके रावर में जानियै न कब को।
राखि लीनी राज लोक लोक राजसिंघ सम,
ठान ठान मुगल पठान ठेलि ठब के॥
लैंगो गज गामिनिन गाजि गजराज सम
केसर सराहैं सूर सब के और अब के।

वांकुरा भूपाल राउ भीर परैं ता दिन कीं,
तेरे रूप ऊपर सरूप वारौं सब के ॥३४॥

जिस प्रकार से मन याड़े ही समय में पता नहा कहां से कहा पहुँच जाता है, उसी प्रकार से उसका तलवार भी चलन हो रही है। मुगलों से युद्ध करके उसने राजलोक की मर्यादा की रक्षा करली है। वह सिंह की भाँति गर्जना कर के गज गामिनियों को ले गया, इसकी सभी योद्धा सराहना करते हैं। हे भूपाल राव! जिस समय भी विपत्ति पड़ेगी, उस दिन तेरे ऊपर सभी को निछावर कर दूँगा ॥३४॥

॥ सवैया ॥

वाज ज्यौं वांकुरा श्री महाराजा जू धाये जबै अब्दुल्लह जू पर।
साधिये हाथ हथ्यार एक सो एक भिर्यो भट दूपर॥
हिम्मति के हद केहरि केसर यौं जसराउ भुपाल जू भूपर।
आवनि धावनि लैउ पठावनि तीनि करी तिहु लोकहु ऊपर ॥३५॥

बाज का भांति महाराज जी अब्दुल्ला के ऊपर झपट पड़े। अपने अपने हथियारों को सम्हाल कर दोनों योद्धा एक दूसरे पर टूट पड़े। जसराव भूपाल इस पृथ्वी पर सिंह की भांति है। वह इतनी जल्दी आता जाता है कि तीनों लोकों में उतनी जल्दी कोई नहीं कर सकता है ॥३५॥

॥ कवित्त ॥

भोर हू की ज्वाल में भूपालराउ बांकुरा,
सर विकट वाल समिपाल मुरै रह्यौ।
कवन उभरे मुठ भेरहू के गल बल,
याजिट को दल सनमुख पल ह्वै रह्यौ॥
पचम के हाथ लागे हाथिनि तें रथी गिरे,
महिथी के मथे मद गर्जनि कीन्हें रह्यौ।

सिरी झरि, सार झरि, झनन झनन बाजै,
ठननि ठननि सब्द खोलनि मैं ह्वै रह्यौ ॥३६॥

मोरहू की ज्वाला में भूपालराव सतिपाल की रक्षा कर रहा है। युद्ध में हाथी के कंकन उभर आये हैं। उसके सामने वाजिद का दल केवल दो पल रुक सका। पचम का हाथ लगने से हाथी पर से सवार गिर पड़े। हाथियों के मस्तक से मद चूने लगा। श्री और सार गिर गये। हाथियों के खोल झनन झनन की आवाज करने लगे ॥३६॥

॥ दोहा ॥

लियें तरल तरवारि कर सोहत श्री भूपाल।
हाथ छरी जनु राज राजकुल गोकुल को गोपाल ॥३७॥

भूपाल तलवार को लिये हुए सुशोभित हो रहा है और गोकुल के गोपाल की भांति हाथ में छड़ी लिये हुए है ॥३७॥

॥ चौपाई ॥

बिबिध बन्धु रजपूत बुलाइ। सुजन सजन सब बरनि सुनाइ॥
बीरसिंह राजा यह कह्यौ। हम पर दुख न जाय सह्यौ ॥३८॥

बीरसिंह ने अपने सभी बन्धुओं को बुलाकर कहा कि मुझसे दुख नहीं देखा जा रहा है। ३८॥

एक मुदफ्फर बिन सब कोय। जा काहू के जिय रज होय॥
अबहिं जाइ राजा पै मरै। मर्‌यौ न जाइ तलै उद्धरै ॥३९॥

एक मुदफ्फर को छोड़कर, यदि सभी के हृदय में दुख है तो वह भी जाकर राजा का उद्धार करे ॥३९॥

ताकौ जस जग मैं जानिबौ। अरु मेरे प्रति दिन मानिबौ॥
काहू कछू न उत्तर दियौ। सुनि सबही सिर नीचौ कियौ ॥४०॥

उसका यश संसार में फैला हुआ मैं मानूँगा, और अपने प्रति उपकार स्वीकार करूँगा। सभी ने यह सुनकर सिर नीचा कर लिया। किसी ने भी कुछ उत्तर नहीं दिया। ४०॥

अति दृढ़ जान्यौ नृप आगार। अबदुल्लह कौ थक्यौ हथ्यार॥
यादगार सौं कही बुलाइ। क्यौं हू राजहिं मिलहु आइ॥४१॥

राजा के दृढ़ विचारों और अबदुल्ला की शक्ति को क्षीण समझकर यादगार को बुलाकर कहा कि किसी भी प्रकार राजा को लाकर मिलाओ॥४१॥

तिहिं सुन्दर कायथ सौं कह्यो। हम सौं तुम मौं विग्रह रह्यौ॥
जहांगीर की पञ्जा लेव। राजा कौं मिलवो करि सेव॥४२॥

उसने सुन्दर कायथ से कहा कि हमारी तुम्हारी लड़ाई रही है। जहांगीर के हस्ताक्षरों की किसी भी प्रकार से मुहर लेकर राजा को मिलाओ॥४२॥

राजा अरु नवाब सुख पाइ। देखहिं जाइ साहि के पांइ॥४३॥

राजा और नवाब सुख पूर्वक शाह के चरणों को जाकर देखें॥४३॥

॥ दोहा ॥

छियै नवाब मुसाफ कौं लीजै बीच बदाय।
जात दिवावै ओड़छौं हजरति सौं पहिराय॥४४॥

नवाब मुसाफ को बुला लीजिये। मैं आते ही हजरत से ओड़छा दिला दूंगा॥४४॥

॥ चौपाई ॥

सुन्दर कही राजा सो बात। राजा सुख पायौ सब गात॥
यादगार पै सौंह कराय। राम मिले खोजा कौं जाय॥४५॥

सुन्दर ने राजा से कहा, इससे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। राम शाहि यादगार को सौगन्ध देकर खोजा से जाकर मिले॥४५॥

खोजहिं भजैं तजी सब मही। चहुंदिसि हाय हाय है रही॥
जीत्यौ जिहिं तू रम रनधीर। जालिम जाम कुली सौ वीर॥४६॥

खोजा के भागने से चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। राम शाहि ने खोजा से कहा कि तूने जालिम जामकुली को भी युद्ध में जीत लिया था॥४६॥

जानि न जाय करम की गाथ। राम सु अबदुल्लह के साथ ॥४७॥

रामशाहि का साथ अबदुल्ला दे रहा है। कर्म की गति के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है ॥४७॥

अली कुली खा लीनौं लूटि। माहिम खा जिनि पठयौ छूटि ॥
जीत्यो महा वली रन रुद्र। दरिया खा जिनि सूर समुद्र ॥४८॥

अली कुली खाँ भी जिससे पराजित होगये और जिन्होंने छल करके माहिम खाँ को भेजा था दरिया खाँ ऐसे महाबली को भी युद्ध में पराजित कर दिया ॥४८॥

॥ दोहा ॥

जानै को नहि जानि है कठिन करम की गाथ ॥
हाकन हार हकीम कौं अबदुल्लह के हाथ ॥४६॥

कर्म की गति को न तो किसी ने समझ पाया है और न कोई भविष्य में ही समझ पायेगा। राजा सब प्रकार से अबदुल्ला के हाथ में है ॥४६॥

॥ चौपाई ॥

सूरज अधकार जब हर्यौ। भैरौ भूतनि के बस पर्यौ ॥
बाज काग चुगल चपि गयौ। मत्त गयंद ससा गहि लयौ ॥५०॥

सूर्य ने जब अधकार का विनाश कर दिया तब भैरो भूतों के बस मे हो गये। बाज ने काग पक्षी पर आक्रमण किया और मस्त हाथी ने ससा को पकड़ लिया ॥५०।

बन मे सिंह स्यार बरु हर्यो। सर्पनि मनौ गरुड़ बस कर्यो ॥
ऐसे ही अबदुल्लह राम। छल बल चल्यौ संग लै ताम ॥५१॥

वन से सिंह और सियारो को हर लिया और सर्पों पर मानों गरुड ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। इसी प्रकार से अबदुल्ला छल बल से राम शाहि को लेकर चला ॥५१॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंह रावन कहै ज्यों ज्यों राजाराम।
त्यों त्यों चालै रामही कठिन करम की काम ॥४०॥

वीरसिंह जितना ही राम राहि से रुकने के लिये कहता है उतना ही वह चलने को उद्यत होता है। कर्म की गति बड़ी ही कठिन है ॥४०॥

॥ चौपाई ॥

वीरसिंघ राजा हरि कीयौ। सबही कल सिर टीका दियौ ॥
विहट राउ भूपालहि दियौ। इन्द्रजीत गढ़ कौ प्रभु कियौ ॥४३॥

वीरसिंह को सभी ने राज तिलक देकर राजा बनाया। भूपालराव को विहट दिया और इन्द्रजीत को गढ़ का स्वामी बनाया ॥४३॥

बाध राउ परताप की दई। आनंद मति सबही की भई ॥
तिनकौं सौंपि देस पार करे। वीरसिंह हजरत पै चले ॥४४॥

प्रतापराउ को बाध दिया। सभी लोग उपरोक्त व्यवस्था से प्रसन्न हुए। सारा देश का भार इन लोगों को देकर वीरसिंह हजरत (बादशाह) के पास चले ॥४४॥

यह बिचारि छाड़ी सब धाम। लै आऊँ घर राजाराम ॥
देख्यौ राज जाइ कुरखेत। धरनी तल मैं धर्म निकेत ॥४५॥

यह विचार करके सारे काम छोड़ दिए कि मैं राजाराम को घर वापस लाऊँगा। कुरु क्षेत्र में जा कर राजा को देखा जो कि पृथ्वी पर में धर्म का घर था ॥४५॥

गज घोटक हाटक पट नये। हरषि हरषि बहु बिप्रनि दये ॥
मुक्ता अरु मुहरैं बहु लई। धरनी धर सबही धरवाई ॥४६।

बहुत से हाथी और घोड़े प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को दिये। मुक्ता और मोहरें भी दी गईं ॥४६॥

जानि गये जबही अति दूरि। जन पद उठी जोर की धूरि ॥
भारतसाहि संग लै आई। सोर उठायौ देवाराइ ॥४७॥

जनपद में बड़ी दूर पर धूल उठी। भारत शाहि सेना लेकर आया और उसने देवारइ में शोर मचा दिया ॥५७॥

पटहारी तिन लई सुभाउ। मारे जत्र घटा के गाउ॥
नगर ओड़छौं कंपन लग्यो। जन पद यों चल दल ज्यौं कप्यौ ॥५८॥

उसने बिना किसी परिश्रम के ही पटिहारी को जीत लिया। सारा ओड़छा नगर कांपने लगा और सेना बिजली की तरह कांपने होने लगी ॥५८॥

नगर नगर के लोग अपार। लगे मिलन लै लै उपहार॥
लयौं बगीना तेही काल। अपबल आनि राउ भूपाल ॥५६॥

नगर के अनेक लोग उपहार ले लेकर मिलने लगे। इसी समय भूपालराव सेना सहित आकर मिला ॥५६॥

रच्छक लोग से भच्छक भये। ठाकुर सबै एक है गये॥
निपट अनाथ आपनी जानि। वीरसिंह भुव प्रगटे आनि ॥६०॥

जितने रक्षक थे, वही भक्षण करने वाले हो गये और सारे ठाकुर मिलकर एक हो गये। नितान्त अनाथ जानकर इस पृथ्वी पर वीरसिंह प्रकट हुआ ॥६०॥

अकसमात प्रगट्यौ रनजीत। जैसैं वीर विक्रमाजीत॥
ऐसौं राखि लियो सब देश। ज्यौं नृसिंह प्रह्लाद सुरेश ॥६१॥

विक्रमाजीत की भाँति अकस्मात ही रन में जीत विजय प्राप्त हो गयी। जिस प्रकार से नृसिंह रूप ने प्रह्लाद की रक्षा कर ली थी, उसी प्रकार उसने देश की रक्षा किया ॥६१॥

इहि विधि करी दूरि तैं टारै। ज्यौं गज गहे देव सिर मौर॥
भारतसाहि समेत डराइ। घिरे लहचुरा देवाराइ ॥६२॥

इस प्रकार से सारी सेना को दूर से ही हटा दिया मानौं हाथी अपने सिर पर मौर रखे हुये हो। भारत साहि सहित वे सब बहुत अधिक डर गये। लहचुरा का देवाराइ भी बहुत बुरी तरह से घिर गया ॥६२॥

घेरत छूटि गयौ सत ऐन। मानौ कृष्ण राइ गहि दैन ॥६३॥
घिरते ही देवाराय का हाग सप छूट गया ॥६३॥

॥ दोहा ॥

कृपा राम कौं तिन दये भारतसाहि कुमार ॥
कृपाराम तिनकौं दयौ केवल धर्म दुवार ॥६४॥

उन्होंने कृपाराम को भारतसाहि को समर्पित कर दिया और कृपाराम ने उन्हें केवल धर्म दिया ॥६४॥

॥ चौपाई ॥

कृष्णराय कौ काट्यौ मुंड। जान दियौ कायर कौ झुंड ॥
पातसाहि पठयौ फरमान। दियौ ओड़छौ उत्तम थान ॥६५॥

कृष्णराय का सिर काट लिया और शेष कायरों के झुंड को जाने दिया। पातसाहि ने फरमान भेजा। ओड़छा में उत्तम स्थान प्रदान किया ॥६५॥

जहांगीर पुर तिहिं कौ नाउ। फेरि बसायौ सुखद सुभाउ ॥६६॥
अत्यधिक खुशी होकर उसे जहांगीर के नाम से फिर बसाया ॥६६॥

॥ दोहा ॥

राजा मधुकुरसाहि कौ जग मे जितनौ देस।
जहांगीर सब कौं करयौ बिरसिंघ देव नरेस ॥६७॥

राजा मधुकर शाहि का संसार में जितना देश है, उस सब को जहांगीर ने वीरसिंह को दिया ॥६७॥

॥ छप्पै ॥

फेरि बसायौ नगर नगर नागर नर नायक।
थपे पुरोहित मिश्र व्यास परिगह पटु पायक ॥६८॥

उस नर नायक ने फिर से नगर को बसाया। उस नगर स्थापना में पुरोहित, व्यास तथा अनेक पटु पायक लगे हुए थे ॥६८॥

केशव मन्त्री मित्र सभा मद सब सुख दायक।
फौजदार सिक्दार बधु सरदार सहायक ॥६६॥

केशव, मत्री, मित्र, सरदार, बधु सभी सुख को प्रदान करने वाले हैं। फौजदार, सिक्दार, सरदार आदि सभी सहायता के लिये प्रस्तुत रहते हैं ॥६६॥

बहुबन्दी मागध सूत गुनि गुनि दसो दिय साधि निति।
रैयत राउत राजहित चार्यो वरन विचारि चित ॥७०॥

अनेक बन्दी, मागध सूत आदि सभी दसों दिशाओं में उसके गुणों का गान किया करते हैं। राजा और प्रजा के हितार्थ चारो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के साथ उनके अनुरूप ही समुचित व्यवहार किया जाता है ॥७०॥

॥ देव उवाच ॥ दोहा ॥

दान लोभ तुम सब सुन्यौ दहू नृपति को भेव।
बीरसिंह अति देखि जैं नर देवनि को देव ॥७१॥

तुमने राजा के दान और लोभ दोनों को सुना है। लोगों को वीरसिंह को देखना चाहिये, जो कि देवता के रूप में है ॥७०॥

इति श्रीमन्सकल भू मण्डलाखण्डलेश्वर, महाराजाधिराज राजा श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ विन्ध्यवासिनी सम्वादे चतुर्दशमोः अध्याय ॥१४॥

दान उवाच

लीनी कहन कछू जब दान। ह्वै गई देवी अतरध्यान॥
दान लोभ तब दोऊ भले। देखन जहाँगीर पुर चले ॥ १ ॥

जब दानने लेने की बात कही तब देवी अन्तर्ध्यान हो गयी। दान और लोभ दोना ही जहागीर पुर को देखने के लिये चल पड़े ॥१॥

देखे पुर पट्टन गन ग्राम। कहाँ कहाँ लगि तिनिके नाम॥
देखे सर सरिता सुखदानि। वीर समुद्र देखियो आनि ॥ २ ॥

उन्होंने जहांगीर पुर में अनेक वस्तुयें देखीं, उनके नाम कहाँ तक गिनाऊँ। सुख देने वाले तालाबों और नदियों को देखा और लौटकर समुद्र को देखा ॥२॥

बीर बीर सागर को देखि। बरनन लागे बचन विसेखि ॥
अति अनद भूतल जल खड। अद्भुत अमल अगाध अखड ॥ ३ ॥

बीर सागर को देखकर उसका वर्णन करने लगे। पृथ्वी पर वह जल खण्ड अत्यधिक शुद्ध और आनद प्रद है ॥३॥

फूले फूलन को आवास। मानौ महित नक्षत्र अकास ॥
अनि सीतलता कैसो देस। ग्रीषम रितु पावत न प्रवेस ॥ ४ ॥

फल फूलों से आवास इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो आकाश नक्षत्र खिले हों। वहाँ पर सदैव शीतलता ही बनी रहती है। ग्रीष्म ऋतु का प्रवेश भी नहीं होने पाता है ॥४॥

सुभ सुगध ताके मौ ओक। मानहु सुन्दरता को लोक ॥
जग सतापनि को हरतार। मनहु चद्रिका कौ अवतार ॥ ५ ॥

सुदर सुगध का वह घर है। मानो वह सुदरता का ससार है। ससार की गर्मी को हरने के लिये चन्द्रिका ने वहाँपर अवतार लिया है ॥५॥

तंग तुरग घनानि को राजि। बरसत पवन बुंद जल साजि ॥
अरुन जोति दामिनि सचरै। जगत चित्त की चिंता हरै ॥ ६ ॥

रिमझिम रिमझिम पानी बरसता है। उसके बीच में चमकती हुई अरुणिम विद्युत लोगों की चिताओं को हर लेती है ॥६॥

नाचत नीलकंठ चहुं दिसा। बरखत बरसा वासर निसा ॥
फूले पुंडरीक चद्रभान। स्वेतराम-चद्रिका समान ॥ ७ ॥

चारों दिशाओं में नीलकण्ठ नृत्य करता रहता है और रात दिन वर्षा हुआ करती है। फुले हुए पुडरीक के पुष्प चन्द्रमा की श्वेत किरण की भांति सुदर लगते हैं ॥७॥

हमनीन सग सोहत हस। बमत सरद सर सोभित अस ॥
सीतल जल अति सीतल बात। सीतल होत छुवत ही गात ॥ ८ ॥

शरद ऋतु में हँस हँसिनियों के साथ शोभा देते हैं। वहाँ पर शीतल वायु है और शीतल ही जल है जिसे छूने मात्र से शरीर शीतल हो जाता है ॥८॥

ऊपर लसत हस सौ हस। सरद बसत सिसिर कौ अस ॥
चदन बदन कैसी धूरि। उडत पराग दसौ दिसि धूरि ॥ ६ ॥

उसके ऊपर हंस की भांति सुशोभित है, वह शरद, बसन्त एव शिशिर के अंश के समान है। दसों दिशाओं में इस प्रकार से धूल उड़ रही है मानो चदन का बदन उड रहा हो ॥६॥

करि करि सरवर मैं कुल केलि। फूले फूल फाग सी खेलि ॥
बसंत सरोवर मैं हेमत। मुदित होत सब सत ॥१०॥

सरोवर में केलि करके पुष्प फाग सा खेल कर बढे हुए हैं। सभी सन्तों ने सरोवर में स्नान कर बसन्त के मास की प्रसन्नता का अनुभव किया ॥१०॥

भ्रमर भँवर बग गज मैमत्त। पद्मिनी सोहै अति अनुरक्त ॥
बोलत कलहसी रसभरैं। जनु देवी देवति अनसुरै ॥११॥

बगुले, भ्रमर और हाथी मस्त होकर घूम रहे हैं। पद्मनी अनुरक्त सी सुशोभित है। कलहंसी रसयुक्त वाणी में बोल रहे हैं। मानो वे सभी देवों का अनुसरण कर रहे हैं ॥११॥

सोहत ममर समेत बसत। विरही जन कौं दुख अनत ॥
पाचौं रितु।मानहु मर बसैं। सिगरे ग्रीषम।रितु को हँसैं ॥१२॥

बसन्त अपने समर सहित सुशोभित है और विरही जनों को दुख दे रहा है। पाचों ऋतुयें मिलकर मानों ग्रीष्म ऋतु पर हँसी कर रही हों ॥१२॥

फूले सेत कमाल देखियें । सुन्दरता हिय से लेखियै ॥
फूले नील कमल जल थैन । मानु सुंदरता के नैन ॥१३॥

फूले हुए खेना की सुन्दरता का अनुभव हृदय से कीजिये । नीले फूले हुए कमल इस प्रकार से सुन्दर लग रहे हैं मानों सुन्दर नेत्र खिले हो ॥१३॥

कुल कल्हार सुगधित भनो । सुभ सुगधता के सुर मनो ॥
प्रफुलित सूर काकनद किये । मानहु अनुरागिनि के हिये ॥१४॥

पुष्पित कुल्हार इतने सुन्दर हैं मानो वे साक्षात् सुगन्ध के घर हों । प्रसन्न हाकर सूर्य ने कमल का खिला दिया है । ऐसा लगता है कि वह खिला हुआ कमल अनुरागी जनों का हृदय हो ॥१४॥

पीत कमल देखत सुख भयो । मनो रूप के रूपक रयौ ॥
राते नील कज कर हाट । तापर सोहत जनु सुरराट ॥१५॥

पीले कमल को देखकर बहुत सुख हुआ मानों वह पीला कमल सौंदर्य का रूपक हो । नील और लाल कमलों के दलों पर ऐसा लगता है कि मानो इन्द्र स्वय ही उन पर विराजमान हैं ॥१५॥

बैठे जुग आसन जुग रूप । सूर का सेवाकरि अनुरूप ॥
सोधि सोधि सब तत्र प्रसिद्ध । जल पर जयत मत्र सौसिद्ध ॥१६॥

खिले हुए कमलों के जोड़ों को देखने से ऐसा लगता है मानों वे सूर्य की सेवा में लगे हुए हैं । मानों अनेक प्रकार के तत्रों को पढ़कर वे जल पर अपनी विजय को सिद्ध कर रहे हों ॥१६॥

पातक हरन काय मन राज । राजसीय बस कीवे काज ॥१७॥

पापों को हरने के लिए उसने राजसी रूप बना रखा है ॥१७॥

सवैया

सुन्दर सेत सरोरुह मैं कर हाटक हाटक की दुति सोहै ।
तापर भौंर भलो मन रोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै ॥

देपि दई उपमा जल देविनि दीरघ देवनि के मन मोहै।
केसव केसवराई मनौ कमलासन के सिर ऊपर सोहै ॥१८॥

कमलों की हार में कान्ति फैली हुई है। उस पर मडराते हुए भ्रमर लोगों के मनों का अपनी ओर आकर्षित करते हैं और नेत्रों को अच्छे लगते हैं। उसे देखकर जलदेवियों ने उपमा दी कि मानों स्वय विष्णु कमलासन के ऊपर सुशोभित हो रहे हैं ॥१८॥

दोहा

सोषन बधन मथन भय लै जनु मन मन सोचि।
बीरसिंह सरवर बस्यौ सिंधु सरीर सकोचि ॥ १६ ॥

शोषण, बन्धन और मथन के सकोच से समुद्र स्वय बीरसिंह के सरोवर में निवास करने लगा ॥१६॥

चौपाई

मगर मच्छ बहु कच्छप बसे। सारस हस सरोवर लसैं ॥
चचरीक बहु चक्र चकोर। बहु सुरभि मृगगन चितचोर ॥२०॥

अनेक मगर मच्छ, कछुए, हस आदि उसमें निवास करते हैं। चचरीक और चकोर उसम आवास करते हैं। कहीं-कहीं पर घूमते हुये मृगों की सुरभि चित्त को चुरा लेती है ॥२०॥

कहू गयद कलोलनि करैं। करि कलभनि के मन हरैं ॥
कहु सुंदरि सुंदर जल भरैं। कहुं महा मुनि मौननि धरैं ॥२१॥

कहीं कहीं पर कलोल करते हुए गयद हाथी के बच्चों के मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। कहीं कहीं पर मुनियों के गण उसमें मौन धारण करते हैं ॥२१॥

दोहा

बीरसिंह नर देव की सेवा करौ सभाग।
बाढैंहो नपति बढै देपहु भूमि तडाग ॥२२॥

वीरसिंह देव की सेवा कीजिये। तालाब को देखकर इसका अनुमान कर सकते हो कि किस प्रकार से बढ़ने पर सम्पत्ति बढ़ने लगती है अर्थात् पैसे के पैसा पास आता है ॥२२॥

कवित्त

जबुक जमाति कोल कामिनी विभाति जहां,
करि कुल काम केलि प्रीति किलकति है।
जहाँ आक कनक कमल कुवलय,
तहाँ गीधनि के थल हस हसिनी लसति है॥
जहा भूत जामिनी समेत तहा केसोदास,
देवनि सौ देवी जलकेलि विलसति है।
देषि वीर सागर कौ नागर कहत,
सपति वीरेस जू कैं बांधेही बढति है॥२३॥

जहां पर किसी समय सुअर शृगाल थे वहा पर इस समय हाथियों के समूह से काम केलि करते है। जो आक कनक कमल गीधों आदि का स्थल था वहा पर इस समय हस हसनिया विराजमान है। जहा पर भूत भूतनिया निवास करते थे वहा पर देव देवनियों के साथ इस समय विलास कर रहे हैं। वीरसिंह के सागर को देखकर चतुर लोग कहते हैं कि वीरसिंह की सपत्ति बाधने के पश्चात् भी बढ़ती है ॥२३॥

चौपाई

चले तहां तैं अति सुख पाइ। नदी वैतवै देषी आइ।
देखि दडवत करे अपार। कलि गगा कीनी करतार ॥२४॥

वहा से अत्यधिक सुखी होकर बेतवा नदी के किनारे पर आये। उसे देखकर प्रणाम किया। बेतवा नदी को देखने पर ऐसा लगा कि मानो भगवान ने उसे कलियुग की गगा बनाया है ॥२४॥

कबहू पूरब उत्तर वहै। सरिता स्वामिनि मन जग कहै॥
तुंग तरंग प्रताप प्रचड। भनौ षगा षडन पापड ॥२५॥

कभी कभी पूर्व उत्तर में प्रवाहित होती है। सारा संसार उसे सभी सरिताओं का स्वामिनी कहते हैं। उनकी ऊँची ऊँची तरंगे मानो पाखंडों का खण्डन करने वाली हैं ॥२५॥

गर्जति तर्जति पाप कपाता। बात करति जनु पातक दाता॥
सुवरन हर सुवरन हर रचै। पर त्रिया पर त्रिया प्रिय सचै ॥२६॥

पापों का विनाश करके वह गर्जना तर्जना करती है। बात करती है मानो पटक रही हो। दूसरे के वर्ण का विनाश करके अपने अनुकूल बना लेती है। दूसरी स्त्रियों को भी वह प्रिय लगती है ॥२६॥

सुरापी सुरापी सुर पग धरै। ब्रह्म ब्रह्म दोषनि कौ करै॥
तपसी लायैं नगनि न तजै। अपु सप्रगति अगतिनि भजै ॥२७॥

सुरापी धीरे धीरे पग रखता है। अनेक ब्रह्म दोषों को वह करती है। तपसी के होने पर भी अपने नगेपन को नहीं छोड़ते हैं, किन्तु स्वयं दूसरों की अगति का भजन करती है ॥२७॥

दिगवार अम्बर उर धरै। यति प्रताप पन्थी मन हरै॥
जीवनि हारिन के मन हरै। विप मय अमृत पान फल करै ॥२८॥

दिगवार अम्बर को हृदय में धारण करता है। साधुओं, प्रतापी राजाओं तथा पथियों के मनों को अपनी ओर आकर्षित करती है। जीवन को नष्ट करने वाली वस्तुओं के मन को भी अपनी ओर आकर्षित करती है। विषय तुल्य वस्तुओं का भी अमृत के सदृश पान करती है ॥२८॥

जद्यपि नेह दशा कैं हीन। प्रगट प्रचंड पवन सौ लीन॥
वीरसिंह कुल दीपक जोति। जाके जल अबदूनी होति ॥२९॥

यद्यपि वह स्नेह अवस्थाओं से बिल्कुल दूर है, क्योंकि प्रचंड वायु में वह सदैव ही लीन रहती है। फिर भी वीरसिंह के वंश का दीपक उसके जल से द्विगुणित प्रकाशित होता है ॥२९॥

कबहुँ कै सूरज कैसी लगै। सीर रत्न चर्चित जग मगै॥
कबहुँ कै जमुना जसमाल। सोभित सग गोकुल गोपाल ॥३०॥

कभी कभी उसकी दीप्ति सूर्य की भांति लगती है। अनेक हीर रत्नों से जटित, वह जगमगा रही थी। उसके गले में कभी यमुना यशमाला के रूप में शोभा देती है और कभी उसके साथ में गोकुल के गोपाल शोभित होते हैं ॥३०॥

सिंधुर लसत सिंधु सी लेपि। गडक मनी मिलामय देपि ॥
सोभित सोभा जाऊ छियें। तुगारंन्य तिलक सौं दियें ॥
मझ २ सूर दुति सी लेखियें। भरत षड द्विज सी देखियें ॥३१॥

शिलायुक्त गडक सिंदूर की भांति शोभित है। जिसके छूने मात्र से ही शोभा शोभित होती है। तुगारण्य तिलक सा दिये हुये है।

मझ की कांति सी दिखाई पड़ती है। भारतखण्ड में वह द्विज की भांति शोभित थी। ॥३१॥

सवैया

औंडछै तीर तरङ्गिनि वैत वै ताहि तरै रिपु केसव को है।
अर्जुन बाहु प्रवाद प्रबोधि तरे वाज्यौ राजनि की मति मोहै॥
जोति जगै जमुना सी लजै जगलोचन लोलित पाप वियो है।
सूर सुता सुभ संगम तुग तरङ्ग तरगित गंगा सी सोहै ॥३२॥

ओड़छा के किनारे बेतवा नदी है, उसे पार करने का साहस किस शत्रु में है। अर्जुन का प्रबोध करने वाली तथा राजाओं की मति को आकर्षित करने वाली है। उसकी ज्योति यमुना की भांति लज्जित हो जाती है और ससार के पापों को नष्ट कर दिया है। यमुना और बेतवा का सगम उसी प्रकार शोभा देता है जिस प्रकार गगा और यमुना का सगम शोभा देता है ॥३२॥

चौपाई

स्नान करत द्विन दर्पन देय। पूरति दान देत नर देव ॥३३॥

उसमें सभी ब्राह्मण स्नान करते हैं। सभी मनुष्य पूर्ण दान देते हैं ॥३३॥

दोहा।

बारन बाजी नारि नर जहँ-तहँ पालनि पेलि।
दुहूँ कूल अनुकूल के करत देखियत केलि ॥२४॥

बारन, घोड़े, स्त्रियां, मनुष्य सभी दोनों किनारों पर बिना किसी वैमनस्य के केलि करते हैं ॥२४॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री राजवीरसिंघ-देवचरित्रे दानलोभ संवादे ब्रह्मसागर वेत्रवती वर्नन नाम पञ्चदशमः प्रकाशः ॥२४॥

अथ नगरी बर्णन ॥ चौपाई ॥

नगरी की दुति दूरितें देखा दान प्रवीन।
मनहु दूसरी द्वारिका सरि समुद्र के तीर ॥ २ ॥

दान ने नगरी का ऐश्वर्य दूर से ही देखा। मानो दूसरी द्वारिकापुरी की समानता करने वाली नगरी समुद्र के किनारे बसी हुई है ॥२॥

नीचे की चौपाइयों में पताकाओं की विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

चौपाई

प्रति मंदिरन पताका लसैं। अति ऊँची आकासहि प्रसैं।
बरन बरन अद्‌भुतकारिनी। तपसी लाट दंड धारिनी ॥ ३ ॥

प्रत्येक मंदिर के ऊपर पताकायें शोभित हैं जो कि आकाश मण्डल को ग्रस रही हैं। अनेक प्रकार के रंगों को उत्पन्न करने वाली हैं अथवा साधुओं के धारण करने का ऊँचा दण्ड है ॥३॥

भवन सलाक निचल गामिनी। मानहु उरझि रही दामिनी।
सोभा सिंधु तरंगैं मनौ। द्रोनाचल औषधि सी मनौ ॥ ४ ॥

पताका की सलाक भवन के नीचे तक गई है। यह सलाक ऐसी सुन्दर लगती है मानों विद्युत उलझ गई हो। लहराती हुई पताकायें

सागर की तरगों की भांति सुशोभित हो रही हैं पताकायें द्रोनाचल पर्वत की औषधि की भाँति भी प्रतीत हो रहीं हैं ॥४॥

नगर निगर नागर वहु वसै। तिनकी धर्म सिद्धि सी लसै ॥
कैधौं धर्म वृद्धि लेखियैं। प्रति घर देवी सी देखियैं ॥ ५ ॥

नगर में अनेक बसे हुए नागरिकों की मानो धर्म सिद्धि का स्पष्ट करने वाली वे पताकायें हैं ॥ या वे पताकायें धर्म वृद्धि को दिखा रही हैं। वे प्रत्येक घर में देवी के समान दिखा रही हैं ॥५॥

गृहगन दोष हरति हित भरी। पुर रक्षा निधि सी विधि करी ॥
किधों भवन दीपति सी लगै। नव रस माह मास जगमगै ॥ ६ ॥

हित से युक्त वे अनेक ग्रह का विनाश करती हैं और अनेक प्रकार से ग्राम की रक्षा करती हैं। भवनों में वे कान्ति युक्त होकर चमक रही हैं। उनके देखने से नवों रसों की जाग्रत हृदय में होने लगती है ॥६॥

परम प्रताप ज्वलनिकी ज्वाल। प्रगटई वहु वेष विसाल ॥७॥

तेज युक्त अग्नि की ज्वाला अनेक वेषों में प्रकट हुई है ॥७॥

दोहा

जीति कीरति की लई सत्रुन की वहु भाँति।
पुर पर बाँधी सोभिजै मानों तीनि की पाँति ॥८॥

शत्रुओं की कीर्ति को अनेक प्रकार से जीत लिया है। ग्राम में बँधी हुई मानों तान की पँक्ति सुशोभित हो रही हो ॥८॥

नीचे की चौपाइयों में हाथियों का वर्णन है।

चौपाई

चहुँ ओर वहु कोटि सुवेस। सुखद सूर कैसी परवेस ॥
वीर प्रताप ज्वलनि को ज्वाल। राजानि जनुचहुँ ओर विसाल ॥ ६ ॥

चारों ओर अनेक वेषों को धारण किए हुए हैं। सूर्य की भांति उनका वेष अत्यधिक सुख देने वाला है। सभी ओर वीर राजाओं का प्रताप फैला हुआ है ॥६॥

बाहिर कोटि मत्त गज बसै । जहँ तहँ मानो घना घन लसै ॥
करिनी कलभनि लै एकत्र । मनो विंध्य की पुत्र कलित्र ॥ १० ॥
बाहर अनेक हाथी सुशोभित हैं । मानो जहाँ तहाँ बादल शोभित हों । हथिनी अपने बच्चे को लेकर एक स्थान पर इस प्रकार लग रही है मानो विंध्य का पुत्र कलित्र हो ॥१०॥

बीच बीच दीरघ मातंग । नखसिख चंदन चर्चित अंग ॥
जनुमंदर के सिर बिसाल । दिग्गज बल जे मंथन काल ॥११॥
बीच बीच में बड़े बड़े मस्त हाथी हैं जिनके नख शिख चंदन से चर्चित हैं । मन्दिरों की चोटी की भाँति वे बड़े हैं । ये हाथी बड़े ही शक्तिशाली हैं ॥११॥

दिग दंतिन के मनों कुमार । दिगपालनि दीनै उपहार ॥
चंदन चंदन सूंडनि भरे । कहुँ सिंदूर धूरि धूसरे ॥ १२ ॥
दिशाओं के हाथियों के मानो वे कुमार हैं, जिन्हें दिग्पालों ने उपहार स्वरूप दिया है । सूंडों में कहीं तो चन्दन लगा हुआ है और कहीं सिंदूर और कहीं धूल लगी हुई है ॥१२॥

बीर रुद्र रस मनहुँ अनंत । डोलत भूतल मूरतिवन्त ॥
दीरघ दरवाजे लेखिये । अष्ट दिसा मुख से देखिये ॥१३॥
मानो रुद्र देव स्वयं वीर रस का रूप धारण किए हुए पृथ्वी पर घूम रहे हैं । बड़े बड़े दरवाजे हैं जो कि अष्ट दिशा के मुख की भांति दिखाई देते हैं ॥१३॥

जितने हैं जा दिसी के देस । तिनके जन तहँ करत प्रवेस ॥१४॥
जितने भी देश हैं, उन सभी के रहने वाले वहाँ पर आया करते हैं ॥१४॥

दोहा

आठो दिसि के सील गुन भाषा वेष विचार ।
बाहन बसन विलोकि जै केसव एकहि बार ॥ १५ ॥

आठों दिशाओं का शील गुण भाषा, वेष, विचार, सवारी, वस्त्र आदि सब एक ही स्थान पर देखने को मिल जाता है ॥१४॥

नीचे की चौपाइयों में कोटों का वर्णन है।

चौपाई

रचे कोट पर जहँ तहँ जँत्र। सोधि सोधि दिन पढ़ि पढ़ि मन्त्र॥
विविध हथ्यारन की कोठरी। दारु गोलन की ओबरी॥ १६॥

अनेक कोटा पर जहाँ तहाँ मन्त्रों का उच्चारण करके तथा उन्हें शोध करके जन्त्रों की रचना की गई है। अस्त्रों को रखने की अनेक कोठरियाँ हैं। बारूद और गोलों को रखने के लिये ओखलियाँ हैं ॥१६॥

दोहा

कलभनि लीनै कोट पर खेलत सिसु चहुँ ओर॥
अमल कमल पर पर मनो चचरीक चित चोर ॥१७॥

कोटों पर हाथी के बच्चों को लिए हुए अनेक शिशु क्रीड़ा करते हैं। मानो स्वच्छ मान के ऊपर वे कमल भ्रमर की भाँति चित्त को हरने वाले हैं ॥१७॥

चौपाई

येक गुनी गुन गावत भले। येक विदा ह्वै घर को चले॥

सभी गुणी जन गुणों का वर्णन करते हैं। एक गायक जाता है और उसके स्थान पर दो आ जाते हैं ॥१८॥

दंडक

भुमिया भूपाल राउ सामय जन समीप,
गुनी रावने सुख मढ़ि मढ़ि।
केसादास नगर निवास सोहैं आस पास,
अपने अपने सुमग लागे जस पढ़ि पढ़ि ॥
राजा चोर सिद्ध सब दानैं दि विदा कै हेम,
हय हाथी दै दै लै लै मोल बढ़ि बाढ़ि।
मानहु चतुर्भुज के पाई दीप चले दिगपाल से,
दिगतर कौं दिगगजन चढ़ि चढ़ि ॥१६॥

भूपाल राव अनेक गुणी लोगों को सुख पूर्वक अपने पास रख छोड़ा है। सभी यश का पाठ करते हुए नगर में निवास करते हैं। वीरसिंह ने सभी को हाथी, घोड़ा, का दाम सोना दे दे कर विदा कर दिया। जिस प्रकार दिगपाल चतुर्भुज को देखकर अपने हाथियों पर बैठ कर चलते हैं, उसी प्रकार वे लोग वहाँ से चले ॥१९॥

नीचे की चौपाइयों में सेना का वर्णन है।

चौपाई

आठचमू चतुरगणि भरी। आठहु द्वार देखिये खरी ॥
चारि चारि घटिका परमान। घर ह जाँई जब आवै आन ॥२०॥

चतुरगणी (पैदल, हाथी घोड़ा, ऊँट) आठ सेनायें आठों द्वारों पर सदैव खड़ी रहती हैं। एक सेना को चार घड़ी वहा पर रहना होता है। जब उनकी ड्यूटी समाप्त हो जाती है तब वे अपने घरों को चली जाती हैं ॥२०॥

इहि विधि निसि वासर सविलाप। सोहत द्वार बारहू मास ॥
दरवाजे भितर जब भये। दरवानि नै पाछे छनिछये ॥२१॥

इस प्रकार से रात दिन बारहों मास सेनायें द्वारों पर खड़ी रहती हैं। दरवाजों के अन्दर घुसने पर द्वारपाल मिलेंगे ।२१॥

ग्रामवासियों के घरों का वर्णन है।

देपी दीह अटारी अटा। वरन वरन छतरनि की छटा ॥
उज्जल वीथी विसद समान। रहित रजोगुन जीव निधान ॥२२॥

अनेक बड़ी बड़ी अटारियाँ हैं। उन पर अनेक रङ्ग की छतरियों की छटा है। स्वच्छ, उज्ज्वल मार्ग हैं। रजो गुण से दूर सभी प्राणी वहाँ पर निवास करते हैं ॥२२

दस दिसि देखिये दीप विसाल। प्रति दिन नूतन वदन माल ॥
घर घर बहु विधि मगल चार। बाजत दुंदुभि मुरज अपार ॥२३॥

दसों दिशाओं में बड़े बड़े दीपक हैं और नित्य ही नई वन्दनवार रहती है हर घर मुरज और दुन्दुभी को बजा कर मङ्गलाचार मनाया करता है ॥२३॥

गावत गीत सरस सुन्दरी । चतुर चारु सो सुफरक फरी ॥
सुन्दर दोऊ देव कुमार । गये चतुर्भुज के दरबार ॥२४॥

सभी सुन्दरियां सरस गीतों को गाती हैं । वे सुन्दरियां चतुर और सुन्दर हैं । चतुर्भुज के दरबार में दोनों सुंदर कुमार गये ॥२४॥

महाराज चतुर्भुज के दरबार का वर्णन है ।

देषे जाइ चतुर्भुज देव । जिनकी करत जगत सब सेव ॥
चँदन चर्चित येक प्रवीन । सोभत तहं बजावत बीन ॥२५॥

चतुर्भुज देव को जाकर देखा जिनकी सारा संसार सेवा करता है । कोई चन्दन को लगाये हुए वहां पर सुशोभित है और कोई बीन को बजा रहा है ॥२५॥

जिनकी धुनि सुनि मोहि सभा । मानौ नारद पावत प्रभा ॥
पढ़त पुरान एक बहु भेद । मानौ सोभित श्री सुकदेव ॥२६॥

उस बीन की ध्वनि को सुनकर सारी सभा मोहित हो जाती है । ऐसा लगता है कि नारद की प्रभा हो । पुरान का पाठ अनेक प्रकार से ने वाला सुकदेव की भांति सुशोभित हो रहा है ॥२६॥

बेद पढ़त बहु विप्र कुमार । मानौ सोभत सनत कुमार ॥
सेवत सन्यासी तजि आधि । मानौ धरैं बहु सिधि समाधि ॥२७॥

अनेक ब्राह्मणों के बालक वेदों का पाठ कर रहे हैं । वे सभी सनत कुमार की भांति लग रहे हैं । अनेक सन्यासी आधियों को छोड़कर *इस प्रकार तपस्या में लगे हुए हों मानो सिद्धियों ने समाधि लगा* ली हो ॥२७॥

पंडित करत विचार अनंत । षट दरसन जे मूरति वंत ॥
गावत बजावत नाचत येक । जनु किन्नर गंधर्व अनेक ॥२८॥

पंडितगण छः दर्शनों पर विचार करते हैं। कुछ लोग गाते बजाते हैं मानों गन्धर्व और किन्नर लोग नृत्य कर रहे हों ॥२८॥

तहां दिगम्बर नर देखियें। महादेव जू से लेखियें॥
तिह अगन अगना अपार। भूषन पर पूरन सिंगार॥२६॥

वहाँ पर महादेव के समान अनेक मनुष्य दिगम्बर रूप में भी मिलेंगे। उसी स्थान पर शृङ्गार सम्बन्धी अनेक आभूषण भी उपलब्ध होंगे ॥२६॥

छमा दया सी मूरति वत। श्री ह्री सी समुझत सत॥
सोभति अति सुन्दर सुभमदा। मख चक्र कर पङ्कज गदा॥३०॥

क्षमा दया के समान वहा पर मूर्तिवत है, जिसे सभी सत लक्ष्मी के तुल्य ही समझते हैं। हाथ म कमल, गदा, शख तथा चक्र को लिए शुभ सदा शोभित है ॥३०॥

पद ऊपरै स्याम तल लाल। बरनत मेसव बुद्धि विकराल॥
मानौं गिरा जमुना जल आयो। सेवत चतुर चरण चितलाई॥३१॥

उसका चरण ऊपर श्याम वर्ण का है और नीचे का जो तल भाग है वह लाल है। उनकी शोभा इस प्रकार से लग रही है मानो सरस्वती और यमुना दोनों आकर मिल गयी हों। उसके चरणों की सेवा चित्त लगाकर चतुर लोग कर रहे हैं ॥३१॥

हिरा मणिमय नूपुर आयी। स्वेत पाट पर जटे सुभाई॥
नख द्युति चमकति चरण मुकुर। गंगा जल कैसे जल बुंद॥३२॥

मणि युक्त नूपुरों को धारण किए हुए उसने वहा पर प्रवेश किया। उसने अपने श्वेत वस्त्रों पर सुन्दर जड़ाई का काम कर रखा है। उसके चरणों के नख इस तरह चमक रहे हैं मानों गङ्गा जल की बूँदे चमक रही हों ॥३२॥

गज मोतिन की माला लसै। साधुन के मन उर बसै॥
कठ माल मुकुतनि की चारु। श्रुति बरनन कैसी परिवारु॥३३॥

गजमोतियों की माला जो कि उसके गले में पड़ी हुई है वह साधुओं के मनको अपनी ओर आकर्षित कर रही है। गले में सुन्दर मुक्ताओं की माला है। कानों की शोभा का वर्णन ही नहीं किया जा सकता है ॥३३॥

भृगु लगहु सोभा को सदन। श्री कमला कर केसो पदन।
कटितट छुद्र घटिका बनी। बीच बीच मोतिन की दुति घनी ॥३४॥

कमला के हाथ में जिस प्रकार से कमल शोभा देता है उसी प्रकार भृगु शोभा का घर है। बीच बीच कमर की कर्धनी की छोटी छोटी घंटियां बजती हैं। उस कर्धनी के बीच बीच मोतियों की सुंदर कांति है ॥३४॥

चंदन तिलक स्वेत सिर पाग। मुक्ता श्रुति सोभित सुभाग॥
देखत होइ सुद्ध मन छुद्र। निकसे मथि जनु छीर समुद्र ॥३५॥

चन्दन और तिलक लगाये हुए हैं और शिर पर सफेद पगड़ी धारण किये हुये हैं। कानों में मुक्ता सुशोभित हैं। उसको देखने से उसी प्रकार मन शुद्ध हो जाता है जिस प्रकार से समुद्र मन्थन से निकले ही विष्णु को देखने के बाद मन पवित्र हो जाता था ॥३५॥

सीस छत्र मरकट मय दंड। मानों कमल सनाल अखंड ॥३६॥

शिर पर छत्र शोभा देता है और हाथ में दण्ड है जो कमल की सनाल की भांति लगता है ॥३६॥

दोहा।

बरनै कहा चतुर्भुजहिं केसव बुद्धि तुसार।
जिनकी सोभा सोभिजैं सोभा सब ससार ॥३७॥

केशव अपनी बुद्धि अनुसार चतुर्भुज का वर्णन करते हैं, जिनकी शोभा से ही सारा संसार शोभित है ॥३७॥

॥ चौपाई ॥

करि प्रणाम तब राज कुमार। देखत नगर गये बाजार ॥३८॥
राजकुमार प्रणाम करके नगर को देखने के लिए गये ॥३८॥

इति श्रीमतसकल भूमण्डालाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंघ देव चरित्रे श्री चतुर्भुज दर्शन नाम पोडसो प्रभास. ॥१६॥

बैठक तथा नगर का वर्णन नीचे की चौपाईयों में है।

अति लामी अति चौरी चारु। निसद बैठकी उंच विचारु ॥
दुपद चतुप्पद जन बहु भाँति। भाजन भोजन भूख न जाति ॥१॥

वह अत्यधिक लम्बा और चौड़ा था। बैठक स्वच्छ थी जो कि उच्च विचारों को पैदा करती थी। उसमें अनेक दुपद चतुपद लोग थे। बहुत प्रकार की भोजन सामग्री, वस्त्र तथा आभूषण थे ॥ १ ॥

बासन वासन आसन जानि। मूल फूल फल नव रस पानि ॥
आयुध सुखद सुगंध विधान। चित्र विचित्र विविध तन त्रान ॥२॥

वस्त्र और आभूषण के अतिरिक्त नवरसों से युक्त फल फूल थे। आयुध सुख देने वाले तथा सुगंधित थे। अनेक प्रकार के चित्रों से कवच चित्रित थे ॥ २ ॥

धातु धार मय सन कर्पास। रोम चर्म मय पाट विसाल ॥
निधि मय जनु भय कुबेर की धरा। चिंतामनि कैसी कदरा ॥३॥

कर्पास युक्त धातु धार है। रोम चर्म युक्त विशाल पाट है। कुबेर की निधि की भांति उसके पास धन संचित है। चिंतामनि के समान कदरा है ॥ ३ ॥

मड़ई बहु मडित चहुँ पास । देखन लागौ नगर निवास ॥
राजा लोहन के चहुँ ओर । विप्र सोम सोभै चित चोर ॥४॥

अनेक छोटी छोटी मडई चारों ओर पड़ी हुई हैं । कुमार नगर को देखने लगा । राजाओं के चारों ओर सुशोभित होने वाले ब्राह्मण मन को चुराते हैं ॥ ४ ॥

पूर्वादिक के विधि व्यौहार । चौहू दिसि चारयौ दरबार ॥
राजै स्वेतसिंह दरबार । देखि देखि गज भजहि अपार ॥५॥

व्यवहार की रीति चारों दिशाओं के चारों दरबारों में पहले का है । स्वेतसिंह दरबार में विराजमान है जिसे देखकर सभी हाथी भागते हैं ॥५॥

एकनि रुचिर बरन गजराज । सुनि सुनि होति दिग्गजनि लाज ॥
एकनि बाजी परम उदार । एक व्रषभ नदी आकार ॥६॥

एक ही रङ्ग के अनेक हाथी हैं, जिनके सौंदर्य को सुनकर दिग्गज तक लज्जित हो जाते हैं । घोड़े बड़े ही उदारवृत्ति के हैं । बैलों का आकार नन्दी बैल की भाँति है ॥ ६ ॥

इक दरबार मुहल्ला दाग । दूजै दान देत वर भाग ॥
तीजै नगर न्याउ देखिये । चौथे चिर दफ्तर लेखिये ॥७॥

दरबार का एक मुहल्ला दाग दूसरे श्रेष्ठ दान देता है तीसरे नगर का न्याय और चौथे दफ्तर देखने योग्य हैं ॥७॥

भीतर पाँच चौक तिहिं चारु । तिनकी बरनि कहौ बिस्तारु ॥
एक चौक मैं सोभन सभा । दूजै नृत्य गीत की प्रभा ॥८॥

अन्दर सुन्दर पाच चौक हैं । उनका विस्तार से वर्णन करता हूँ । एक चौक में सभा बैठती है दूसरे में नृत्य गान होता है ॥ ८ ॥

तीजै भोज करै परिवार । चौथे सेन सुमंत्र विचार ॥
मध्य चौक सुन्दरि सुख करै । नर नारी परनै सचरै ॥९॥

तीसरे में सम्पूर्ण परिवार का भोजन और चौथी चौक में सुमित्रसेन विचार करता है। मध्य चौक अत्यधिक सुन्दर और सुखदायी है। वह मनुष्यों में धवन का सचार करती है ॥ ६ ॥

सात खड अगन सन दारि। उपर दानि दिव्य पड विचारि ॥
खड चतुर्दस चतुरनि करै। चौदह भुवन भाव रस भरै ॥१०॥

सात खण्डो मे ससार विचार करत हैं। ऊपर के भाग के सम्बन्ध में अनेक प्रकार से विचार करते हैं, किन्तु चतुर लोग चौदह खण्डो मे विचार करते हैं। चौदहों भुवन अनेक भाव रसों से परिपूर्ण हैं ॥१०॥

जाके जे गुन रूप विचित्र। तहँ तहँ ताके चित्रै चित्र ॥
इह विधि पांचे चौक प्रकास। सोभित मानो ऊँच अवास ॥११॥

जिसके जो विचित्र गुण हैं, उन सभी के विचित्र प्रकार के गुणों के अनुरूप ही चित्र खोचे गये हैं। इस प्रकार से पाचों चौक सुशोभित हैं। वह इतने सुन्दर हैं कि मानो स्वर्गपुरी का आवास हो ॥११॥

चारि चौक बरनै सुविलास। मध्य चौक अति सेत प्रकास ॥
पीत सदन पर छतरी सेत। हाटक मुकुट सीस सुख देत ॥१२॥

चोर चौक विलासपूर्ण हैं और मध्य चौक श्वेत रङ्ग की है। पीत सदन पर सफेद छतरी है और उसके शिर पर साने का मुकुट सुख देने वाला है ॥१२॥

देखत मोहत सकल सुजान। जनु सुमेरु पर देव विमान ॥
सोभित अमित अरुन आगार। तापर छतुरी स्याम विचार ॥१३॥

उसे देखते ही सभी लोग मोहित हो जाते हैं। उसे देखने से ऐसा लगता है माना सुमेरु पर्वत पर देवों का विमान सुशोभित हो। उसका लाल वर्ण है, जिस पर श्याम वर्ण की छतुरी सुशोभित हो रही है ॥१३॥

देखि मगहत राजा रक। सोभित सजत सूर्य के अक।
नील सदन भाभति बहु भाँति। निकट स्वेत छतुरी की पाँति ॥
जनु बरसा हरपै उड़ि चलि। कहि केसव सोभहि सावली ॥१४॥

नीले रङ्ग का चौक अनेक प्रकार से सुशोभित है, जिसके निकट सफेद छतुरियों की पंक्ति लग रही है। ऐसा लगता है कि वर्षा हर्षित होकर उड़ी चली जा रही है (चौक का नील रङ्ग बादलों की ओर सकेत करता है और सफेद छतुरी पानी की ओर)! यह शोभा अत्यधिक सुन्दर है ॥१४॥

छतुरी स्यामल सुमिल समान। स्वेत महल पर रचै सुजान ॥
उपमा कवि कुल कहत निसक। मानहुँ सोम समेत कलक ॥१५॥

स्वेत महल पर श्यामल छतुरियाँ सुशोभित हैं, उसके सम्बन्ध में कवि निर्भय होकर उपमा देते हैं। यह ऐसा लगता है मानों चन्द्रमा अपने कलङ्क समेत वहा पर है ॥१५॥

लाल महल पर छतुरी स्याम। सोभत जनु अनुराग सकाम ॥
तिन पर नील परेवा बनै। कमल कुलनि पर जनु अलि बनै ॥१६॥

लाल महल के ऊपर श्याम वर्ण की छतुरी है। उसे देखने से ऐसा लगता है कि सकाम अनुराग ही वहा पर विराजमान है। उसके ऊपर नीले परेवा बने हुये हैं, मानों कमलों पर भ्रमर हों ॥१६॥

बहु रंग महल मडली बनी। मदिर मांझ स्वेत द्युति घनी ॥
अमल कमल मै मनहु समूल फूल्यो पुंडरीक कौ फूल ॥१७॥

अनेक रङ्ग की महल मडली बनी हुई है। मन्दिर में श्वेत कांति विराजमान है। पुंडरीक का पुष्प कमलों के बीच में खिला हुआ है ॥ ७॥

जब जब नगर बिलोकन काज। तब बैठत राजा गज ॥
पीत महल पर लसत अनत। मनौ मेरु जगमगत जयत ॥१८॥

समय समय पर नगर को देखने के लिये राजा और उसके सहयोगी वहा पर बैठते हैं। पीले महल पर अधिक शोभा देते हैं। मानों सुमेरु पर्वत पर जयत शोभित हो ॥१८॥

लाल सदन पर लसत सुजानु। मानो उदयाचल पर भानु ॥
स्वेत चरण पर राजत राज। ज्यों कैलास पच्छि सिरताज ॥१९॥

लाल महल पर सुजान लोग इस प्रकार सुशोभित होते हैं मानों उदयाचल पर भानु ही उदित हो गया हो। श्वेत चरणों पर राजा उसी प्रकार सुशोभित है जिस प्रकार कैलास पर्वत पर पच्छियों का सिरताज सुशोभित होता ॥१९॥

स्याम बरण मोहैं नरनाथ। मनौ नीलगिरि पर जगनाथ ॥२०॥

श्याम वर्ण पैं नरनाथ ऐसे सुशोभित ह मानो नीलगिरि पर जगनाथ सुशोभित हों ॥२०॥

दोहा

जब जब सदननि पर चढ़ै वीर सिंह नृपनन्द।
देखि द्वैज के चद ज्यौं होत नगर आनन्द ॥२१॥

जब जब वीरसिंह का पुत्र सदनों पर चढ़ता है तब तब नगर द्वितीया के चन्द्रमा को देखने के समान आनन्दित होता है ॥२१॥

खड खड किंकिन अति बनी। छाजनि हैं छबि छूटति घनी ॥
प्रगटित होति बल्लभनि प्रभा। मोहित देखि देव बल्लभा ॥२२॥

खण्ड खण्ड की अनेक किंकिनी बनी हुई हैं। छज्जों का सौंदर्य अनुपम है। स्त्रियों की कांति चारों ओर फैली हुई, जिसे देखकर देवों की स्त्रिया भी मोहित हो जाती हैं ॥२२॥

झर्झरिनि झलक झरोखनि लसैं। सूर सोम प्रति बिंबत प्रसैं ॥
ऊपर तें अन्तर कमनीय। जहा रमति रामा रमनीय ॥२३॥

चन्द्रमा और सूर्य का किरणें झझरियों और झरोखों पर पड़ती हुई शोभा उत्पन्न करती हैं। ऊपर और अन्दर दोनों से वह सुन्दर है। वहा पर रमणीय स्त्रिया आनन्द करती है ॥२३॥

भवन देखि हयमाला गये। देखि देखि हिय हरषित भये ॥
अति दीरघ अति चौरी चारु। उज्वलि सोभा कैसो सारु ॥२४॥

भवन को देखकर हयशाला की ओर गये जिसे देखकर हृदय बड़ा ही प्रसन्न हुआ। हयशाला अत्यधिक बड़ी और चौड़ी है। उसकी उज्वलता शोभा का मूल है ॥२४॥

पट्टनरे मोटे ऊजरे। सोभ जतु बाईजनि केरे॥
सरस मरासन बांधी बनी। जरवाफनि की झूलों घनी॥२५॥

घोड़ों के पट्ट मोटे और उजले हैं, मानो बाईजनि की शोभा हो। सुन्दर सरासन की काठी बनी हैं और जरवाफनि की झूले हैं ॥२५॥

मल्लूहा कुमैत के यह घनै। कुही कुमल किलकी कूदनै॥
कुरग करारिया कारे वर्न। कच्छी पच्छी के मन दर्न॥२६॥

मल्लूहा कुमैत के घोड़े कूद कूद कर अपनी कुशलता प्रकट कर रहे हैं। करारिया घोड़े काले रंग के हैं जो कि कच्छ देश के घोड़ों का घमण्ड विनाश कर रहे हैं ॥२६॥

खुरनि लिखैं भूकेल पेचरी परकति परक पलनि कों परी॥
पधारी पलकाई सुप देत। उपजे पुरासान के खेत॥२७॥

निगडैल घोड़े अपने खुरों से जमीन पर कुछ लिखते हैं, जिन से दुष्टों का दिल दहल जाता है। कधारी और पलकाई के घोड़े सुख देने वाले हैं, जिनका जन्म पुरासन के खेत में हुआ है ॥२७॥

गुररी गिरद गात गुन भरे। गूढ़नि गोलनि मौलिक गरे॥
घूँघट घालि चलत गुन घनैं। लागत घाइनि रन मे घनैं॥२८॥

गुररी और गिरद जाति के घोड़ों के शरीर में गुण ही गुण भरे हुए हैं। वे घूघट निकाल कर चलते हैं और युद्ध में चोटों को सहन करते हैं ॥२८॥

चौधर चालि चाभुकी चारु। चतुर चित्त कैसी अपनाः॥
चाभुक चितन व रिम चौगुनी। चञ्चल लोचन मोहै गुनी॥ ६॥

अनगाह चतुर चित्त की भांति चचल है और वह चौधर चाल चलता है। चाबुक लगने ही उसका क्रोध बढ़ जाता है उसके चचल नेत्र गुणी लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं ॥२६॥

आजति छोहैं अंगनि माह। छवा छबीले छुवे न जाहि ॥
जादरु जानि जनम ते बली। जोवन जोर जाति संदली ॥३०॥

छोहा अंगों पर शोभा देता है और उनकी सुन्दर एड़ियाँ स्पर्श नहीं किया जा सकता है। आदर जन्म से ही शक्तिशाली है। वह अपने यौवन के बल से संदली तक चला जाता है ॥३०॥

ठेली ठौरि ठौरनि मौरवैं। नागर निरख निरखि मनरवैं ॥
डोरेहू न देत डग शुद्ध। डांकि डांकि धर परहिं विरुद्ध ॥ ३१ ॥

स्थान स्थान पर चक्का मुड़ी करते हुये घूमते हैं जिन्हें देख देख कर नागरिकों का मन प्रसन्न हो जाता है। लगाम के तरासने पर ठीक ढग से पैर नहीं डालते हैं। जिधर का सकेत चलने को किया जाता है उसके विरुद्ध ही वे अपने पैरों को डाक डाक कर रखते हैं ॥३१॥

नौने निपट नैन ज्यौं नवैं। नागर निगर निरखि मनुरवैं ॥
ताते तेजी तरल तुषार। तातैं तनजा तेज अपार ॥ ३२ ॥

जब वह अपने नेत्रों को झुका लेता है तब नागरिकों के मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इसी कारण से उससे अधिक तेज़ी तुषार में है और उससे भी अधिक तेजी तनजा में है ॥३२॥

तुरकी तरतन तीर सी चालि। डग तुरग करै नृपलालि ॥
थूलह थुनी विन थकै न पथ। थल जल डगै न थापै पंथ ॥३३॥

तुरकी घोड़े तीर की सी चाल से चलते हैं। वे चलने में न तो कभी थकते हैं और न कभी जल थल के मार्ग में रुकते (अड़ना) ही हैं ॥३३॥

दू दू दाँत दीह दौरनै। दूरि देस के देखत बनै ॥
धरि धूमरे घर धूमरे। धार धरण धावनि बधकरैं ॥ ३४ ॥

मटमैले रग के घोड़े दूर से देखने में अत्यधिक सुन्दर लगते हैं। वे दाँत पीस कर पानी की धारा की भाँति दौड़कर बध करते हैं ॥३४॥

पीन पुथी नती पातरी। पाये पश्चिम दिसि की थरी ॥
पाथर पदपल्लव सी पीठी। पच कल्यान लगत अति दीठि ॥ ३५ ॥

पुथी पतरी, नर्मी पतली, पैर कठोर तथा पीठ पचे के समान है, इस प्रकार का पचकल्यान घोड़ा (इसके चारों पाँव और माथे का रंग सफेद होता है और शेष भाग अन्य किसी रंग का होता है) देखने में सुन्दर लगते हैं ॥३५॥

फूले मननि फूल से अंग । फूल उठी तन तेज तुरंग ॥
चल के बादामी बलिवत । वीर चलोचि वने अनंत ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार पुष्प फूल उठते हैं उसी प्रकार घोड़ों के अंग प्रलय आनन्द से फूल उठे हैं। बादामी घोड़े, अत्यधिक शक्तिशाली हैं और अनेक वीर विलोची घोड़े हैं ॥३६॥

चद कमान उपजे बहु वेस। दै पठाये बालुका नरेस ॥
भूरे भोरे भूरि गुनभर। भष्पर सुत भूषन सक्करे ॥ ३७ ॥

बालुका नरेश ने अनेक कमानवर्णी घोड़ों का दान दिया। भूरे, सुदर, गुणयुक्त घोड़े, आभूषणों को धारण किये हुए हैं ॥३७॥

मूलतानी मागधी असेष। मत्स्य देस के मोहन वेस ॥
राजत मनरजित सुभ वेस। उपजे रोम राट के देस ॥ ३८ ॥

मुल्तानी, मागधी और मत्स्य देश के घोड़े सुदर वेश धारण किये हुये हैं। राट देश में उत्पन्न घोड़े अपने सुन्दर वेश से लोगों का मन रंजन करते हैं। ॥३८॥

लापौरी लपि लापनि लये। लीले लोल लहिये नये ॥
सुनंद सीतपुर सोहियें। सिंधु तीर के सुर मोहियें ॥ ३९ ॥

लापौरी घोड़ों को सभी ने लिया है। लीले घोड़े सदैव नये प्रतीत होते हैं। सुनन्द घोड़े सीतपुरी में सुशोभित होते हैं। सिंधु तट के घोड़े देवों तक को आकर्षित करते हैं ॥३९॥

हीरा हिरनागर ही सनै। हरसिंह हौस हांसुरल वनैं ॥
आईं इराक्रन सो बधि जाई। लैन हाट नर जात बिसाय ॥ ४० ॥

हीरा, हिरनागर, हरसिंह, हौस, हामुव स आदि घोड़े इतने मूल्यवान हैं कि बाजार में व्यक्ति जब खरीदने जाता है तब वह भी इनके खरीदने में बिक जाता है ॥४०॥

मोल लये अति जदपि अमोल । अचल करत चित चिर्खानि लोल ।
अति ताते तन प्रगट तुषार । लोह् लगे मुष उरसि उदार ॥ ४१ ॥

घोड़ा को खरीद लिया है, यद्यपि वे अमोल हैं । चचल चित्त को भी उनके नेत्र अचल कर देते हैं इसी कारण शरीर से तुषार प्रकट हो रहा है ॥४१॥

लोभ उवाच । दोहा ॥

दान सुजान सुनाइजैं हरषि हयनि की जाति ।
कहौ सुभा सुभ आय अरू लछन लसि यहु भाँति ॥ ४२ ॥

हे दान ! प्रसन्न होकर अब घोड़ों की जाति को सुनाइये । अनेक प्रकार के शुभ अशुभ लक्षणों का विचार करके कहिये ॥४२॥

दान उवाच । चौपाई ॥

पहिल सपच्छ हुते हय सबै । जहाँ तहाँ उडि जाते जबै ॥
रमियौ देपि तिनहि सुरराई । सालि होत्र पर मागे जाइ ॥ ४३ ॥

पहले घोड़ों के पख होते थे । वे जहा भी चाहते थे उड जाते थे । उन घोड़ों को देखकर इन्द्र प्रसन्न हो गया उसने शालि होत्र से घोड़े मागे ॥४३॥

तैदे रिपि तिन पाइनि किये । देवनि दे नर देवनि दिये ॥
बसे भूमि विधि चारि अनूप । ब्रह्म छत्रि विट सूद्र सुरुप ॥ ४४ ॥

रिपि ने उन्हें पैरों का कर दिया । पहले तो उन्होंने देवों को दिया और फिर नर देवों को दिया । वे पृथ्वी पर चार प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के रूप में आकर रहने लगे ॥४४॥

स्वेत ब्रह्म छत्री वन लाल । पीत बरन बहु वैस्य विसाल ॥
सूद्र कहावैं कारे अग । मिश्रित बरन् तिमिश्रित रग ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण का शरीर श्वेत, क्षत्रिय का शरीर लाल, वैश्यों का शरीर पीला तथा शूद्रों का शरीर काला था। जो वर्ण मिश्रित हो गये थे, उनका रंग मिश्रित हो गया था ॥४५॥

सुनियत हय सब तीन प्रकार। उत्तम मध्यम अधम विचार ॥
विप्रनि चढ़ि सब कीजै धर्म। छत्रिनि चढ़ि जुद्धनि के कर्म ॥४६॥

सुना है कि घोड़े उत्तम, मध्यम तथा अधम, तीन प्रकार के होते हैं। विप्र घोड़ों पर चढ़कर धर्म के काम करते हैं और क्षत्रिय घोड़ों पर चढ़कर युद्ध करते है ॥४६॥

बैसनि चढ़िबैं बहु धन साज। सूद्रनि दुष्ट कर्म के काज ॥
राते ओंठ जो गरी हीन। राती जीभ सुगंधनि लीन ॥ ४७ ॥

वैश्य घोड़ों पर चढ़कर व्यापार करते है और शूद्र घोड़े पर चढ़कर दुष्टता का कार्य करते है। उन घोड़ों के ओठ तथा जीभ लाल है जिसमें सुगन्ध है ॥४७॥

रातो तरुवा कोमल खाल। ऐसौ घोरौ शुभ सब काल ॥
दंत चिक्कनै सुदृढ़ समान। सोमन मुख हनु बाहु निधान ॥ ४८ ॥

तरुवा लाल हो और खाल बहुत ही कोमल हो। ऐसा घोड़ा सब समयों में शुभ होता है। दांत चिकने और सुदृढ़ हों तो ऐसा घोडा बडा शक्तिशाली होता है ॥४८॥

नैन बडे बहु आभा भरे। कारे तारे चंचल खरे ॥
भौंरी संयुत चौरौ भाल। द्वै भौंरी युत सिर सब काल ॥४६॥

नेत्र बड़े, आभायुक्त, पुतली काली और चंचल हो और भौंरी युक्त मस्तक हो तो वह घोडा सर्वश्रेष्ठ होता है ॥४६॥

अति सूक्षम अति छोटे कान। कुचि दीरघ ग्रीव समान ॥
जटाहीन कोमल किसवार। बिन भौंरी दृढ़ कंध विचार ॥५०॥

कान बहुत सूक्ष्म और छोटे हों। बाल गर्दन के समान लम्बे हों। यदि किसवार जटाहीन और कोमल है तथा उसके भौंरी भी नहीं है, तो सुदृढ़ कंधों का विचार करना चाहिये ॥५०॥

उन्नत कूंप उरज सुविसाल। गूढ गाढ़ि छूटे मव वाल॥
सूधी सुमिल मास करि हीन। नरी पातरी मुनौ प्रवीन॥५१॥

कूप ऊँची है वक्षस्थल चौड़ा है, तो वह सभी कठिन समयों पर काम दे सकता है। यदि सूधी सीधी है मास हीन है तथा गर्दन पतली है, तो ऐसा घोड़ा बड़ा ही प्रवीन होता है॥५१॥

छोटे मुग्वा गाठि न होई। पुतरी दृढ़ कारे पुर जोई॥
ऊँचे पाँजर जठर उदार। और वर्त्तुल पूठि अपार॥५२॥

छोटे मुख का घोड़ा हो और उसके कोई गाठ न हो, दृढ़ पुतली, और खुर काले हों, पांजर ऊंचे हों, पेट में सदैव भूख लगी रहती हो और पुट्ठे गोलाकार हों, तो घोड़ा अच्छा होता है॥५२॥

छोटी मोटी पीठि सुदेस। कोमल दीर्घ पूँछ के केस॥
आट अमोल वेल परमान। कृष्ण बरन विन दुवै समान॥५३॥

पीठ छोटी और मोटी हो, पूछ लम्बी हो किन्तु उसके बाल लम्बे हों, तो ऐसा घोड़ा कृष्ण वर्ण न होने पर भी अच्छा होता है॥५३॥

वत्तिस ताम सतायस माने। आँगुल मुख घोरन के जान॥
उत्तम मध्यम अधम विधान। इहिं विधि गिगरे अग प्रधान॥५४॥

अधिकाशत घोड़ों का मुख बत्तीस, तीस और सत्ताईस अगुल के होते हैं और इसी क्रम से वे उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि में भी आते हैं यही ऊपर गिनाये हुये घोड़ों के प्रधान अंग है॥५४॥

छप्पन चौवालीस छत्तीस। अगुल और हयकी दीस॥
अरु वृष्टि करि मुख परिमान। केन सप्त अगुलि समान॥५५॥

घोड़े की गर्दन छप्पन, चवालीस और छत्तीस अगुल की होती है और केन सात अगुल होती है॥५५॥

अरुन होई पट अगल तालु। कोमल अमल पूंम कौनालु॥
बीम अठारह चौदह दोई। अगल लामी जानी लोई॥५६॥

तालू छै अगुलि कोमल हो, पूछ के नीचे का हिस्सा कोमल हो और लोई बीस, अठारह, चौदह अगुलि की लम्बी हो॥५६॥

सात पाँच अँगुलनि जानु । चारि कठिन सुम परिमानु ॥
चारि हाथ ऊँचो हय लेखि । साढ़े तीन तीर सम देखि ॥५७॥

सात पाँच अगुलि की लम्बी सुन हो और चार हाथ का ऊँचा घोड़ा बहुत ही अच्छा होता है और यदि वह साढे तीन हाथ का ऊँचा हो तो वह तीर की भांति तेज चलता है ॥५७॥

पाँच चारि कारि साढ़े तीन । लामौ लौबी धारी वीन ॥
कारे कान सबै तन सेत । स्याहकर्न लीजौ कृन देत ॥५८॥

घोड़े के कान काले हो और शेष शरीर बिलकुल ही सफेद हो तो वह घोड़ा बड़ा ही अच्छा होता है ॥५८॥

सेत तिलक पद चारयो सेत । पच कल्यान लीजे सुभ हेत ॥
मुर मुप पच्छ पाइ सब सेत । मगल अष्ट सुराघु निकेत ॥५६॥

मस्तक और चारो पैर सफेद हों तो शुभ लक्षणो क लिये पचकल्याण घोड़े को ले लो । उसका मुख भी सफेद हो तो उसम आठ मगलकारी लक्षण रहते हैं ॥५६॥

कुरुम तालुता की जो होय । ताहि बुरौ जनि मानौ कोय ॥
पच कल्यान जो होय सरीर । भौरी असुभ सुभै गान वीर ॥६०॥

यदि घोड़ा कुरुम तालुता का है तो उसे बुरा नहा मानना चाहिये। यदि घोड़ा पचकल्यान शरीर का है तो उसकी अशुभ भौरी भी शुभ हो जाती है ॥६०॥

जाके कारे चार्‌यो पाय । सब तन सेत सुता जमराय ॥६१॥

जिसके चारों पैर काले हों और सारा शरीर सफेद हो, त' वह साक्षात यमराज है ॥६१॥

भौंरि तीन होंई जो भाल । ऊरध अध त्रधि पत्रि रिमाल ॥
सो बाजी त श्रेनी नाम । घोरे धनै बढ़ावै धाम ॥६२॥

यदि मस्तक पर तीन भौंरी हों, ता ऐसे घोड़े का नाम श्रेनी होता है ऐसा घोड़ा धन धान्य को घर में बढ़ाता है ॥६२।

दुहु ओर देय भौंरी भाल। सो घोरो नीकौ सब काल ॥
जाघो रेक भौंरी कठ। नृपवाहन कहिये मनिकठ ॥६३॥

यदि घोड़े के मस्तक पर दोनों ओर भौंरी है तो वह घोड़ा सभी कालों में शुभ ही रहेगा। यदि जघा में रेक हो और कठ मे भौंरी हो, तो ऐसा घोड़ा राजा की सवारी के लिये उपयुक्त होता है ॥६३॥

जा घोरे के भौंरी पीठि। सो पुनी राज बाहकै दीठ ॥
जाकैं भौंरी दुहू कपोल। ताकौं न जानौ परम अमोल ॥६४॥

जिस घोड़े की पीठ पर भौंरी रहती है वह घोड़ा यमराज होता है। जिस घोड़े के दोनों कपोला पर भौंरी होती है, वह घोड़ा मूल्यवान नहीं होता है ॥६४॥

काधै युगल कर्न के मूल। भौंरी मानौ कमल के फूल ॥
भौंरी होय नाऊ पर एक। अथवा जानौ हीन विवेक ॥६५॥

यदि कन्धे और कानों के मूल म भौंरी हो तो वह कमल की भाति सुन्दर लगती है। यदि घोड़े की नाक पर भौंरी हो तो वह घोड़ा बड़ा विवेकी होता है ॥६५॥

तापर चढ़ै बहुत सुख होई। ताहि मोल अति लीजौ लोइ ॥६६॥

यदि ऐसे घोड़े पर कोई चढे ता बड़ा सुख प्राप्त होता है और उस घोड़े को हठ पूर्वक मोल ले लेना चाहिये ॥६६॥

॥ दोहा

भौंरी घूटे आउतर पूँछ हेट तर होय ॥
ओंठ दुवै सब बाजि सो बुरो कहैं सब कोय ॥ ६७ ॥

यदि भौंरी घूटे और पूछ की नीची हो और ओठ द्रवित होता हो, तो ऐसे घोड़े को सभी बुरा कहते हैं ॥६७॥

॥ चौपाई ॥

घट वद दाँत निकारी तालु। मुसला शृगी अरु कुब्दालु ॥
धनी द्विपुर कुकुदी हय लेपि । इतनै सबमैं सर्केन देषि ॥६८॥

यदि तालू में दात घट बढ़ कर निकल रहे हों, थगी मूसला हो, और उसमें यनी, हिखुर तथा कुकुनी भी हो तो ऐसा घोड़ा अपने स्वामी के लिये *अशुभ होता है और स्वामी निश्चय ही मृत्यु का कारण बनता* है ॥६८॥

रोम आईं पर एकै आई। अैसौ घोड़ौ लीवौ छांड़ि ॥
वरस गए ते रपसी होई । कहे अषण्ड ताहि सब कोई ॥६६॥

रोम आईं पर यदि एक ही आईं है तो ऐसे घोड़े को छोड़ कर दूसरे घोड़े को खरीदना चाहिये। एक वर्ष में यदि घोड़ा रपसी हो जाता है तो ऐसे घोड़े को सभी अखण्ड कहते हैं ॥६६॥

पाँचइ तै चौदांत तुपार । तासौं जग जन कहै प्रचार ॥
ते वल दमन कालिमा होय। नीलै रहत कहत सब कोय ॥७०।

पाच से चार दात तक तुषार रहता है, इसे सभी लोग कहते हैं। जब दातों में कालिमा आ जाती है तब नौ तक रहेगा, ऐसा सभी कहते हैं।७०॥

वहुरै होय कालिमा पान। ग्यारह लौं रहै सुभीत ॥
बहुरि वायवरन देषिये । सोरह वर्ष रहत लेषिये ॥७१॥

जब कालिमा पीली होने लगती है, तब ग्यारह वर्ष तक रहेगा और जब वह वामवर्ण का हो जाता है तब वह सोलह वर्ष तक जीवित रहता है ॥७१॥

होय बीस लौ मधु के रंग । बहुरै होय सॅप के अँग ॥
भरि भरि चौबीस सँपनी रहै। षोडस परत वहुरि सब कहै ॥७२॥

यदि उसका मधु रंग हो जाय तो बीस वर्ष की अवस्था तक जीता है और शख रंग हो जाय तो चौबीस वर्ष तक जीता है और सपनी रंग हो जाय तो वह फिर सोलह वर्ष का युवक घोड़ा हो जाता है।।७२।।

दांत जाहि जब पूजैं तीस । घोरी जियैं वरप वत्तीस ॥
ऊँची मुह कर दीसै घार । पापर नापैं घोरी धीर ॥७३॥

जब घोड़े की तीस दात हो जाते हैं तब वह बत्तीस वर्ष तक जीवित रहता है यदि घोड़ा मुह ऊँचा करने देख रहा हो तो वह घोड़ा बहुत ही धैर्यवान होता है ॥७३॥

खोंदे भूमि जुपुर की कोर । ओति वहत है ते चहुओर ॥७४॥

जो घोड़ा अपनी खुर की कोर से भूमि खोदता है, उसकी कीर्ति चारों ओर फैल जाती है ।७४॥

मूतै बार बार अरु हगै। नैनन तैं आँसू डगमगै ॥
तब ही होय अनमनो चित्त । सो हय कहैं पराजय चित्त ॥७५॥

यदि घोड़ा बार बार मूत और हग रहा है और आखों से आसू बहते हैं तो ऐसे घोड़े का चित्त ठीक नहीं और वह पराजय की सूचना दे रहा है ॥७५।

बिन कारण ज्यौं बोलौं मनि। अधरताहि उठि उठै सुनि ॥
सो घोरी करिकै हिय हेत । आरि आगमन कहै ही देत ॥७६॥

जब घोड़ा रात को अकारण ही हिनहिना रहा हो तो वह घोड़ा अपने स्वामी के हित के लिये हिनहिना कर शत्रु के आगमन की सूचना दे रहा है ॥७६॥

। दोहा ।

जा घोरे की आग मे नीरे पीरे बिंदु ॥
तौ जीवें सौ मास दस जो ज्यावे गार्विंद ॥७७॥

यदि घोड़े की आख से नीला पीला विन्दु है तो वह घोड़ा ११० मास जीता है यदि ईश्वर उसे जियावे ॥७७॥

इति श्रीमन्मण्डल भूमण्डलाखण्डेश्वर महाराजाधिराजा-राजश्री वीरसिंघ देव चारित्रे रावर लोग हयसाला बरननं नाम सप्तदसम. प्रकास

———

चौपाई

नगरी गीतन की माधुरी । मोहति मनु माधौ मधुपुरी ॥
बाजत घँट घनें घरयाय । मांभ मालरें भेरी तार ॥१॥

सम्पूर्ण नगर गीतों की मधुर ध्वनि से गूंज रहा है, ऐसा है लगता है कि वह माधौ की मधुपुरी है जो कि सभी को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। स्थान स्थान पर भाँझ, घण्टा, घड़ियाल और भेरी बज रही है ॥१॥

ठौरे ठौरे ठौरे कीरँतन घनें । अति ऊँचे देवालय बनें ॥
जहँ तहँ हरि लाला मुनि सीत । राम कृष्ण के गावहिं गीत ॥२॥

स्थान स्थान पर ऊंचे ऊंचे देवालयों में कीर्तन हो रहा है। रामकृष्ण के गीत गाये जा रहे हैं। हरि की लीला ही जहां तहां सुनाई देती है ॥२॥

निर्पाट वेला वन सोभा साज्यौ। नील महावन मोहन बाज्यौ ॥
घर घर घटा थम सोहियैं । मुरती देखति मन मोहियें ॥३॥

सम्पूर्ण वन वेल से सुशोभित हो रहा है। नील महावन में कामदेव की दुदुभी बज रही है। मुरती को देखकर मन मोहित हो जाता है ॥३॥

ताकी छवि मेरे मन बसी। सोहती मानों बारानसी ॥
पँडित मँडल मँडित नसैं । परम हँस के गनजहँ बसें ॥४॥

उसकी सुन्दरता मेरे मन में बस गई। मानो वह नगर वाराणसी ही हो। पंडित के झुड के झुन्ड सुशोभित हो रहे थे और हंसों के समूह वहाँ विराजमान थे ॥४॥

मिटति सुभासुभ की बासना । पारवती पति की सासना ॥
रामैं रटत छत्तीसौ कुरी । मानौं रामचन्द्र की पुरी ॥५॥

वहां पर शुभ अशुभ सभी वासनायें नष्ट हो जाती हैं। वहां पर शङ्कर भगवान का शासन है सभी (छत्तीसो कुरो) परिवार राम ही राम रटते हैं, मानो रामचद्र की अयोध्या पुरी हो ॥५॥

कुशल बसे नर नायक बने । पूजित तहँ सनौढिया घने ॥
अति पडित पावनि दिन राति । पादारघ पावत बहु भांति ॥६॥

सभी लोग कुशलता पूर्वक वहा पर रह रहे हैं सनाढ्य ब्राह्मणों की पूजा होती है। पंडित को अत्यधिक पवित्र माना जाता है और उन्हें सदैव पादारघ मिला करता है ॥६॥

दिन दिन पूजत जहँ पितृ देव । अर्चमान श्री हरि की सेव ॥
इकै कहत इक सुनत पुरान । घोषत इक व्याकरण प्रमाण ॥७॥

पितृदेवों की सदैव उपासना होती है। श्री हरि की सेवा होती है। एक पुराण कहता है और दूसरा सुनता है तथा दूसरा व्याकरण का अध्ययन करता है ॥७॥

साधत एक ते मंत्र प्रयोग। उपदेसत एक्न कहँ योग ॥
अद्भुत अभय दान के दानि । कविकुल सौं नाहिन पहिचान ॥८॥

कोई मन्त्रों की साधना कर रहा है और कोई दूसरों को योग की शिक्षा का उपदेश दे रहा है। अद्भुत अभय होने का दान मिलता है। कविकुल से किसी भी प्रकार परिचय नहीं है ॥८॥

सोभित सदा पवित्र प्रसग । जद्यपि द्वार द्वार मातग ॥
होम धूम मलिनाई जहा । अति चचल चल दल दल तहा ॥६॥

सदैव पवित्र प्रसग बने रहते हैं यद्यपि द्वार द्वार पर मातग विराजमान रहता है, मलीनता केवल वहा पर होम के धुयें की ही मिलेगी। चचलता सेना ही मे मिलेगी ॥६॥

घात नाम है चूरा कर्म। तीक्ष्णता आयुध के धर्म ॥
जहँ विधवा बाटिका न नारी। जहा अधोगति मूल विचारी ॥१०॥

घात नाम केवल चूरा कर्म ही का है। आयुध धर्म मे ही तीक्ष्णता है। कोई भी स्त्री वहा पर विधवा ही नहीं है। विधवा के नाम पर केवल वाटिकायें ही हैं। अधोगति केवल जड़ों की ही होती है ॥१०॥

मान भग मानिनि की जानि । कुटिल चाल सरितानि बखानि ॥
दुर्गनि की दुर्गति सचरै। व्याकरण के द्विज वृत्तिनिहरै ॥११॥

मानभंग केवल मानिनी नारियों का ही होता है। कुटिल चाल केवल सरिताओं को ही प्राप्त होती है। दुर्गति केवल दुर्गों की होती है ब्राह्मण लोग केवल व्याकरण की वृत्ति छीनते हैं ॥११॥

कीरत ही के लोभी लाप। कविजन कै श्रीफल अभिलाप ॥
लेखहु लोभ समुद्र अगस्ति। त्रस्ना लता कुठार प्रसस्ति ॥१२॥

लोगों को लोभ केवल अपनी कीर्ति का ही है और कवियों को केवल श्रीफल की ही अभिलाषा है। यदि लोभ ही देखना है तो वैसा ही मिलेगा जैसा कि अगस्ति ऋषि का समुद्र के प्रति था ॥१२॥

महा मोह मत वैसे मित्र। क्रोध भुजंग मन्त्र पवित्र ॥१३॥

महामोह की मित्रता वैसी है जैसे कि क्रुद्ध सर्प को मंत्र द्वारा ठीक कर लिया जाता है ॥१३॥

॥ दोहा ॥

ऐसे नागर नगर जब विद्यन के अवतार।
आचार्जन के भवन में गुन गन से मसार ॥१४॥

प्रत्येक नागरिक सभी विद्याओं का अवतार सा प्रतीत होता है। आचार्यों के घर ऐसे लगते हैं मानो संसार के सभी गुणों के घर हों ॥१४॥

चौपाई

सत्रु समूह सुनत डर सुमैं। कबहुं देव पुरी कौ हुसैं ॥
रमति मजुघोषा है जहां। सुंदरि सुमुखि सुवेषी तहां ॥१५॥

शत्रु समूह सुनते ही मी डर जाता है कभी देवपुरी पर हंसता है। मंजुघोषा वहाँ पर विहार करती है वहाँ पर अनेक सुन्दरियाँ सुमुखी है ॥१५॥

तिलोत्तम न तहां को गनै। रंभा कौ वन देषत बनै ॥
गनपति धन पति प्रति घर घनै। सूर सक्ति घर सोभा सनै ॥१६॥

तिलोत्तमा ऐसी विदुषी नारी वहां पर अनेक हैं। रंभा का वन बहुत ही सुन्दर है। गणेश और कुबेर घर घर में विराजमान हैं सुरशक्ति की शोभा से प्रत्येक घर परिपूर्ण है ॥१६॥

कार्यकुल मंगल गुरु बुध वास। विद्याधर गधर्व निवास॥
थल थल प्रति सुमनति तरु बनै। बरन बरन तनु सोभा सनै॥१७॥

कविकुल के मंगल गुरु बुध और विद्याधर गधर्वों का वहां पर वास है। अनेक वर्णों के सुन्दर वृक्ष स्थान स्थान पर खड़े हैं ॥१७॥

जहं तहं सुर तरगनि सार। घर घर सुर संगीत विचार॥
सकल भुवन जस सी यह छुरी। सिव के जटा मनो ससि जुरी॥१८॥

जहाँ तहाँ सुर की तरंगे सुनाई पड़ती हैं और प्रत्येक घर में सुन्दर सङ्गीत पर विचार होता है। सारी पृथ्वी में यह उसी प्रकार से सुन्दर है जैसे शिव जी की जटाओं में बधा हुआ चन्द्रमा सुन्दर है ॥१८॥

जद्यपि लोग सबै बहु वीर। विविध विनय युत सकल सरीर॥
अति ऊँचे आगारनि बनी। चिंतामणि गिरि कैसे घनी॥१६॥

यद्यपि सभी योद्धा वीर हैं किन्तु विनय सभा में विराजमान है। चिंतामन गिरि की भाँति ऊंचे ऊंचे आगारों से यह नगर बसा हुआ है ॥१६॥

विचित्र चित्र सुमित्रन ससी। विश्वरूप कैसी आरसी॥
धूपति सतमख धूप सनेह। सुन्दर सुरपति कैसी देह॥२०॥

विश्वरूप की आरसी की भांति यह अनेक चित्र विचित्र चित्रों से बनी हुई है। इन्द्र की शरीर की भाँति शतमख का धुआँ निकल रहा है ॥२०॥

दोहा।

तिन नगरी तीन नागरी प्रतिपद हंस कही न।
जलज हार सोभित तहा प्रकट पयोधर पीन॥२१॥

उस नगरी की चतुर नारियों की चाल के सम्मुख हँस भी कम हैं। नारियों के स्वस्थ पयोधरों पर कमलों का हार शोभित रहता है ॥२१॥

चौपाई

देवनि सौं दिति सी जग मगै। सिंघ सयुत दुर्गा सी लगै ॥२२॥

देवों की दिति के समान जगमगा रही है। दुर्गा के समान वह लग रही है ॥२२॥

॥ दोहा ॥

नृप नल नहुष जजाति प्रभु भय भागीरथ भेव।
जहांगीर पुर की प्रगट राज बीर सिंघ देव ॥२३॥

नल, नहुष, ययाति, भागीरथी आदि अनेक राजा हुये हैं उन्हीं के समान जहाँगीरपुर में वीरसिंह देव राजा प्रकट हुआ है ॥२३॥

। चौपाई।

तिथि ही को छय जाके राज, पिते पुत्र कै छाडत काज॥
वै द्वै पर नारी कौ गहैं। भारै बिभिचारिन समहैं ॥२४॥

उसके राज्य में क्षय एक मात्र तिथि का ही होता है। पिता पुत्र को हा केवल काम के लिये छोड़ता है। केवल भास्य व्यभिचारिनियों का संग्रह ही करते हैं ॥२४॥

फागुही लोग निलज दीखियैं। जुवा दिवारी कौ लेखियैं॥
खेलहि मैं बिग्रह मानियै। निग्रह खेरहि की जानियै ॥२५॥

फाल्गुन में ही लोग निर्लज्ज दिखाई पड़ते हैं और जुआँ दिवाली को ही दिखाई पड़ता है। खेलने में ही केवल झगड़ा दिखाई देगा और यदि निग्रह किसी वस्तु का है तो केवल झगड़े का है ॥२५॥

दिन चढ़िरे भौंहैं मारियैं। चौपरि मैं कबौंहू हारियैं॥
जादौराय गौर कौ पूत। मनक्रम वचन समुझि सुभ सूत ॥२६॥

नित्य उठ कर भौंहें को सभी मारते हैं और हार केवल चौपड़ के खेल में मानते हैं जादौराय गौर का पुत्र मन क्रम वचन से शुभ है ॥२६॥

राजभार ताके सिर धार्यौ। मनौं कुमरु गुन भारी भर्यौ॥
छत्रि जानि कहैं सब लोग। परम पुण्य पौरुष संयोग ॥२७॥

राज्य का सम्पूर्ण भार उसी के सिर पर रख दिया है। उसे क्षत्री समझ कर सभी लोग कहते हैं कि गुरुत्व तथा पौरुष्य के गुणों का संयोग हुआ है ॥२६॥

कृपा राम यह नाम प्रसिद्ध। कृपान कर की पावन सिद्ध ॥
और कहै सब ताकी ख्याति। मध्य देस देसियै सुजाति ॥२८॥

कृपाराम प्रसिद्ध है, जिसे कृपाण में कुशलता प्राप्त है। सभी और उसकी ख्याति को कहते हैं ॥२८॥

इहि विधि सो अद्भुत रस भर्यौ। बीरसिंह मनापति कर्यौ ॥
दमनक ज्यौं जल कै मानियैं। सौम्य भुवन रविकैं जानियैं ॥२६॥

इस प्रकार के अद्भुत रस से पूर्ण व्यक्ति को वीरसिंह ने सेनापति बनाया जिस प्रकार से जल में दमनक होता है या सौम्य रवि जानिये ॥२६॥

ज्यौं वासिष्ट दसरथ कौं मित्र। रामचन्द्र कैं विश्वामित्र ॥
बीरसिंघ त्यौं मंत्री कर्यौ। कन्हर दास विप्र मति भर्यौ ॥३०॥

जिस प्रकार वशिष्ठ दशरथ के मित्र हैं और राम चन्द्र के विश्वामित्र मित्र हैं उसी प्रकार से कन्हरदास, विप्र को वीरसिंह ने अपना मंत्री बनाया ॥३०॥

विन कलंक कौ किये द्विजराज। कन्हर नाम करैं नृप काज ॥३१॥

कन्हरदास अकलंकित रूप से सभी कार्य राजा के करता है ॥३१॥

दोहा

बचन मई उपदेश ज्यौं उन सब मंगल मानि ॥
निसि बासर जपिबौ करैं महामंत्र सौं जानि ॥३२॥

उपदेश के सभी रचना को मङ्गलप्रद जान कर ग्रहण करता है और उन्हें महामंत्र समझ कर रात दिन जपा करता है ॥३२॥

इति श्रीमत् सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री राजा वीरसिंघ-देव चरित्र दान लोभ सम्वादे नगर वर्णन नाम अष्टादस प्रकासः ॥१८॥

॥ चौपाई ॥

देखै प्रकट लोभ अरु दान । निकसे महाराज चौगान ॥
हाथ धनुष मनमथ के रूप । साहत संग पयादे भूप ॥१॥

महाराज जब चौगान खेलने के लिये निकले तब दान और लोभ, दोनों ही दिखाई दिये । हाथ में धनुष धारण किये हुये राजा के साथ पैदल ही मन्मथ के रूप में सुशोभित हैं ॥१॥

जबही जाको आयसु होय । जाइ चढै गज बाजिनि सोव ॥
पसुपति मै भूपति देखियै । महामत्त अनगन लेखियै ॥२॥

जिस समय जिसको आज्ञा होती है उस समय वह घोड़े पर जाकर बैठ जाता है । भूपति पशुपति के समान सुशोभित है और अगणित मस्त हाथी दिखाई देते हैं ॥२॥

जबही प्रयान दुन्दुभी बजै । तबही सुभट बाजि गज सजै ॥
बरनत जय सब मागध सूत । जय पालत बंदिन के पूत ॥३॥

जिस समय चलने के लिये दुंदुभी बजती है उस समय सभी योधा अपने अपने घोड़ों को सजाने लगते हैं । बंदी मागध, सूत सभी जय जयकार करते हैं ॥३॥

दीन दुखी रोगी जब जिते । गुग पांगुरे कहियै किते ॥
बहिरे अंध अनाथ अपार । तिन पर बरसी कंचनधार ॥४॥

जितने भी दीन दुखी रोगी पगु गूंगे बहरे अंधे अनाथ हैं उन सभी पर कंचन की वर्षा हुई ॥४॥

बीथी सब असवारनि भोर । गज बाजिन सो सोभा खड़ी ॥
दरु पुरजनि सों सरिता भजी । मानो मिलन समुद्रहि चली ॥५॥

हाथी और घोड़ों की सवारियों से सभी गलियाँ सुशोभित हो गई हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि सरिता जनयुक्त होकर तत्पर होकर समुद्र से मिलने के लिये चल दी है ॥५॥

इहि बिधि नृपति गये चौगान । साबकास सब भूमिसमान ॥
ऊँचो थम्भ मध्य सोहियै । ससि सो चिन्ह लोचन मोहियै ॥६॥

इस प्रकार से राजा चौगान का खेल खेलने के लिये गये। सारी भूमि खूब लम्बी चौड़ी एक समान थी। उसके बीच में ऊँचा खम्भ सुशोभित था, जो कि चन्द्र की भांति मन को मोहित कर रहा था ॥६॥

ताहि बिलौकैं कुंवर सुजान। दौरि दमाकन मेलत बाहन ॥
दै दै तुरग समूधी धाप। हनत लच्छि फिर खैंचत चाप ॥७॥

उसे देखकर चतुर कुंवर गोला और बान चलाता है। बार बार तुरग समूधी धाप देकर लक्ष्य को मारता है और चाप को खींच लेता है ॥७॥

मनहु मदन बहु रूप सुधारि। हनत सोम सिव बैर सम्हारि ॥८॥

ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव शिवजी से बैर लेने के लिये चन्द्रमा को मार रहे हों ॥८॥

॥ दोहा ॥

वेभ्भी मारि गिराई भुव बान नरेस सुजान ॥
खेलन लागे कुंवर सब चतुर चारु चौगान ॥९॥

राजा ने अपने बाणों से जमीन पर गिरा दिया। फिर सभी लोग कुंवर के साथ चौगान खेलने लगे ॥९॥

॥ चौपाई ॥

एक कोद नृप परम उदार। कोद दूसरि रजपूत जुझार ॥
सौहति लीन्है हाथनि छूरी। कारी पीरी राती हरी ॥१०॥

एक ओर राजा हैं और दूसरी ओर जुझार राजपूत हैं। उनके हाथों में काली पीली लाल तथा हरी छड़ी शोभा देती है ॥१०॥

देखन लागे सबैरे लोय। डारि दई भुव राती गोय ॥
गोला होइ जितहि जित सबै। होत सबै तितही तित तबै ॥११॥

लाल गोले को जमीन में डाल दिया गया उसे सभी लोग देखने लगे। जिस ओर गोला जाता है उसी ओर सभी लोग चलने लगते हैं ॥११॥

मनौ रसिक लोचन रुचि रचे । रूर संग बहु नाचनि नचे ॥
लोक लाज छांड़े सब अंग । डोलत जिय जनु मन के सग ॥१२॥

खिलाड़ी गेंद के साथ इस प्रकार दौड़ते हैं मानों रसिकों के लोचन सौंदर्य के साथ अनेक प्रकार का नृत्य कर रहे हों अथवा पूर्ण रूप से लोक लज्जा को छोड़ कर मानो पति अपनी पत्नी के साथ घूम रहा हो ॥१२॥

भवर पराग रग रुचि रये । मानौं भ्रम तरग के रये ॥
गोला जाके आगे जाये । सोई ताको चले अपन्याय ॥१३॥
नायक मन जसे बहु नारि । कारति आपु आपु डर डारि ॥
रूप सील गुन जानन रयौ । जिहिं पाया ताहि कौं भयौ ॥१४॥

जिस प्रकार से भ्रमर पराग में अनुरक्त होकर अपने को भूल जाता है उसी प्रकार गोला जिसके आगे जाता है वहा उसे अपना कर चल देता है अथवा जिस प्रकार बहु स्त्री अनुरागी नायक जिस स्त्री के रूप गुण शील पर आशक्त हो गया है उसी का हो गया ॥१३-१४॥

नैकहुँ डालि न पावै सोय । इततै उत उततै इत होय ॥
काम लोभ बाहु बाध्यौ विकार । मानौं जीव भ्रमत ससार ॥१५॥

वह गेंद इधर से उधर और उधर से इधर जाता रहता है। उसे थोड़ी देर की भी छुट्टी नहीं मिल पाती है। जिस प्रकार से काम क्रोध एवं लोभ में बधा हुआ जीव ससार में भ्रमण करता रहता है उसी प्रकार गेंद भी इधर उधर घूमता है ॥१५॥

जहां तहां मारे सब कोय । ज्यों नर पच विरोधी होय ॥
घरी घरी प्रति ठाकुर सबै । बदलत बासन बाहन तबै ॥१६॥

वह गेंद जिधर जाता है उधर ही सब उसे मारते हैं जैसे पच विरोधी मनुष्य जहा जाता है वहीं उसका विरोध होता है। एक एक घड़ी पर सभी लोग अपने वस्त्र और वाहन बदलते हैं ॥१६॥

॥ दोहा ॥

जब जब जीते हाल नृप तब तब बाजत निसान ॥
हय गय भूषण टाह पर दीजत विप्रनि दान ॥१७॥

जब जब राजा जीतते हैं तब तब बाजे बजते हैं और ब्राह्मणों को बहुत से घोड़े हाथी दान दिए जाते हैं ॥१७॥

॥ चौपाई ॥

तब तिहि समय एक बेताल । पढ़यौ गीत गुनि बुद्धि विसाल ॥
गोलनि की विनती सुरस पाइ । राज जू सौं कीनी आइ ॥१८॥

तब उस समय एक बुद्धिमान बेताल ने एक कवित्त पढ़ा मानों राजा से गोलों की विनती सुनाई हो ॥१८॥

कवित्त

पूरब की पूरा पुरी पापर पुरी से तन,
वापुरी वे दूर ही तें पायन परत हैं।
पश्चिम की पक्षादीन पक्षी ज्यौं उरति हैं,
उत्तरि की देती है उतारी सरनागतिन ॥
बातनि उतायली उतारि उलरति है,
गोलनि को वीरसिंघ दीजै जू सभय दान।
तेरे बैर कहां जाई विनती करति है ॥१९॥

भाट कहता है कि हे वीरसिंह ! अब गेंदा को अभयदान दीजिये, क्योंकि वे विनती करते कि वीरसिंह से बैर करके कहां जाय ? कहीं भी शरण नहीं मिलती । क्योंकि पूर्व की ओर जाते हैं तो वहां के पुर और नारिया पापर के समान दुर्बल तन वाली होने के कारण दूर से ही पैर पड़ती हैं कि हमारे पास मत आओ हम तुमको शरण न दे सकेंगी। पश्चिम की पुरियां पक्षी की तरह उड़ना चाहती हैं पर पक्षहीन होने से उड़ नहीं सकतीं और उत्तर की पुरिया शरणागतों को अपने पहाड़ी

स्थानों से उतार देती है तेजी से बातें करती है कि दलवा भूमि है जल्दी से उतर आओ, अतः हमें उतरते ही बनता है ॥१६॥

॥चौपाई॥

गोलनि की विनती सुनि ईस। घर कौं गमन करयौ जगदीस ॥
पुर पैठत बहु सोभा भई। तहँ तहँ गली सबै भर गई ॥२०॥

गोलों की विनती सुनकर जगदीश घर को चले गये। ग्राम में प्रवेश करते ही सारी गलियां भर गईं और ग्राम सुशोभित हो गया ॥२०॥

मनौ सेत मिलि सहित उछाह। सरितनि के फिरि चले प्रवाह ॥
तैही समय दिवस निसी गयौ। दीप उदोत नगर मैं भयौ ॥२१॥

चौगान के मेल से लौटती हुई सेना ऐसी प्रतीत होती है मानो समुद्र सेतु से टकराकर उत्साह पूर्वक नदियों के प्रवाह उलटे बह चले हैं। उसी समयसंध्या हो गयी और नगर में दीपक जल उठे ॥२१॥

नखतन की नगरी सी लसी। कै धौं नगर दिवारी बसी ॥
नगर असोक वृत्त रुचि रयौ। जनु प्रभु देखि प्रफुल्लित भयौ ॥२२॥

दीपकों के जलने से नगर की ऐसी शोभा हुई मानो वह नगरी नक्षत्रों की हो अथवा दीपावली ही नगर में आकर बस गई हो। अथवा वह नगर सुन्दर अशोक वृक्ष है और वीरसिंह बसत है। अतः उन्हें आया हुआ जान प्रफुल्लित हुआ है ॥२२॥

अघ अधफर ऊपर अकास, चल दीप देखिये प्रकास ॥
मनौ चतुरभुज की करि सेव। बहुरे देवलोक कौं देव ॥२३॥

(कुछ गुब्बारे उड़ाये गये हैं) कुछ चलते दीपक आकाश के नीचे के मार्ग में हैं। उनका प्रकाश ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों देवता लोग चतुर्भुज की सेवा करके पुनः देवलोक को वापस आ गए हैं ॥२३॥

वीथी विमल सुगन्ध समान। दुहु दिसि दिपत दीप समान ॥
महाराज कौं सहित सनेह। निज नैननि जनु देखत देह ॥२४॥

नगर की गलियां स्वच्छ हैं, सुगंधित हैं और समतल हैं दोनों ओर असख्य तैलयुक्त चिराग रखे हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों नगर के समस्त घर प्रेम युक्त होकर अपने नेत्रों से महाराज के दर्शन कर रहे हैं ॥२४॥

बहु विधि देखत पुर के भाय। गये राज मन्दिर ढ़ढ जाए ॥२५॥

ग्रामवासियों के अनेक प्रकार के भावों को देखते हुए वीरसिंह राजमंदिर चले गये ॥२५॥

इति श्रीमन् मण्डल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्रीराजवीरसिंघ-देव चरित्रे चौगान वर्नन नाम नवदसमः प्रकास ॥१६॥

॥चौपाई॥

दीरघ दोउ वीर विसाल। अगन दीप वृक्ष की माल॥
जोतिवन्त जन सब सुख देत। राज लोक कौ पहरौ देत ॥१॥

दोनों ही वीर बड़े और विशाल हैं। उनके अग प्रत्यग इस प्रकार दमक रहे हैं मानों किसी ने वृक्ष पर दीपक जला दिये हों। सभी लोगों को सुख देने के लिए ही वह जोतिवत हैं। ये दोनों वीर राज्य का पहरा देते हैं ॥१॥

॥दोहा॥

दान लोभ दोउ जनै पीछै डोलत साथ॥
वीरसिंघ अवलोकियौं राजलोक नर नाथ ॥२॥

दान और लोभ उसके पीछे पीछे घूमते हैं। वीरसिंह ने जाकर राज लोक को देखा ॥२॥

॥चौपाई॥

सूधी सब चन्दन की करि। अगर स्वरूप सिरनि पर धरी॥
अगरावन के बनै रसाल। चारु रक्त चन्दन के लाल ॥३॥

सारी सूधी चदन की बनाई और उसके सिरों पर अगर की बत्तिया

रखी। रसाल युक्त वन के स्वरूप को लाने के लिये सुंदर चंदन का लाल रङ्ग रखा ॥३॥

बीच बीच सुभ सुबरन बर्नी। साँकैं गज दन्तन की घनी ॥
तिनकी छवि सौं छप्पर नये। तिहू पर कलस कियै मनि मये ॥४॥

बीच बीच में सुनहली हाथी दांतों की साँकें हैं। इनकी सुंदरता से नये छप्परों की शोभा और भी बढ़ गयी है। उनके ऊपर मणियुक्त कलश रखे गये हैं ॥४॥

ऊँचे थम्भनि दुगई नीं। गजदन्तन की सोभा सनी ॥
जरे जरायन क अनुकूल। सब अंग ममिल कनक के फूल ॥५॥

हाथी के दांतों युक्त सुन्दर ऊँचे खम्बे बने हैं। उन पर सुन्दर जड़ाऊ काम है और सभी अंगों में सुन्दर सुनहले फूलों का काम है ॥५॥

बरन बरन बहु सोभा सनें। परम पवित्र चँदोवा तनें ॥
मोतिन की झालरि चहुँ ओर। झलक झूमकन अति चित चोर ॥६॥

अनेक रंगों में सुन्दर चँदोवा तने हुये हैं। उनमें चारों ओर मोतियों की झालर लटक रही है जो कि मन को चुरा लेती है ॥६॥

कँचन सुमन समेत उदार। मोहन मनिमय चारु विकार ॥
राती पियरी सेत सरूप। विद्रुम कि परदा बहु रूप ॥७॥

सुन्दर सुनहले मणियुक्त लाल पीला, श्वेत विद्रुम का पर्दा मन को मोहित करने वाला है ॥७॥

फटिक सिलनि मैं अगन बनें। सुमिल समान सोभ सौं सनें ॥
तामैं मनि मय बनौं हिंडोला। फूलत भूतल लोचन लोला ॥८॥

फटिक शिलाओं पर सुन्दर सुमिन के समान चित्र बने हुए हैं। उसमें मणियुक्त हिंडोला बना हुआ है जिसमें सुन्दर चंचल नेत्र भूलते रहते हैं ॥८॥

भीतिन अगन में सुख देति। अनि प्रतिबिंब हिये हरि लेति ॥
पलँग पलँगिया सेज समेत। सिंघासन प्रति घर सुख देत ॥९॥

दीवालों पर जो सुन्दर चित्र बने हुये हैं, वे अत्यधिक सुखदायी हैं और मन को हरने वाले हैं। सिंहासन पलग, सेज आदि सुख देने वाली सामग्री घर घर में विराजमान हैं ॥६॥

बहु भाँति मोहत अबोध । देखत उपजत बहुत प्रबोध ॥
क्यों ईस यह परम॑अमोक । सुन्दारिनि मय अद्भुत लोक ॥१०॥

अनेक प्रकार से अन्तःपुर सुशोभित है जिसे देखने से प्रबोध उत्पन्न होता है ईश्वर ने शोक रहित सुंदरियों से युक्त इस अद्भुत लोक की रचना की है ॥१०॥

मुख मंडल दुति मंडित गेह । मत सहस्रससि सहित सदेह ॥
अमृत घर पुन्य करि जानियें । मानों मदन सरासन मानियें ॥११॥

उनके काँतियुक्त मुखमँडलों को देखने से ऐसा लगता है कि सहस्रों चंद्रमा सदेह आ गये हैं मानों साक्षात कामदेव धनुष लिये खड़े हैं ॥११॥

भृकुटि विलास भग को गनै । काम धनुष सी सोभा सनै ॥
हास चंद्रिकनि चर्चित मही । स्वासा नील सुगध हैं रही ॥१२॥

भृकुटि के टेढ़ेपन को कौन कहे । वह टेढ़ी भृकुटिया ऐसी लग रही हैं माना कामदेव का धनुष हो सम्पूर्ण पृथ्वी चंद्रिकाओं के हास से मंडित है । फलस्वरूप एक एक श्वास सुगध से पूर्ण हो रही है ॥१२॥

जहं सुगधनि के अमल कपोल । दरसत जनु आदरस अमोल ॥
दासिनि हीं के अँग अगराग । स्वासा जहँ सुगन्ध बड़भाग ॥१३॥

सुन्दरियों के कपोल स्वच्छ हैं जो कि देखने में अमोल मालूम होते हैं । दासियों के अगों में भी अँगराज है, जिसके कारण बड़भागिनी श्वासा सदैव सुगधित बनी रहती है ॥१३॥

अंग दुति जहँ कुमकुमा कपूर । अवलोकनि मृगनन्द के पूर ॥
बाहु लताई चम्पक माल । तन्त्रीवर आलाप रसाल ॥१४॥

जहा अगों की काँति कुम कुम और कपूर की भाति है । देखने में वह मृगमद से पूर्ण दिखाई देती है । चम्पा की लता की भाति उनकी भुजायें लम्बी हैं और उनके अलाप बड़े ही रसयुक्त हैं ॥१४॥

निज सरीर की प्रभा प्रचन्ड । बसननि की गठना अखंड ॥
गति कौ भानु महावर जहाँ । अँसुक अग टेपिवर तहाँ ॥१५॥

उनके शरीर की कांति बड़ी ही प्रचण्ड है और वस्त्रों का गठन बड़ा ही सुन्दर है। चलने पर पैरों में लगा हुआ महावर सूर्य की भांति प्रतीत होता है और शरीर पर पतला रेशमी दुपट्टा सुशोभित है ॥१५॥

सखि कर अवलंबन उत्थान । गुरुजन प्रति साहस अतिज्ञान ॥१६॥

सखी का सहारा लेकर गुरुओं के प्रति अत्यधिक साहस का व्यक्त होना है ॥१६॥

॥ दोहा ॥

प्रकट प्रेममय रूपमय सोभामय आगार ।
चतुराईमय चारुमय सोभामय श्रगार ॥१७॥

उनका श्रृगार प्रेम, रूप, शोभा का घर है उस श्रृगार में सुन्दरता और चतुरता भी है ॥१७॥

॥ चौपाई ॥

तहँ रमनि राजति बहु भाति । पदमिनि चित्रिनि हस्तिनि जाति ॥
गवा कहू बजावति बीन । कहू पढ़ावति पढ़ति प्रबीन ॥१८॥

वहा पर चित्रणी, हस्तिनी जाति की अनेक रमणिया निवास करती है वे गात और वीणा को बजाती हैं। कहीं पर वे पढ़ाती है और कहीं स्वय पढ़ती हैं ॥१८॥

कहूँ चौपर खेलै बनिवाल । कहूँ सतरंज मतिरंज बिसाल ॥
कहू चरित्रनि चित्रहि चित्र । कहू मनिमाला गुहैं बिचित्र ॥१९॥

कहीं पर वे बालायें चौपड़ का खेल खेलती हैं और कहीं पर शतरंज का खेल खेलती हैं। कहीं पर लोगों के चरित्र की चित्र बनाती हैं और कहीं पर विचित्र मनिमाला को गुहती हैं ॥१९॥

कहूँ प्रिय मॅजन अंजन करहीं। अँगराग बहु अँगनि धरहीं ॥
कहूँ भूषनगन भूषित अग । कहूँ पहिरत उव बसन सुरंग ॥२०॥

कहीं पर बालायें मजन करती हैं और कहीं पर अञन लगाती हैं। अनेक प्रकार के शरीर पर अगराग धारण करती हैं। कहीं पर आभूषणों से भूषित उनके शरीर दिखाई देते है और कहीं वे नवीन वस्त्र धारण करती दिखाई देती हैं।२०॥

येकै बैठी आनदभरी । येकैं पौढ़ीं पलकनि परी ॥
येकै कहरी प्रीतम की प्रीत। एकै कहति कपटि की रीति ॥२१॥

कोई आनन्द से बैठी है और कोई पलग पर लेटी हुई है। कोई अपने प्रियतम के प्रेम के ढग का वर्णन कर रही है और कोई कपट की रीति का वर्णन कर रही है ॥२१॥

पिये के एक परेखे कहैं । एक सखिन की सिख सुन रहैं ॥
एकै पिये के औगुन गनै । एक अनेक भांति गुन भनैं ॥२२॥

कोइ प्रियतम की परीक्षा को कह रहीं है और कोई अपनी सखी की सीख को सुन रही है। कोई अपने प्रियतम के दोषों को कह रहीं है। और कोई गुणों का वर्णन कर रही है ॥२२॥

कहुँ भाजनि मान समेत । कहुँ मनावति सखि सुख हेत ॥ *
मारो कनि पढ़ावति एक । परवा तें सुनि हँसति अनेक ॥२३॥

कहीं पर मानिनी अपना मान कर रही हैं और कहीं पर सखियां अपनी सहेलियों के सुख की कामना करती हैं। कोई तोता को पढ़ाती हैं। कोई परवा को सुनकर हँस रही हैं ॥२३॥

जो देखिये जोई ओक । सोई मानौ मदन कौ लोक ॥२४॥

जिसे ही देखिये वही मानों कामदेव का घर है ॥२४॥

॥ दोहा ॥

मृगज मराल मयूर सुक सारो चतुर चकोर ॥
भूषन भूषति देषि कैं आँगन मैं चित चौर ॥२५॥

हिरन के बच्चा, हँस, मोर, तोता, चकोर, आदि आभूषणों से भूषित मन को चुरा लेते हैं ॥२५॥

चौपाई

इहि विधि भूषण भूपति देपि । जीवन जनम सुफल करि लेत ॥
तन मन अति आनन्दित भये । पद्मावति महल मैं गये ॥२६॥

इस प्रकार से आभूषणों से भूषित नायिकाओं को देखकर जीवन को सुफल कर ले। तन मन में अत्यधिक आनन्दित होकर पद्मावती के महल को चले गये ॥२६॥

बन्यौ कनक मय सदन सुबेस । मानौ मेंस कौ उदर सुदेस ॥
सोहति तामैं पद्मावति । स्वर्ण कलस ज्यौं पद्मावति ॥२७॥

वह सोने से बना हुआ घर इतना सुन्दर है कि मानों सुमेरु पर्वत का उदर हो। उसमें स्वर्ण की भाँति पद्मावती सुशोभित है ॥२७॥

तब नृप रंग महल मैं गये । राज श्री मानौ रुचि रये ॥
रंगमहल बहुरगिन बसैं । मूरतिवन रग जहँ लसैं ॥२८॥

तब राजा रंग महल में राज श्री पर अनुरक्त होकर गये जहाँ पर अनेक रंगों में मूर्तिवत होकर सौंदर्य स्वयं विराजमान है ॥२८॥

धरनी लालन बरनी जाई । जनु अनुराग रह्यौ लपटाई ॥
नख सिख तैं जहँ चित्रौ चित्र । परमेश्वर के परम विचित्र ॥२६॥

लाल पृथ्वी का वर्णन ही नहीं किया जा सकता। मानो सारी पृथ्वी पर अनुराग छा गया है। नख से शिख तक के परमेश्वर अनेक प्रकार के चित्र चित्रित हैं ॥२९॥

बनि आई जहँ बाला नई। निकरि चित्र तैं ठाढ़ी भई ॥
कठ माल कल कठनि बनी। बनी कर्नफूलनि दुति घनी ॥३०॥

वहाँ पर एक बाला सज कर आई जिसे देखने में ऐसा लगा कि मानो वह चित्र से ही निकल कर आई हो। गले में माला है और सुन्दर गले वाली भी है अर्थात मधुर वचनी है। उसके कर्ण फूलों की कांति भी बहुत अधिक है ॥३०॥

झलकै दुति अँग अँग अनूप । प्रति बिम्बित तहँ रूपक रुप ॥
रमा दई दान विधरनँ। जनुपति तनु गुन मूरति वत ॥३१॥

अंग प्रत्यंग से काँति झलक रही है। वहाँ पर अंग अंग का रूप प्रतिबिम्बित हो रहा है। दास ने विधिवत उपमा दी है कि *प्रत्येक अंग मानो अपने गुणों का मूर्तिस्वरूप है ॥३१॥*

प्रभु आगे कुसुमांजलि छांड़ि। नृत्यति नृत्य कलान की माड़ि ॥
नाद ग्राम स्वर पद विधि तालि। गर्भविविधि लय श्रालति काल ।३२।

स्वामी के सामने कुसुमांजलि को छोड़कर अनेक कलाओं से नृत्य करती है। नाद, ग्राम, स्वर, पद ताल अलाप आदि गर्व के साथ लेकर नृत्य कर रही है ॥३२॥

जानति गुन गमकनि बड भाग। जाति कला मूरछना राग ॥
जोति अरु यचन प्रकासहि चाल तीवर उरपति हय आडाल ।।३३।।

गमकन के गुणों को वह अच्छी प्रकार से जानती है और उसे मुर्छाना राग की कला भी ज्ञात है। तीवर उरपति, हय अड़ाल आदि नृत्य करती है ॥३३॥

राग डाट अनुरागत गाल। शब्द चालि जानै मुप नाल ॥
ढेकी उलथा अलमडिड। दुरमति सॅकनि पटरी डिड ।।३४।।

डाट राग अलापती है और शब्द चालि ढेकी, उलथा, अलमडिड दुरमति आदि नृत्य करती है ।।३४।।

तिनकी देखी भ्रमी मतिधीर। सीख्त मिस सतचक्र समीर ।।
नाचति निरसि असेप अपार। विषमय रस बरसत अमरार ।।३५।।

उनकी भ्रमित मति को देख सत चक्र समीर के बहाने वह सीखती है। सब प्रकार से विरसि नृत्य करती है और विषमय:रस की वर्षा करती है ।।३५।।

पग पटतार मुरज पटतार। सब्द होत सब एकही बार ॥
सुनिजति है प्रति ध्वनि सवगीत। मानो चित्त पठत सगीत ।।३६।।

पैरों से पटतार और मुरज शब्द एक ही बार में होते हैं और सभी गीतों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है ।।३६।।

हस्तक सँयुक्त एक । उप्जत अँग अँग भाव अनेक ॥
जित हस्तक तित दीठिहि करै । दीठि जितै तित मन अनुसरै ॥३७॥

सयुक्त असंयुक्त हस्तक नायिकाओं के अङ्ग अङ्ग से अनेक भाव उत्पन्न होते हैं । जिधर हस्तक नायिका रहती है उधी ओर सब की दृष्टि जाती है और जिधर दृष्टि जाती है उधर ही मन लुभा जाता है ॥३७॥

जित जित मन तित-- छिनभाउ। भाग साव उपजै रसराउ ॥
इहि विधि पहर तीन निस गई । सोवन कै रुचि सबकै गई ॥३८॥

जिधर मन जाता है उसी के अनुरूप मन में भाव पैदा होते हैं। इस प्रकार से तीन पहर रात बीत गई, इससे सभी के सोने की इच्छा हुई ॥३८॥

पहुँचे सुन्दर सुख रुचि रए। पार्वती के मंदिर गये ॥३६॥

अत्यधिक सुखी और रुचि के अनुकूल पार्वती के मंदिर में वीरसिंह गये ॥३६॥

इति श्रीमत् सकल भूमण्डला खण्डेश्वर महाराजाधिराज श्री राजा वीरसिंघ देवचरित्रे राजलोक वर्नन नाम बीसमः प्रकास ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

मंदिर मानों सुधा सौं सच्यौं। कैंधों हीरन की रुचि रच्यौ ॥
वासे घनसार मलय रस रस्या। अधि ऊरध सुभ गंधनि ग्रस्यो ॥१॥

मंदिर मानों सुधा से सिंचित हो अथवा हीरों से रुचि के अनुसार सजाया गया हो। सम्पूर्ण मलय और कपूर की सुगंधि से पूर्ण है। ऊपर नीचे सभी जगह सुगंध व्याप्त हो गई है ॥१॥

किधौं सोम को हृदय उदार। कै कैलास कंदरा सार ॥
दीप देखि गति मोहन लगी। मनौ मदन जोति जगमगी ॥२॥

अथवा चंद्रमा का उदार हृदय है अथवा कैलाश की कंदरा का सार है। जगमगाते हुए दीपक ऐसे मालूम होते हैं माना कामदेव की ज्योति जगमगा उठी है ॥२॥

अति मकरत मनिमय सुख दैन । चितवन विहुटि रहै नैन ॥
स्वेत सुमन मय चौसर बनैं । उरमहँ सोहत भुरिजनि घनै ॥३॥

वे मणियुक्त, सुख देन वाले अत्यधिक चमकते हैं, जिनको देखने से नेत्र चकाचौंध हो जाते हैं । चौसर स्वेत पुष्पों से बनाये गये हैं, जो कि हृदय में सुशोभित होते हैं ॥३॥

बिच बिच मनिमय माला स्याम । उपमा दीबी नृपति सकाम ॥
जग जीत्यौ मदन निचारि । धनुषनि तैं गुन धरी ख्वारि ॥४॥

बीच बीच में श्यामवर्ण की मालायें हैं, जिनकी राजा ने सकाम उपमा दी है मानो मदन ने अपने अपने गुणों को छोड़कर सारे संसार को जीत लिया है ॥४॥

कचन कुथौ जरायनि जरी । सौपैं सुखद सुगधनि भरी ॥
फूले फूलनि की अति बन्यौ । उपर चार चँदवा तन्यौ ॥५॥

कंचन और कुथों से जड़ी हुई हैं । उसकी सौपैं सुख देने वाली तथा सुगंधित हे फूले हुए फूलों का बाना बना हुआ है और ऊपर सुंदर चंदोवा तना हुआ है ॥५॥

भूमि दुलीचा सोभा सन्यौ । मनौ चितेरे चित्रित बान्यौ ॥
तापर पलिंगु जरायनि जर्यौ । रविमडल तैं जनु उद्धर्यौ ॥६॥

दुलीचा से भूमि सुशोभित है । मानो चितेरे ने भूमि को चित्रित किया है उसके ऊपर जड़ाऊ पलग है, जो कि मानो रविमण्डल से उतर करके आया है ॥६॥

सेमर फूल तूल के रए । गरद जात मखमल मढ़ि खए ।
सौभन साभा कैसे दिए । तिनके तर उपरीठा दिए ॥७॥

सेमर के लाल फूलों से युक्त है उसके ऊपर मखमल मढ़ा हुआ है और उसके नीचे उपराठा लगाया है ॥७॥

हाटक पाट सूत सों सच्यौ । मानौं सूर किरणि करि रच्यौ ॥
चकचौंधती चितवति ही हियौ । ताकौ पलग पास लै कियौ ॥८॥

बाजार को सूत से रचा है मानो उसे सूर्य की किरणों से रचा गया हो। उस पलग को देखने से हृदय चकाचौंध हो जाता है ॥८॥

परसत दरसत ही पै बनै। बसन बिछाय सौभा सनै ॥
चंपकदल की गति गेंडुवे। मनु रूपक के रूपक दुवे ॥६॥

जिसको देखने और छूने मे ही आनन्द आता है। उसके ऊपर वस्त्र बिछा देने से और भी उसकी शोभा बढ़ जाती है। चढ़ई रंग के तकिए हैं मानो वे सौंदर्य की प्रतिमा हों। ॥६॥

कुसुम गुलाबन की गल सुई। दीनी सरस कुसुम की छुई ॥
दुइ दिस कै बन भारी धरी। अति सीतल गंगाजल भरी ॥१०॥

गुलाबी रङ्ग की गलसुई है जो कि मानो कुसुम की हो। दोनों दिशाओं में घड़े रखे हैं जो कि शीतल जल से भरे हुए हैं ॥१०॥

सोहति तहँ सुंदरी सनेह। सदा सुहावनि सुभाई देह ॥
बैठे नृप सिंहासन जाइ। दान लोभ बहुतेरे सुपाइ ॥११॥

वहां पर स्नेह युक्त सुन्दरी सुशोभित है जिसका शरीर सदैव सुहावना रहता है। राजा जाकर सिंहासन पर बैठ गये और उनके साथ दान और लोभ आदि अन्य लोग भी बैठे ॥११॥

दान लोभ तन सब रस भये। देखन सुखद सालिकनि गये ॥
निपट रंक ज्यों लालच भये। मेवा की साला में गये ॥ १२ ॥

उस समय दान लोभ सभी रसों से परिप्लावित हो गये और सालिकनि को देखने के लिये चले गये। वे एक भिखारी की तरह से ललचा कर मेवा की शाला को गये ॥१२॥

मानिनीनि कैसे मन मेन। गए मान साला मै देव ॥
उलटे ललटि नैन, ज्यौं देषि। सुभ सिंगार साला की पेषि ॥ १३ ॥

वीरसिंहदेव माननियों के भाव से मानशाला को गये। पीछे घूमकर जब देखा तब उन्हें शृङ्गारशाला दिखाई दी ॥१३॥

मत्रिनि स्यौं बैठै सुख पाइ। पलक मत्र साला में जाइ ॥
चतुर कुंवर तहँ सोभत भये। धीरज धरि घन साला गये ॥ १४ ॥

फिर पलक मत्रशाला म जाकर मन्त्रियों के साथ जाकर बैठे। जहाँ पर चतुर कुँवर सुशोभित हो रहा था। उसके बाद वह धैर्य धारण कर धनशाला को गये ॥१४॥

दोहा

तेही समय सुबेस तब सुन्दर सुखद उदार।
बोले चरनायुधनि ज्यौं वंदीजन दरबार ॥ १५ ॥

उसी समय दरबार के अत्यधिक सुन्दर एव उदार वन्दीजन मुर्गों की भाँति बोले ॥१५॥

चौपाई

सुनि वंदीजन के परबाध। जागि उठयो सिगरो अवरोध
सुक सारो तब जागत भये। नृप नायकहि जगावन गए ॥ १६ ॥

बन्दियों का प्रबोध सुनकर सारा अवरोध जाग उठा। सुक सारो तब जाग उठे और वह राजा का जगाने के लिये गये ॥१६॥

सुक सारिका उवाच ॥

रामचित्र चूडामनि वीर। चद्र गयो अस्ताचल तीर ॥
अब न सोइजै परम उदार। ब्रह्म महूरत की भई बार ॥ १७ ॥

हे वीरसिंह देव! चद्रमा अस्ताचल की ओर चला गया है। हे उदार! वीरसिंह देव अब सोने का समय नहीं है क्योंकि यह समय ब्रह्ममूहर्त का है ॥१७॥

जागहु जिय गोविंद गुन गयो। श्रुति पुरान द्विज मध्दति सुनौ।
सुनौ त्रिविधि तारनि तारनी। श्री हरि की मगल आरती ॥ १८ ॥

हे वीरसिंह अब जगकर गोविंद के नाम का स्मरण करो और ब्राह्मणों द्वारा श्रुति और पुराण को सुनो। श्री हरि की मङ्गल की आरती का समय हो गया है ॥१८॥

पल पल तम नासत परितच्छि। जैसैं अन उदिम मैं लच्छि ॥
होत जात त्यौं अमल अकास। जैसे अनुभव ज्ञान प्रकास ॥ १९ ॥

प्रत्यक्ष रूप में पल पल में वह अंधकार को नष्ट करती है और जिसके लिये उसे कोई प्रयास नहीं करना पड़ रहा है। आकाश उसी प्रकार से स्वच्छ होता जा रहा है जिस प्रकार से अनुभवों से व्यक्ति प्रकाशित हो जाता है ॥१६॥

जदपि सनेह दीप मुनि भूप। तदपि देखिजैं औरहिं रूप ॥ २० ॥

यद्यपि स्नेह दीपा को राजा ने सुना, किन्तु उसे रूप और ही दिखाई दिया ॥२०॥

ज्यौं कुजाति जन आपन घात। हितहीं मैं अनहित ह्वै जात ॥ २१ ॥

जिस प्रकार कुजातीय स्वयं ही अपना घात कर लेते हैं। हित की सोचते हैं और अनहित हो जाता है ॥२१॥

छन हुँ छन तारा गन छटैं। द्विज दोसनि तैं ज्यौं कुल छटैं ॥
विरले दीसत हैं जग कंत। जैसैं कलियुग मैं कै सत ॥ २२ ॥

क्षण क्षण में तारे कम हो रहे हैं जिस प्रकार द्विजदोष से कुल घटने लगता है। जगकंत उसी प्रकार विदीर्ण रूप में दिखाई देते हैं जैसे कलियुग में सत दिखाई देते हैं ॥२२॥

कमल निवै अलि उड़ि जात ज्यौं सुभ उदय असुभ कै प्रात ॥
अलिकुल अमल कमल तजिगये। गजगडनि अवलंबित भये ॥ २३॥

भ्रमण उड़ उड़ कर कमल के पास जाते हैं। अलिकुल ने स्वच्छ कमलों को छोड़कर गज गडनि का सहारा ले लिया ॥२३॥

ज्यौं नहिं पूरण ज्ञानी लजैं। भलें सुरन तजि सुनघर भजैं ॥
फूले अमल कमल कुल अैन। पिय आवन सुनि ज्यौं तिय नैन॥२४॥

जिस प्रकार से पूर्ण ज्ञानी लज्जित नहीं होता है भले ही घर छोड़कर भुवघर भाग जावे है। कमल उसी प्रकार खिले हुये हैं जिस प्रकार प्रियतम के आगम की बात सुनकर नायिकाओं के नेत्र खिल जाते हैं ॥२४॥

अरुनोदय जग जीवित जगे। अपने अपने मारग लगे ॥
जैसे लगन उधमैं धाय। प्रजा शंक राजा कहँ पाय ॥ २५ ॥

अरुणोदय होने पर सभी जीव उसी प्रकार अपने काम में लग गये जिस प्रकार उधम, प्रजा और राजा को सशंकित पाकर लग जाता है। २५॥

जहँ तहँ श्ररुन सभा सोहियौ। कवि कुल की कविता मोहियौ ॥
अमल फटिक भित्तिन के भाग। मानौ रग अपने अनुराग ॥ २६ ॥

इधर उधर अरुणोदय की लाली कविकुल को मोहित कर रही हैं। स्वच्छ फटिक की दीवालें मानो अनुराग से रजित हो गई हैं। ॥२६॥

आनि ग्रसौं ज्यों क्रोध स्वरूप। चद्रिकानि की गुनौ अनूप ॥
सरसि नील वेदिका आनि। अमल कमलनि सी जियजानि॥ २७॥

अथवा क्रोध ने आकर ग्रस लिया है। स्वच्छ नील वेदिका सुन्दर कमलों की भाति सुशोभित है ॥२७॥

अमल कमल सग्राम तजि हियैं। सुदतन को सुखही सुखदियैं॥
झँझँकति नोल झरोखनि देपि। राहु मुखनि कैं मानहु लेपि॥ २८॥

अमल कमल अपने हृदय से सग्राम को छोड़कर सुदतों के मुख को सुख देने के लिये ही खिले हैं। मानो राहु के मुख को झरोखों से देखकर झिझक रहा है ॥२८॥

जलजावलि तारा ज्यौं धरैं। विद्रुम परदनि पत्रित करैं ॥
वदीजन बहु करत प्रसस। बोलत डोलत सारस हस ॥ २९ ॥

जिस प्रकार से जलजावलि तारा को धर लेती है और विद्रुम परदनि को पत्रित करता है उसी प्रकार वदीजन प्रशसा कर रहे हैं। सारस और हस बोलते हुये इधर उधर घूमते रहते हैं ॥२९॥

नूपुर ध्वनि सुनियत बहु भाति। कलहसनि की कलध्वनि पाँति ॥
किंकिन कक्न की झँकार। ध्वनि सुनि जत कन्त एकहिवार॥ ३०॥

नूपुरों की ध्वनि अनेक प्रकार से सुनाई देती है और कलहंसिनियों की कलध्वनि भी सुनाई देती है। ककण और किंकिण की झँकार सुनाई देती है ॥३०॥

बाजत मानौं चारिहु ओर। मंदिर मगन नगारे भौर॥
अवसि विलम्ब करौ का ईस। जागहु द्विजवर देहिं असीस॥३०॥
प्रातःकाल मंदिर के चारों ओर नगाड़े बजते हैं। हे राजन! अब उठने में विलम्ब मत करो। ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे हैं॥३०॥

विविध गुनीजन जाचक घने। सुत सोदर मंत्रि आपने॥
वड़ रावड़ सामंत परधान। सैनापति जन सजन समान॥
दहि केशव जे मध्य के दास। तीनैं सब दरसन की आस॥३१॥
अनेक गुणीजन, याचक, पुत्र सोदर, मंत्री बड़रावड़ सामंत प्रधान, सेनापति तथा जितने भी मध्य श्रेणी के दास हैं, आपके दर्शनों की आशा लगाये खड़े हैं॥३१॥

सहनाई सुनि जनु सुकुमार। रुञ्ज पखावज आवझ गार॥
झालरि झांझ भेरि झंकार। लघु दीरघ दुन्दुभी अपार॥
कैसब सबै एकही बार। बाज उठे आठहु दरबार॥३२॥
सहनाई, रुञ्ज, पखावज, आवझ, झाँझ भेरी, दुँदुभी आठों दरबार में एक ही साथ बज उठी॥३२॥

॥कवित्त॥

विप्र जाचकनि की विविध विधि मंडल की,
नारिनि की नगरी जु नैन निहरति हैं।
गंगा जू के तीर तीर सागर के तीर हूलौं,
जेती जग धर्म पुरी धरनि धरति हैं॥
इन दिन दिन दिन और सब केसवदास,
देस देस धक धक सांखिचौं करति हैं।
बाजवहा नगर नागरे वीरसिंघ जू के नगर,
नगर डूलि निगर बरति हैं॥३३॥

इति श्रीमन् सकल भूमण्डला खण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री राजा वीरसिंघ देव चरित्रे एकविंशतिः प्रकाशः॥२१॥

विप्र और याचकों की मंडली अपने नेत्रों से नगरी की ओर देखा करते हैं। गङ्गा के किनारे से लेकर सागर के किनारे तक जितनी भी संसार में धर्मपुरी है वह वीरसिंह के अभाव में दिन प्रति दिन क्षीण हुआ करती हैं। किन्तु नगर मे वीरसिंह के नगाड़ों के बजते ही प्रसन्नता छा जाती है।।३४।।

।।चौपाई।।

श्रवन सुनत सारो सुक बैन। जागि उठे पङ्कज दल नैन ॥
लै बहु नारायण के नाम। आँगन आए मन अभिराम ।।१।।

सारो सुक की वाणी सुनते ही वीरसिंह के कमलवत नेत्र खुल गये। नारायण का अनेक बार नाम लेकर वे इच्छाओं को पूर्ण करने वाले आगन में आये ।।१।।

दसननि तें निकसी सुन्दरी। महाराज के पाँयन परी।।
मानों सेवति भाँति अनंत। निधिपति की निधि मूरतिवंत ।।२।।

घरों से निकल कर सभी सुन्दरियां महाराज के चरणों पर गिरीं। मानों अनेक प्रकार निधि निधिपति की सेवा कर रही हो ।।२।।

तरुनी तरुन पपारति पाय। पोंछै सुन्छम असन बनाय।।
जल मृत्तिका मिली विधि जानि। सात प्रकार पपारे पानि ।।३।।

तरुणियां पैरों का धोकर स्वच्छ कपड़ों से उन्हें पोंछ रही हैं। जल और मिट्टी से उन्होंने सात प्रकार से हाथ धोये ।।-।।

बहुरि कुंकुमा चंदन वारि। चरण पखारे वारिय चारि।।
कर पद है शुचि श्री नरनाथ। तब दातौन लई निज हाथ ।।४।।

फिर कुंकुम श्री चंदन से पैरों को धोया। हाथ और पैरों को अच्छी प्रकार से धोकर वीरसिंह ने अपने हाथ में दतौन ली ।।४।।

लोलरि लोचन उन्नत हियौ। कंचन की झारी भरि दियौ ।।
कमल दलनि के दोना चारु। तिन में धर्यो घनौ घनसार ।।५।।

सुन्दर चञ्चल नेत्र और उन्नत हृदय है। सोने की झारी में भरकर दिया। सुन्दर कमलों के दोनों में कपूर रख कर दिया ।।५।।

तिन में बोरि बोरि कैं कुची । रुचिर दँतधावन रुचि रचि ॥
पुनि गड्डुक ढोरि तब देत । बहुरि कुंची कर औरे लेत ॥६॥
उसी म बार बार दतौन की कूची को टिकाते हैं और गड्डुक को देकर दूसरी दतौन ले लेते हैं ॥६।

बत्तिस कुंची भरि जब करै । तब मुदत धावन परिहरै ॥
धावनि करि बदन पखारि । स्वच्छ अगौंछनि पौंछे वारि ॥७॥
बत्तीस बार कूची मे जब इस प्रकार दतौन करते है तब फिर दांतों को साफ करत हैं । दतौन करके स्वच्छ जल से मुख को धोकर साफ अगौंछे से उसे पोंछते हैं ॥७॥

आछे तँह ब्राह्मननि निहारी । उपमा दीनी दान विचारी ॥
दयनि परे अधराधर मित्र । लै गंगा जल करै पवित्र ॥८॥
उसके बाद ब्राह्मणों को देखते हैं । दान ने उपमा दी कि ओठों पर मानो सूर्य की किरणें पड़ रही हों और ब्राह्मणों के देखने के बाद गङ्गाजल से स्नान करके अपने शरीर को पवित्र किया ॥८॥

बाहिर आए कासी राज । सफल भयौ सबहीं कौ काज ॥
सिंहासन बैठत कासीस । गनक चिकत्सनि दई असीस ॥६॥
इसके बाद काशीराज बाहर आये जिससे सभी के कार्य सफल हो गये'। काशीराज के सिंहासन पर बैठते ही सभी चिकित्सकों ने आशीर्वाद दिया ॥६॥

सुभ ग्रह जोगलपत तिथि जानि । सौरन चडु सुनायौ आनि ॥
नीरा निरखि मुदित मन भये । रोचक पाचक ओमद दये ॥१०॥
शुभ नक्षत्र तथा तिथि के समय को जानकर चण्डु ने उसे आकर सुनाया । नीरा को देखकर मन म बहुत ही आनन्दित हुये और पाचकों को सुन्दर आमद दिए ॥१०॥

आये प्रोहित प्रथम प्रधान । आयुष धन रत्नक धन धान ॥
आये कवि सैनापति धीर । आये मन्त्री मित्र वजीर ॥ ११ ॥

प्रथम पुरोहित आये और उसके बाद आयुध धनरक्षक आवे। फिर सेनापति, मन्त्री मित्र वज़ीर भी आये ॥११॥

सुनि नृप सत्रु मित्र की बात। रैयत रजपूतनि की बात ॥
कहि सुनि राज काज व्योहार। याचक जन को करी सनमान ॥१२॥

राजा ने शत्रुमित्र, प्रजा और राजपूतों की बात सुनकर राज कार्य के व्यवहार को बनाया और याचकों का सम्मान किया ॥१२॥

पसु पच्छिन के दुख सुख सुनें। अतर भाय सबै के गुनैं ॥
आए तब मर्दनिया जबै बहुरे सब अधिकारी तबै ॥ १३ ॥

पक्षियों के सुख दुख को भी सुना और सभी के आन्तरिक भावों को समझा। जब राजा मर्दनिया को चले आये तब सभी अधिकारी वापस चले गये ॥१३॥

॥ कवित्त ॥

निपटि नवीन रोग हीन बहु छीर लीन पीन पीन तनय हरत है। तामैं मढ़ा पीठ लागे रूप की पुरीनि दीठि स्वर्ण श्रृंग मही देखी आनन्द भरत है॥ तामे की दोहनी स्याम पाट का ललित लाइ, घटनि सों पूजि पूजि पायनि परति है। सोभन सनोढियन बीर सिंह दिन प्रति गो सहस, समन दान दई भोजन करत हैं ॥ १४ ॥

रोग से बिल्कुल दूर है। छीर में लीन है। शरीर की पीड़ा का हर लेता है। उसके ऊपर की पीठ से मढ़ा जाता है और रूप्टि सोने की शृङ्ग को देखकर बहुत ही आनन्दित हो जाती है। ताम्बे की दोहनी है। श्यामपाट की सुन्दर लोई है और घटों से पूज पूज कर पैरों पर पड़ता है। वीरसिंह देव सहस्र गायें सनाढ्य ब्राह्मणों को देकर भोजन करता है ॥१४॥

॥ दोहा ॥

गंगाजल स्नान करि पूजे परम देव ॥
सुनि पुरान गोदान दै कीनें भोजन भेव ॥ १५ ॥

गङ्गाजल से स्नान करके पूर्णदेव की उपासना की पुराण को सुना और फिर गोदान देकर भोजन किया ॥१५॥

॥ चौपाही ॥

वीरसिंघ भोजन करि गए। राव रमैं रतनपति ठए ॥
राजा रतन शृंग पर जाइ। देखी बनराजी सुख पायी ॥ १६ ॥

वीरसिंह भोजन करके रतन शृङ्ग पर चले गये और वहाँ पर उन्होंने सुखदायी बनराजी को देखा ॥१६॥

भौंरे आप लिलोंस वीर। तरलित कोमल मलय समीर ॥
तनु तन मनौ अतनि का भुजा। कैंधौं बनी बसंत की धुजा ॥१७॥

वीरसिंह ने भौंरे को देखा और वहाँ पर मन्द मन्द मलय गिरि की समीर चल रही थी। सम्पूर्ण शरीर मानो अतनि का भुजा हो अथवा बसन्त का ध्वजा हो ॥१७॥

ललित लवंग लता हिंडोल। भूलत मधुप मत्त ध्वरि लोल ॥
बोली कल कोकिला सुरस। मधु रितु के जन कहत संदेस ॥ १८ ॥

चचल लवंगलता और लवली लतायें फूली हुई हैं। जिन पर चचल मन्द मधुर भूल रहे हैं। कोकिला बोल रही है मानो यह बसन्त ऋतु के संदेश को कह रही हो ॥१८॥

उतर्यौ भवन भूप तब देखि। सुनि सुंदरी समेत विसाखि ॥
मदन विजय कौ दुदुभि बजी। सबही कामदेव विधि सजी ॥ १६ ॥

तब उसे देखकर राजा सुंदरियों समेत भवन में आया। उसी समय कामदेव की दुंदुभी बजी जिससे कारण सभी ने अपने को अनेक प्रकार से सजाया ॥१६॥

घर घर प्रति आनन्दयौ लोग। प्रगटपै पुर मैं मदन प्रयोग ॥
नासा निसि अरुनोदय भयौ। राज लोग सब उपवन गयौ ॥ २०॥

घर घर में आनन्द मनाया जाने लगा मानो कामदेव गाव में प्रकट हो गया हो। रात्रि समाप्ति हुई, प्रातःकाल हुआ और सभी लोग उपवन को चले गये ॥२०॥

कामदेव कौ मण्डन श्रान । पहिरि बसन बहु रङ्ग निधान ॥
चालिबे कौ चित कियौ सुजान ॥ २१ ॥

कामदेव के प्रभाव के कारण से अनेक रगों के कपड़े लोगो ने धारण किये और सभी ने चलने का निश्चय किया ॥२१॥

पीसवान एक रङ्गित जानि । ठाढ़ौ किय यह आगे आनि ॥
निलिष मूल चित कौ मो दूरै । चञ्चल चारु नृत्य सौं करै ॥ २२ ॥

एक रङ्गित जानकर पीसवान ने उसे लाकर आगे खड़ा कर दिया। सुन्दर चञ्चल नृत्य के द्वारा थोड़े समय के लिये वह सभी के हृदयों को आकर्षित कर लेता है ॥२२॥

तरल तेज छिति सुम्मन खनै । चञ्चलता सिखवत जन मनै॥
तिहि चांढ चलत रूप गुण बढ़यो । जन मन उपर मनमथ चढ़यौ॥२३॥

सुन्दर मना को उसका तरल तेज आकर्षित कर रहा है और मानो वह चञ्चलता सिखा रहा हो। उसके ऊपर चढ़ते ही सौंदर्य और भी अधिक बढ़ गया, मानो मन के ऊपर कामदेव सवार हो गया हो ॥२३॥

प्रफुलित अमल कमल कुल ताल । तँह कोलाहल करत मराल॥ ॥
किसुकमय उपवन मग माल । पथिक रुहिर जनु ह्वै गये लाल २४।

जहा पर सरोवर कमलो से प्रफुल्लित हैं वहा पर हंस कोलाहल कर रहे है। मार्ग म किंसुक का उपवन है जो कि पथिकों के रुधिर से मानौ लाल हो गया हो ॥२४॥

त्रिय सग श्रम कन सिंचित भये। पुलकित बकुल रुचिर रुचि रये॥
बरण प्रहारण प्रमुदित भये। मोक अमोकनि तें रुचि रये॥२५॥

मार्ग स्त्रियों के श्रमकणों से सिंचित हो गया। उस मार्ग म आनन्दित बकुल सुशोभित हैं। बरण प्रहारण भी आनन्दित हुए। शोक अशोक से रुचिर हो गए ॥२५॥

सीतल अमल कमल उर धरै। मदन अनिल विरही जन जरै॥
किधौं मित मन पकरण काज। हाथ पसारे मनमथ राज॥ ८६॥

कमल शीतलता को हृदय में धारण करता है और विरही जनों को कामदेव जला रहा है। मानो मिनमन के काम के लिये कामदेव अपने हाथ फैला रहा हो ॥२६॥

॥ दोहा ॥

जितने नागर नगर नर जहँ तहँ केसव दास।

देखि देखि नरनाथ कौं बरनत बुद्धिबिसाल ॥ २७ ॥

जितने भी नगर में नागर हैं वे सभी अपनी बुद्धि के अनुरूप नरनाथ की प्रशंसा कर रहे हैं ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

इन शृंगार वृक्ष को मूल। गिरिवर गुनगन कौ अनुकूल ॥
तरुगन चतुरनि कौं मधुमास। जग जन कौ आदरस प्रवास ॥ २८॥

मानो वृक्ष शृङ्गार का मूल हो और गिरिवर गुणों के अनुकूल हो। स सार के लिये आदर्श रूप तरुगण मधुमास लेकर आये हैं ॥२८॥

कीरति लक्ष्मी कैसी गेह। बिधा लता कुंज की मेह ॥
सकल सत्य शुचि कैसो सेतु। कै द्विज कैसो धरननि केतु ॥ २६ ॥

लक्ष्मी की कीर्ति के समान घर है। कुञ्ज की लतायें विद्या हैं। सम्पूर्ण सत्य और पवित्रता का सेतु है। अथवा पृथ्वी पर ब्राह्मणों का केतु है ॥२६॥

दिव्य कंज पर मानो हंस। उदयाचल पर मन रवि अंस ॥
येही समय मदा सुखकन्द। प्राची दिशि परगट भौ चन्द ॥ ३० ॥

अथवा दिव्य कञ्ज के ऊपर हंस है अथवा उदयाचल पर सूर्य है। इसी समय सुखदायी चाँद पश्चिम दिशा में प्रकट हुआ ॥३०॥

चन्दबदनी चन्दहि तिहिं घरी। बरनत बिबिध भाँति तिहिं भरी ॥
कन्द कुसुम नासहि का मनो। मनिमय मनो मुकुट सोभनो ॥ ३१॥

उस समय नायिकायें चंद्र का अनेक प्रकार से वर्णन करने लगीं। मानो कन्द कुसुम को नष्ट करने के लिये ही मणियुक्त मुकुट सुशोभित हो रहा है ॥३१॥

नभ श्री कैसो सुभ तायक । मुक्ता मनिमय सोभत ग्रक ॥
बानरपति सौ तारासग । श्वेत छत्र जन धरयो अनग ॥ ३२ ॥

आकाश मे मुक्ता मणियो से युक्त सुशोभित है । बानरो की सेना की भाति उसके साथ में तारे हैं और मानो कामदेव ने स्वय उस पर श्वेत छत्र लगा रखा हो ॥३२॥

गगन गार्भिनि गगा तीर । फूल्यो पुण्डरीक सौ धीर ॥
महाकाल अहि कैसो अरड । गगन सिन्धु जनफेन अखण्ड ॥३३

उसी के पास आकाश गङ्गा है जिसके पास पुण्डरीक पुष्प का भाति फूला हुआ है । मानो वह महाकाल के समय का अहि अरड हो अथवा आकाश सिधु का अखण्ड फेन है ॥३३॥

मदन नृपति कौ गगन निकेत । राजत कलस सुदुबौ समेत ॥
सिंदूध सुन्दरी कौ जन धन्यौ । दन्त पत्र सुभ सोभा भान्यौ ॥ ३४॥

अथवा आकाश में कामदेव के रहने का घर है । अथवा सुन्दर कलश विराजमान हैं अथवा सिधु सुन्दरी है जिसके दत पत्रों की शोभा फैली हुई है ॥३४॥

॥ दोहा ॥

चारु चन्द्रिक सिन्धुमय सीतल स्वच्छ मलेज ॥
मनौ सेषमय सोभिजै हरिनाधिष्ठित सेज ॥ ३५ ॥

सुन्दर शीतल चद्र इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानो भगवान विष्णु शेषनाग की शैय्या पर अधिष्ठित हो ॥३५॥

॥ कवित्त ॥

आनि दिवि देव अब पूज्यौ जग जीत सब पूजा जगमग रही केसर निवास में । पकन समेकन मृगक अक अकि तन मृगमद घरांचतु मोहत सुवास मैं ॥ कधुकुरसा हिनन्द सांचैहो तुम्हारें यह देखियक जस कन्द चन्द चन्दन अकास मैं चन्दन चमक चारु चाँदिनीनि जल बिन्दु फूल स्वच्छ अच्छत तारिका प्रकास मैं॥३६॥

दिवि देवों ने आज संसार के जीवों की जो पूजा की है वही निवास में जगमगा रही है। हे मधुकर शाहि के पुत्र सच मुच यश को ही चन्द्र रूप में फैला हुआ आकाश में देखता हूँ। तुम्हारे चन्दन की चमक ही चाद की चाँदनी और तारों के प्रकाश मे है ॥३६॥

॥ चौपाही ॥

त्तरयो भूप भुवन हैं देर्गी। सुन्दरीनि सौं मधु रितु लेखि॥
निसिं नामी अरुनोदय भयो। राजलोक सब उपबन गयो॥ ३७॥

राजा घर से बाहर निकले और उन्हाने सुन्दरियो के समान बसन्त ऋतु को देखा। रात समाप्त हुआ और प्रभात बेला आयी। सारा राजलोक उपवन की ओर चला गया ॥३७॥

पमवान नृप आयौ जानि। घोरौ ठा मौं कीनो आनि॥
लसै रेतुरुन शुभ्रनि भनो। सांवत चंचलता मन मनो॥ ३८॥

पार्श्ववान ने राजा को आया हुआ जानकर घोड़े को लाकर खड़ा कर दिया। उसके रनुकन इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानो मन चञ्चलता सीख रहा है ॥३८॥

तिहि चढ़ि चलत रूपगुन वढयौं। जनु मन उपर मनमथ चढ़यौं।
मारग कछू विलम्बन न कर्यौं। उपबन दीठि राय की पर्यौं॥३६॥

उसके ऊपर चढ़ते ही उसका रूप और गुण बढ़ गया और मानो मनमथ मन के ऊपर सवार हो। मार्ग में बिना बिलम्ब किये ही उपवन की ओर राजा चल दिया ॥३६॥

दान लोभ सों सोभा सनै। गये बाग मे तीनो जनै॥
सब हैं अपनी देह दुराय। देखी जुवती मण्डली जाए॥ ४०॥

दानलोभ से सुशोभित होकर तीनो लोग उपवन को गये। सबसे अपने को छिपा कर युवती मण्डल को जाकर देखा ॥४०॥

कोऊ उर सींचति तम मूल कोऊ लोरति फूले फूल॥
एकै चतुर चुगावति मोर। लीनै सारो सुक चितचोर॥४१॥

कोई अपने हृदय मूल को सींच रहा था और कोई फूले हुये फूलों को तोड़ रहा था। कोई चतुर मोर को चुगा रहा है और कोई चित्त को चुराने वाले सारोमुक को लिए है।

अमल जलज कर कमलनि लियें। हम चुनावति चुचनि छियें॥
जब अकुर कोमल कर धरैं। मृगनि चरावति पैं नहिं चरैं॥४२॥

हाथ में कमल लिये हुए हंसों को चुगा रही हैं। जब कोमल करों में अकुर धारण कर लेती हैं तब मृग चराने पर भी उनके नहीं चरते हैं॥४२॥

सूक्ष्म वाणी दीरघ अर्थ। पढ़नि पढ़ावति सुकनि समर्थ॥
दक्षिण दशा कहावै वाम। गुनगन वलित सुअबला नाम॥४३॥

थोड़ा बोलती हैं किन्तु उसमें अर्थ अधिक रहता है। पढ़ती हैं और सुकों को भी पढ़ाती हैं। दक्षिण दशा वाम कहलाती है। अनेक गुणों से पूर्ण होने पर भी अबला नाम है॥४३॥

अचल चित्त चितवनी चलरना। सुन्दर चातुर तन मन घना॥
उर अन्तर मृदु उरज कठोर। सुद्ध सुभाव भाव चितचार॥४४॥

चित्त है और चितवन चञ्चल है और तन मन से बहुत ही चतुर हैं। हृदय बड़ा ही कोमल है, किन्तु उरोज बड़े ही कठोर हैं। स्वभाव शुद्ध है, किन्तु उनके भाव चित्त को चुराने वाले हैं॥४४॥

बिम्बाधर बहु बिधनि धरैं। मोहन हारिन के मन हरैं॥
करत करै करता मतिमन्द। तिनके बदन चन्द सम चन्द॥४५॥

अनेक प्रकार से बिम्बाधर को धारण करती हैं और लोगों के मनों को हर लेती हैं। उनके मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर हैं॥४५॥

तिन देखत जिय लाजित रहै। जिनके मोर चन्द्र लैं करैं॥
अति चचल नैनानि अनूप। रचे बिरचि बनाई सरूप॥४६॥

उनको देखने से मार तक मन म लज्जित हो जाते हैं। उनके नेत्र बहुत ही चचल हैं और उनके सौंदर्य को ब्रह्मा ने स्वयं रच बग है॥४६॥

जानि अमन विधि कियें सुजान। खञ्जन मीत मदन से बान॥
रूप अनूपम रूपक भये। श्री फल अमल सदा फल ठये॥४७॥

जान कर विधि ने सुजान कर दिया। खञन मीन और मदन के बान सदृश हैं। उनका सौंदर्य स्वयं रूपक है। उसमें श्रीफल के अमल फल लगे रहते हैं॥४७॥

दारिम से सोहत सुभ दंत। करत करें करतार अनंत॥
अति दुति दीन जानि द्विज नाद। राखे मूँदि अनारनि माद॥४८॥

उनके दांत दाड़िम की भांति शोभित हैं। द्विजनाद ने उन्हें अत्यधिक हीन जानकर अनार के बीच में बन्द कर रखा॥४८॥

तिनसों तीन्यों जन धरि धीर। बरनन लागे सकल सरीर॥
जिनके दीरघ कोमल केश। सूछम स्यामल सुमिल सुदेश॥४९॥

तीनों ही लोग धैर्य धारण करके उनके उनके शरीर के सौंदर्य का वर्णन करने लगे। उनके बड़े बड़े काले सुन्दर बाल हैं॥४९॥

उज्जल झलकति झलक सुदाम। प्रभु मन होत देखि कै दास॥
तिनके बैनी गुही विचार। रूप भूप कैसी तरवारि॥५०॥

उन बालों की झलक देखकर ही मन उनका दास हो जाता है। उन बालों के बीच में गुथी हुई वेणी ऐसी लगती है मानो राजा की तलवार हो॥५०॥

प्रिया प्रेम की देखनहारि। प्रतिभट कपटनि डाटन हारि॥
कियों सिंगार सरित सुखकारी। बचक तानि बहावनि हारि॥५१॥

प्रियतम के प्रेम को देखने वाली हैं। कपट को प्रतिदिन डाटने वाली है। सुख देने वाला शृङ्गार किया जो कि वंचकता को बहाने वाला है॥५१॥

कियों सिंगार लोक कै जानि। कंचन पत्र पांति सौं मानि॥
कैधौं प्रेम आगमन काल। रचे पावड़े रूप विशाल॥५२॥

स हार को जानकर शृङ्गार किया, जा कि कचन पत्र का पाँति के समान है ! अथवा प्रेम के आगमन का काल जानकर विशाल पाँवड़े रचे हों ॥५२॥

पाटिनि चिलक चित्त चौगुनी। मानों दमकति घन दामिनी ॥
सेंदुर माँग भरी अति भली। तापर मोतिन की आवली ॥५३॥

पाटिन की चमक अधिक है माना आकाश म बिजली चमक रही हो माग म सदु र भरा हुआ है, उस पर मोतिया की अवली है ॥५३॥

गंग गिरा सो जनु तनु जोरि। निरखी जनु जमुना जल फोरि ॥
सीस फूल सिर उरया उराई। माग फूल सोभयन सुभाई ॥५४॥

वह मोती की अवली ऐसी मालूम होती है माना यमुना क जल को फाड़ कर गङ्गा जी निकली हो। सिर तथा माग पर लगे हुये फूल सुशोभित है ॥५४॥

वेना फूलनि को बरमाल। वेंदा मध्य भाल मनि लाल ॥
तम नगरी पर तेज निधान। वैठे मनो बारहु भानु ॥५५॥

वेणी सुन्दर फूलो स गुथी हुई है। बीच मस्तक पर लाल बेंदा है। माना अधकार पूर्ण नगर पर तेज हो अथवा माना बारहो भानु बैठे हो ॥५५॥

भृकुटि कुटिल बहु भाइन भरी। भाल लाल दुति दीसति खरी ॥
मृगमद तिलक रत्न जुग बनी। तिनकी सोभा सोहत घनी ॥५६॥

टेढ़ी भृकुटी अनक भावो स बनी हुई है। भाल पर लाल कांति बड़ी ही सुन्दर दिखाई देती है। मृगमद का लगा हुआ तिलक ही बड़ा सुन्दर लगता है ॥५६॥

जनु जमुना जल लखि सुभगात। परमन पिवहि पसारे हात ॥
लोचन मनो मैन के जन्त्र। भुज युग ऊपर मोहन मन्त्र ॥५७॥

ऐसा मालूम होता है कि जमुना के सुन्दर जल को देखकर पिता (सूर्य) ने उसके स्पर्श करने के लिये हाथ फैलाये हो। उनके नेत्र मानो कामदेव के जत्र हैं और भुजायें कामदेव के मन्त्र हों ॥५७॥

नासा दुति मय जग मोहियै । पहिरै मुक्ताफल मोहियै ॥
भाल तिलक रवि कौं व्रत लियै । रूप प्रकास दियौ सौ दियौ ॥५८॥

नासा की दुति ने सारे संसार को मोह लिया है । मुक्ताफल के कारण नासा और भी सशोभित हो रही है । भाल में लगा हुए तिलक रवि के समान प्रतीत होता है ५८

लाभ रहति लखि लोचन दवौ । अरुन उदै तारो सौ उवौं ॥
आनद लतिका कैसी फूल । सूंघत सोस सुधा कौं मूल ॥५६॥

दोनों नेत्रों को लोभ रहित देखकर अरुनतारों की भांति उदित हुआ आनन्द लतिका के समान फूल है जो कि सूंघने पर अमृत का मूल मालूम होता है ॥५६॥

वलित ललित लावन्य कपोल । गोरे गोल अमोल कपोल ॥
तिनमैं परम रुचिर रुचि ईई । मृगलोचल मारीचिकामई ॥६०॥

उनके कपोल गोरे सुन्दर, ललित है । उन कपोलों में मरीचिका के समान सुन्दर नेत्र हैं ॥६०॥

श्रुति तारक सहित देखियै । एकचक्र रथ सौ लेखियै ॥
झलकति झुनझुलीन की पांति । मानौ पीत ध्वजा फहराति ॥६१॥

कान तारक सहित ऐसे मालूम हो रहे हैं मानो एक चक्र रथ हो । झुनझुली न की पंक्ति झलक रही है मानो पीत ध्वजा फहरा रहा हो ॥६१॥

मानिकमय खुटिला छवि मढ़े । तिनपर तमकि तपनि जनु चढ़े ॥
द्विजगन अधर अरुन रुचि रये । देखि दाड़िमी लज्जित भये ॥६२॥

खुटिल मानिक से मढे हुये, मानो उन पर तमक कर सूर्य चढे हुये हों । द्विजगन के अरुण अधरों को देखकर दाडिम लज्जित हो गये ॥६२॥

किधौं रतन मय सन्ध्योपासन । किधौं वाग देवी आराधन ॥
तिनके मुख सुवास कौं लिये । उपवन मलय विपिन सौ कियै ॥६३॥

अथवा रब युक्त सन्योरासन है अथवा वागदेवी की आराधना है उनके मुखों की सुवास को लेकर मलय से उपवन को सुवासित कर दिया है ॥६३॥

मृदु मुसुक्यानि तला मन हरै। बोलत वान फूल से झरै ॥
तिनकी वानी मुनी मनहारी। वानी वाना धरी उतारि ॥६४॥

उनकी मृदु मुसकान मनों को हर लेती है और उनके बोलते ही मानों फूल भर रहे हों। उनकी वाणी मुनियों तक को हरने वाली है। मानो वीणा को हेय कर दिया हो ॥६४॥

लटकै अलक अलक चीकनी। सूक्ष्म श्याम चिलक सौं सनी ॥
नक मोती दीपक दुति जानि। पाटी रजनि दियें हित आनि ॥६५॥

सुन्दर चिकने काले बाल लटक रहे हैं। नाक में जो मोती पहने हुए है वह दीपक की भाँति है और वेणी रात्रि रूपी हृदय में मानों सुशोभित है ॥६५॥

जोति बढ़ावत दसा उतारि। मानौं स्यामन सींक पसारि ॥
कवि हित जतु रवि रथ तैं छोरि। स्याम पाटकी डारी डोरि ॥६६॥

मानो श्यामा सींक को फैलाकर दसा को हटा कर ज्योति को बढ़ा रहा हो। श्याम पाटकी को डोरि मानो कवि हित के निमित्त रवि के रथ से छोड़कर डाल दी गई है ॥६६॥

रूपक रूप रुचिर रस भीन। पातुर पुतरी नैन नवीन ॥
नेह नचावत हित नरनाथ। मरकट लकुटि लिये कर हाथ ॥६७॥

मीन की भांति सुन्दर नेत्र की पुतली नायिका नरनाथ के सामने प्रेम के लिये उसी प्रकार नचा रही है जिस प्रकार बन्दर को हाथ में लकुट लेकर नचाया जाता है ॥६७॥

॥दोहा॥

गगन चन्द्र तें अति बड़ौ वियमुख चन्द्र विचारु ॥
दई ।रचारी विरचि जहँ कला चौगुनी चारु ॥६८॥

आकाश के चन्द्र से प्रिय के मुख का चन्द्र बहुत बड़ा है क्योंकि वहा पर विरंचि ने विचार करके चन्द्र से चौगुनी कला दे दी है ॥६८॥

॥दण्डक।

दीना ईस दण्डबल दल बल द्विजबल,
तप बल प्रबल समीति कुल बल की।
केसव परमहस बल बहु कोस बल,
कहा कहों बढ़ाये बड़ाई दुग जलकी॥
सुखद सुवास विधि बल चन्द्रबल श्री की,
बल करत हो मित्र बल रहा पल पल की।
मन्त्र बल हीन जानि अबला मुखनि आनि,
नारकेही छुड़ाई लीनी कमला कमल का॥६६॥

कमल म सब प्रकार के वे ही बल हैं जो एक राजा म होते हैं, किन्तु तुम्हारे बल स हीन जान इन अबलाओं के मुखो ने कमल की शोभा बलपूर्वक छीन ली है क्योंकि इन अबलाओं के पद्मधर हैं। राजा में राजदण्ड धारण करने से शक्ति होती है वैसे ही कमल को भी दण्ड कमलनाल स शक्ति मिलती है। राजा के समान कमल का भी दल का बल है जैसे राजा को वीरता का बल रहता है वैसे ही कमल को भी बीज बल है, तप बल और कुलबल भी राजा के समान ही हैं। राजा को जैसे तपस्विया का बल रहता है वैसे ही कमल को सुन्दर हंसों का बल रहता है। राजा की भाति कमल का भी कोष बल प्राप्त है और जैसे राजा को कोट और जलखाई का बल होता है वैसे ही कमल को भी अगाध जलखाई का बल रहता है। राजा को विधि (कानून) बल होता है कमल को ब्रह्मा का बल है। जैसे राजा को चन्द्र, लक्ष्मी और विष्णु का बल रहता है वैसे ही कमल का भी है क्योंकि चन्द्रमा कमल का भाई है लक्ष्मी बहिन और विष्णु बहनोई है। जिस प्रकार राजा को अपने मित्र का बल रहता है वैसे ही कमल को सूर्य का बल रहता है।

किन्तु इतने सब बल होते हुए भी नायिकाओं के मुखों ने कमल,को तुम्हारे मुखों से हीन तथा अपने का तुम्हारे बल से बलिष्ट जानकर कमल की सुन्दरता को शक्तिपूर्वक छीन लिया है ॥६६॥

॥दोहा॥

रमनी मुख मण्डल निरखि राकारमन लजाइ।
जलद जलधि सिव सूल मैं रासत बदन छिपाइ॥७०॥

इन स्त्रियों के मुख मण्डलों को देखकर पूर्णचन्द्र लज्जित होकर बादल में, समुद्र में, शिव के मस्तक पर और सूर्यमण्डल में जाकर मुंह छिपाता फिरता है (चन्द्रमा प्रत्येक अमावस्या को सूर्य मण्डल में होता है।) ॥७०॥

॥चौपाई॥

ग्रीवान ग्रीवनि इक बहु भांति। अरुन पीत सित असित प्रभाति॥
बगसि रागमाला सा आनि। सीखन सकल राग मलानि॥७१॥

उनके गलों म लाल काले, पीले सफेद अनेक प्रकार के आभूषण शोभित हैं। ऐसा मालूम होता है कि मानों रागों के अनेक पुत्र रागिनी सीखने के लिये आ गये हैं ॥७१॥

कोमल सब्द निबन्ध। सुपृष्टा अलङ्कार मय मोहन॥
काव्य पद्धतिहिं सोभा गहै। तिन सौं बाहु कास कवि कहौं चित्त॥७२॥

जैसे किसी कवि की कविता कोमल शब्दों वाली सुन्दर छंद वाली अलकार युक्त और काव्य प्रेमियों का मन आकर्षित करने वाली होती है उसी के अनुसार इनकी भुजायें हैं क्योंकि उनकी बाहु भूषणा से शब्द होता है। अत. इनके बाहुवश काव्य पद्धति की शोभा धारण किये हुए हैं ॥७२॥

नवरंग नव असोक के पत्र। तिन मैं रासति राज कलत्र॥
देखु दान दीनन के नाथ। हरति कुसुम के हारित हाथ॥७३॥

हे देव ! देखिये तो जो हाथ फूल तोड़ने में थक जाते हैं जिनकी उगलियाँ नवीन अशोक पल्लव की भाँति कोमल हैं ऐसे ही नाजुक हाथों में ये दासियाँ राजरानी को रखती हैं ॥७३॥

सुन्दर अँगुरिन सुन्दर बनी। मनिमय मुंदरन सोहति घनी॥
राज लोक के मनु रुचि रये। कामिनीन जनु कर गहि लये ॥७४॥

सुन्दर उँगलियों में रत्नजटित सोने की अगूठियाँ पहने हैं। वे ऐसी दिखाई पड़ती हैं मानो इन स्त्रियों ने राजघराने के लोगों के सुन्दर मन अपने हाथों में कर लिये हैं ॥७४॥

अति सुन्दर उदार उर जात। सोभा सर मैं जनु जलजात॥
काम कुवर अभिषेक निमित्त। कलस रचे जनु जोवन चित्त ॥७५॥

उन पर सुन्दर कुच है मानो शोभा के सरोवर के कमल खिले हैं अथवा कामयुवराज के अभिषेक के लिये यौवन मित्र ने सोने के कलश बनाये हैं ॥७५॥

॥दोहा॥

रोम राजि शृङ्गार की ललित लता सी लोभ।
ताहि फले कुच रूप फल लै जनु जग की सोभ ॥७६॥

रोमावली मानो शृङ्गार की सुन्दर लता है उसी में ये दोनों कुच समस्त संसार की शोभा का समूह लेकर मानों दो फल फले हैं ॥७६॥

॥चौपाई॥

अति सूक्षम रोमालि सुवेस। उपमा दान दई सब सेस॥
उर मैं मनौं मैन रचि रेख। ताकी दीपति दिपति असेषु ॥७७॥

सुन्दर बारीक रोमावली है। दान ने विशेष प्रवीणता से उसकी उपमा यों दी कि मानो इन दासियों के हृदयों में काम की रेखा है ॥७७॥

बामन बाँधि एक बलि लोभ। तीनि लोक की लीनी सोभ॥
बाँधि त्रिबलि त्रिय त्रगुणित भयी। नव नव खंडन की छबि छई ॥७८॥

बामन ने एक बलि को बाध कर तीन लोकों की शोभा ली। राज को बाँध कर त्रियों व गुण त्रिगुणित हो गये और उनमें नवो खण्डों की शोभा विराजमान हो गई ॥७८॥

कटि कौ तत्व न जान्यौ जाई। ज्यों जग सतन असत कह जाई॥
इहि तें और तिम्ब गुरु भयौ। करिके विभव लूटि सब लये ॥७६॥

हे प्रभु! इस जगत में पुण्य और पाप सुनते तो हैं लेकिन ठीक समझ नहीं आता कि क्या पुन्य है और क्या पाप है वैसे ही उनकी कमर है उसके बारे में समझ में नहीं आता कि वह है या नहीं और इससे भी बढ़कर उनके नितम्ब हैं जिन्होने संसार की शोभा को लूट लिया है॥७६॥

सिसुता अति बारुनि नियम सुजान। उर मैंलोभ लोभ मतिमान॥
अति जंघा सुन्दर युग जानि। उज्जल प्रबल अलोग बखानि॥८०॥

सिसुना पूर्ण सुन्दर बारुनि हृदय में लोभ उत्पन्न करती है। दोनों ही जघायें बहुत ही सुन्दर हैं जो कि उज्ज्वल और प्रबल हैं॥८०।

छवा छविनै छवि के हियें। नैननि पैनें जाहि न छियें॥
चरण महावर चर्चित चारु। तिनकौं बरनत दान उदार॥८१॥

ऐसी इतनी स्वच्छ और सुन्दर है कि उन्हें नेत्रों से भी छुआ नहीं जा सकता है। उनके चरणों में जो महावर लगा है दान उसका वर्णन करता है॥८१॥

कटि जानु जनु उपवन थरी। मानिक तरुता तरवनि धरी॥
नव दुति बरनत कवि कुल थकै। पियमन की मानी बैठकै॥८२॥

कटि ऐसी मालूम होती है कि मानो उपवन की थरी हो। मणियुक्त जूती उसने अपने पैरों में पहन रखी है। कवि कुल उसकी नव दुति का वर्णन करते-करते थक जाता है मानौ वह प्रियतम के मन बैठ गई है॥८२॥

नूपुर मनिमय पाइनि बनै। मानौं रुचिर विजए बाजनै॥
पग जुग जेहरी रूप निधान। रतिमह कैसे सुभ सोपान॥८३॥

पैरों में मणियुक्त नूपुर है, मानो वे सुन्दर विजय के बाजने हैं। दोनों ही पैर रूप के निधान हैं, वे रतिगृह तक पहुँचने के लिये सोपान हैं। कमर में सुन्दर करधनी ऐसी सुशोभित है मानो अनेक चन्द्र हों। शरीर पर अनेक रंग की अंगिया को धारण किये हुए हैं। चलने पर चित्त को हर लेती हैं ॥८३॥

छुद्रघण्टिका कटि सुभ वेष। ससि अनन्त कैसे परवेष॥
वरन वरन अँगिया उर धरै। चौकी चलत चित्त मनु हरै॥८४॥

कमर में घण्टिका ऐसी सुशोभित होती है मानों अनेक चन्द्र हों। अनेक रंगों की अंगिया पहने हुए हैं उनकी चौकी चलने पर मन को हरती है ॥८४॥

मनिमय अमित हरि उर बसै। किरन चलत युतमुज रवि लसै॥
अंचल अति चचल रुचि रचै। लोचन चल जिनके सँग नचै॥८५॥

मणियुक्त माला गले में ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसे सूर्य की किरणों से युतमुज सुशोभित होता है। चञ्चल नेत्र उन्हीं के साथ नाचा करते हैं ॥८५॥

॥मूर्तिवर्नन॥

मोहनि मकु निसी लेखियैं। मकरध्वज ध्वज सी देखियैं॥
बसीकरण ओषधि सी मनी। मन्त्र सिद्धि सी मन कर्षनि॥८६॥

मोहनिशक्ति को निशि में देखिये मकरध्वज ध्वज के समान दिखाई देता है, वह वश में करने की मानो औषधि हो और मंत्र के समान मन का कर्षन करने वाली है ॥८६॥

ससि की कला एक लै ईस। रचि कै राखि अपनै सीस॥
इन अनिमनि जनु कियौ अपार। मृदु मुख हास चन्द्र अवतार॥८७॥

शशि की एक कला को लेकर ईश ने अपने शिर पर रख लिया है। मानो इन्होंने बहुत अधिक अनिखनि किया हो और उनके मृदुल मुख का हास चन्द्र का अवतार हो ॥८७॥

एकै मदन हतो जग माहृ। ताकौ तनु जारयौ जग नाह॥
यातै निज प्रभु के उर मार। उपजावति प्रति दिवस अपार॥८७॥

संसार में एक ही मदन था उसके शरीर को शङ्कर भगवान ने जला दिया। *इसलिए अब वह काम स्वामी के हृदय में अत्यधिक काम उत्पन्न* कर रहा है॥८७॥

कराटक अटक फरी फरी जात। उडि-२ जात वसन बस जात॥
तऊ न तिनके तन लखि परै। मनि गन अंग अंग कन घरै॥८८॥

कएटकों के कारण उनके वस्त्र फट जाते हैं और वायु के झकोरा से वस्त्र फट भी जाते हैं। इतना होने पर भी उनके शरीर दिखाई नहीं देते क्योंकि अग अग पर मणियाँ जटित हैं॥८८॥

॥दोहा॥

उपमागन उपजाए कै बगराये संसार॥
इनकौ उपमा परसपर रचि राखि करतार॥८९॥

ब्रह्मा ने अन्य स्त्रियों के लिये तो उपमानों के ढेर के ढेर पेदा करके सारे संसार में फेला रखे हैं पर इन दासियों के उपमान नहीं मिलते हैं इनको ब्रह्मा ने परस्परोपमा ही रचा है अर्थात एक दासी दूसरी की उपमान है और दूसरी पहली की।

॥ चौपाई ॥

नृपति अनेक दान बहु दियो। सबही के मन भायौ कियौ।
देखत सबके लोचन चले। अवन पाई जन सरसिज हले॥ १॥

राजा ने दान देकर सभी की इच्छाओं को पूर्ण किया। जिस प्रकार से रात्रि को पाकर सरसिज खिल उठता है, उसी प्रकार से सभी के नेत्र हर्षित हो गये॥१॥

सौसलाज अलजित तन भई। उपमा जैसी जाई न दई।
तब तरुनी कह्यौ सुरत पाडे। उपवन हम देखन सब जाई॥ २॥

शीश लज्जा अलज्जित हो गई जिसकी कि उपमा नहीं दी जा सकती है। उन सभी तरुणियों ने उपवन देखने की बात कही॥२॥

सोभै तब देखत आराम । मानौ वर बसन्त कौ ग्राम ।
बोलत मोर बारही बार । गुदरत हैं मानौ प्रतिहार ॥ ३ ॥

उपवन की शोभा को देखने से ऐसा लगा कि मानों वह श्रेष्ठ बसन्त का ग्राम है। मोर बार बार बोलते हैं मानों वह प्रतिहार में निवेदन कर रहे हैं ॥३॥

बोलत कल कोकिला सुदेस । उपमा दीनी ताहि नरेस ।
जनु बसन्त की मज्जनि सुवेस । मनौ हरषि मन मदन प्रवेस ॥ ४ ॥

कोकिल बोल रहा है उसको राजा ने उपमा दी है कि मानों वह बसन्त की मजनी है, जिसमें हर्षित होकर मदन ने प्रवेश किया है ॥४॥

देख सकल तरनि तब जाई । सम साखा मूलनि सुखदाई ।
आलवाल अवली जलभरी । मनौ मनोहर हट जरभरी ॥ ५ ॥

तरुणियों ने सभी वृक्षो को जाकर देखा, उनकी शाखायें तथा जड़ें सुखदाई थीं। क्यारियों की पंक्तियां जल से भरी हुई हैं ॥५॥

फूले फूल द्रुमन तें झरें । आनद आंसू भरि ज्यु ढरें ।
मधुबन देखि देखि जति अक । रितु जुवतनि के जनु ताटङ्क ॥ ६ ॥

फूले हुये द्रुमों से पुष्प इस प्रकार झड़ रहे हैं मानो आनन्द के आंसू गिर रहे हों। मधुवन का जति अंक देखने से ऐसा लगता है, मानो ऋतु की युवतियों के कर्णफूल सुशोभित हो ॥६॥

फूले जनु खूभिन के फूल । प्रति फूलनि पर अलि अनुकूल ।
जनु उरगन कौं उडपति जानि । दीनो बांधि कलङ्क समान ॥ ७ ॥

मानों खूभनि के फूल फूले हुये हैं और प्रत्येक पुष्प पर भ्रमर चक्कर लगा रहे हैं मानो उरगन को चन्द्र समझकर व सभी को समान रूप में कलङ्क बाँट दिया है ॥७॥

दाड़िम कलिका सोहनि खरी । कनककुपी जनु चन्दन भरी ।
उज्जल फूल बेल के लसैं । रहि सुतारा जनु भुव बसैं ॥ ८ ॥

अनार की कलिया सुशोभित हैं। वे ऐसी मालूम होती हैं मानो सोने की कुप्पी चन्दन से भरी हुई हो। बेल के सुन्दर स्वच्छ फूल सुशोभित हो रहे हैं ॥८॥

सुमन कनेरे सुकली समान। सोभन भनौ मदन के बान।
फूली फैलि केतुकी कली। सोहति तिनपर अलि आवली ॥ ६ ॥

कनेर की कलियां इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानो वे कामदेव के बाण हों। केतकी की कलियां खिल हुई हैं, उन पर भौरों के झुण्ड सुशोभित हैं ॥६॥

तिनहीं न महादेव रुचि करैं। यह अपजस जिनि मथै धरैं।
विन पातन फूले पलास। सोभत स्यामल अरुन प्रकास ॥ १० ॥

इसीलिये महादेव उन फूलों की इच्छा नहीं करते हैं। इस अपयश को अपने शिर पर मत रखो। बिना पत्तों के ही श्याम और लाल रङ्ग के पलाश फूले हुये हैं ॥१०॥

वर वसन्त की वैहरि लगै। मनहु काम कोयला जगमगै।
फूली चंपक कलिका लसै। तिनके केस माझ अलि रमै ॥ ११ ॥

सुन्दर बसन्त सा लग रहा है जिसमें मानो काम जगमगा रहा हो। अनेक चम्पा की कलियां फूली हुई हैं। उनकी कलियां पर भँवर सुशोभित हो रहे हैं ॥११॥

उपमा देती देखि सुन्दरी। कनक कुपी जनु सौंधे भरी।
कुसुम अगस्त सावरा कन्द। राहु मनौं उगिलत है चन्द ॥ १२ ॥

उसे देखकर सुन्दरियां उपमा देती हैं कि मानो सोने की कुप्पी सुगंध से भरी हुई हो। अगस्त सावरे वर्ण का है जिसे देखने में ऐसा लगता है कि राहु चन्द्रमा को उगल रहा है ॥१२॥

अलि उडि घटत मञ्जरीलाल। देखि लाज साजति ग्रब बाल।
तरु तजि मधुप लतनि परजात। मनहु कहत मिलब की बात ॥१३ ।

भ्रमर उड़कर मञ्जरी का आलिंगन करते हैं, जिसे देखकर स्त्रियां लज्जित हो जाती हैं। वृक्षों से उड़कर वे लताओं का आलिंगन करते हैं। इस प्रकार वे मानो मिलने की बात कह रहे हो॥१३॥

अलि अलिनी कौं देखत पाई। भेटत चपल चमेली जाई।
अद्भुत गति सुन्दरी विलोकी। हसती सौं घूँघट पट रोकि ॥ १४॥

कुछ भ्रमर मौरनी के सामने ही दौड़कर चमेली का आलिङ्गन करती हैं सुन्दरियां इस अद्भुत अवस्था देखकर घूंघट निकालकर हँसती हैं ॥१४॥

गिरत सदा फल श्रीफल बोज। जनु धस देत देखि बोज।
सुदतिनि के जनु दसन निहारी। उदरे उरनि दाड़िमी-फारि॥ १५॥

शरीफे तथा बेल के फल टपकते हैं मानो वे उन स्त्रियों के वक्षोज को देख कर गिर रहे हैं। स्त्रियों के दाँतों को देखकर बड़े बड़े अनारों के हृदय विदीर्ण होकर फट गये हैं ॥१५॥

निरखे नालकेलि फर फरे। कुच सोभा अभिलाखनि भरे।
अति तप करन अधोमुख ऐन। मनौ मीन ह्वै मूँदे नैन ॥ १६ ॥

नारियल के फल फले हुए हैं मानो वे कुच की शोभा की अभिलाषाओं से भरे हुए हैं। अत्यधिक तपस्या करने के लिये अपने मुख को नीचा करके मछली की तरह से नेत्र मूद लिये हों ॥१६॥

सोहत वजुल कुञ्जल कुञ्ज। जनु लिपटे गुञ्जनि के पुञ्ज।
काम अन्ध मगधन कै नैन। एक ठौर जनु राखे मैन ॥ १७ ॥

अति सुन्दर अशोक की कुञ्जें हैं जिन पर भौंरों के झुण्ड सुशोभित हैं। ये अशोक वृक्ष पर बैठे हुए भ्रमर ऐसे मालूम होते हैं मानों पुष्पित वृक्षों को देखकर जो मनुष्य अन्धे हो गये हैं (मदमस्त) उन्हीं के एकत्र हुए लोचन हों ॥१७॥

सीतल तप्त जहाँ द्वै वोक। मानौ सोम सूर के लोक।
जहाँ तहाँ जल जन्त प्रकास। धरतैं धारा चली अकास ॥ १८ ॥

कहीं पर ठंडे और कहीं पर गर्म स्थान बने हुये हैं उन्हें देखने से ऐसा लगता है मानो सूर्य और चन्द्र के लोक हों। यत्र तत्र जल के फव्वारे हैं जिनकी धारा पृथ्वी की ओर से आकाश की ओर चली जा रही है ॥१८॥

जनु जमुना कौं सूक्षम वेस। चाहत रविपुर कियौ प्रवेस।
थल जल कमल प्रफुल्लित प्रभा। मनौ पुरन्दर कैसी सभा ॥ १६ ॥

मानो यमुना सूक्ष्म रूप धारण करके रवि लोक में विहार करना चाहती हैं। खिले हुए कमलों की प्रभा इस प्रकार है मानो वह पुरन्दर की सभा हो ॥२६॥

देख्यौ सब आनन्दे बाग। मनो सुभमण्डल को भाग।
नरुवर लता तहाँ बहु भाँति। कहाँ कहाँ लगी तिनकी जाति ॥२०॥

सभी लोगों ने आनन्दित होकर बाग को देखा। वहा पर अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लतायें हैं, उनकी जातियों का वर्णन कहा तक किया जाय ॥२०॥

तिनकी विविध विसद वाटिका। वरनत सुभ नाटक नाटिका।
रसना हीन बढ़ै रस तत्र। मोहन वसी करन के मंत्र ॥ २१ ॥

अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताओं से सुशोभित विशद वाटिका है, जिसके सम्बन्ध में सुनकर नाटक तथा नाटिका वर्णन करते हैं। मोहन के वशीकरण मन्त्र के कारण जो रसना हीन हैं उनमें भी रस का संचार होता है ॥२१॥

मन स्वच्छ पर थिर लोगियैं। जदपि थिरा चञ्चल देखियैं।
चञ्चल तरु तपोधन मानि। तप सिला पै ग्रहस्थनि जानि ॥२२॥

स्वच्छ पर सभी वस्तुएं स्थिर दिखाई देती हैं, यद्यपि थिरा चञ्चल दिखाई देती है। यदि और कुछ चञ्चल है तो वह केवल तपोधन है जो कि तप शिला पर स्थित है ॥२२॥

गृहतिथि दिगम्बरा सोहियैं। देखत मुनि मनसा लोभियैं।
दिगम्बर पैसे कुसुम सुमित्र। पुहुपावति पर परम पवित्र ॥ २३ ॥

गृह तिथि दिगम्बर रूप में शोभित है, जिसे देखते ही मुनि के मन लुभा जाते हैं ॥२३॥

है पवित्र पै गर्भ सयोग। हात गर्भ सुरतनि के योग।
सुरति योग पै भाव विहीन। भावहीन जग जन के लीन ॥ २४ ॥

पवित्र है किन्तु गर्भवती है। गर्भ सुरतनि के योग से होता है। सुरति योग भाव हीन है। भाव हीन जग लोगों में लीन है ॥२४॥

जगत लीन जन गत जानियें। पति के प्रानति सन मानियें।
ज्यों ज्यों पति सौं बढ़े सुहाग। त्यों त्यों सौतिन सौं अनुराग॥२५॥

संसार लोगों में उसी प्रकार लीन है जिस प्रकार पत्नी अपने पति को प्राणों के समान मानती है। पत्नी का पति के प्रति ज्यों अनुराग बढ़ता है त्यों त्यों पति का सौतिनों के साथ अनुराग होता जाता है॥२५॥

इहि विधि तिनकी अद्भुत भांति। रसना एक सुक्यों कहि जाति
ब्रह्म घोष घोषनि अति घनि। मनौ गिरा के रूप की वही॥ २६॥

इस प्रकार से उनके अनेक प्रकार हैं, यह अकेली रसना कैसे वर्णन कर सकती है। वहां वेद पाठ का शब्द सुन पड़ता है मानो वह सरस्वती के तपस्या करने की वाटिका है॥२६॥

करुनामय मन कामनि फरी। कमला कसै वरस्थरी।
नाचत नील कण्ठ रस घूमि। मानौं उमा की क्रीड़ा भूमि॥ २७॥

वाटिका करुणायुक्त है मन की कामनाओं का मन पूर्ण करने वाली जैसे कमला के वास स्थान पर सभी की कामनायें पूर्ण होती हैं। नीलकण्ठ उसमें क्रीड़ा कर रहे है मानो वह उमा की क्रीड़ा भूमि हो॥२७॥

सोभै रम्भा सोभा सनी। किधौ सची की आनन्द कनी।
मनौ मलय की चन्दन वनी। लोपामुद्रा की तप लनी॥ २८॥

अथवा वहा सुन्दर रम्भा (कदली वृक्ष) की शोभा है अथवा इन्द्राणी के आनन्द की केलि वाटिका है अथवा मलयागिरि के चन्दन का वन हा अथवा लोपमुद्रा क तप का वन हो॥२८॥

मद वसन्त छ रितु की पुरी। मनौं वसति वसुधा मैंडारी।
विच विच ललित लता आगार। केरिनि की परदा प्रविवार॥२९॥

अथवा मद बसन्त है जो षट ऋतुओं में प्रमुख है। मानों वह उतरकर अब पृथ्वी पर निवास करता है। बीच बीच में सुन्दर लतायें हैं और उनके बीच में क्यारिया है॥२९॥

खारि कदारयौ दाख खजूरि। नारि वेल पूँगी फल भूरि।
एला लपटी ललित लवग। नाग वेलि दल दलित विरंग॥ ३० ॥

खारि, कदार, दाख, खजूर, नारियल सुपाड़ी के फल है एला, ललित लवग तथा नागवेलि की लतायें है ॥३०॥

मृगमद कुंकुम चन्दन वास। वन लक्ष्मी कैसो आवास।
चन्दन तरु उज्जवल तन धरै। लपटी नाग लता मन हरै॥ ३१॥

उसमें मृगमद, कुकुम और चदन का वास है। मानों उसमें वन लक्ष्मी का निवास है। चन्दन के वृक्ष उज्ज्वल शरीर धारण किये हुये हैं उसमें नाग की ऐसी लम्बी लतायें लिपटी है ॥३१॥

देखि दिगम्बर वदित भूप। मानौ महादेव के रूप॥
कहू पढ़त सुनियत सुख्यान। मनौ परिचित के दीवान ॥३२॥

महादेव के श्याम वर्ण के रूप तथा दिगम्बर देखकर राजा उसकी वदना करता है। कहीं कहीं पर शुक इस प्रकार पढ़ रहे हैं मानो परीक्षित के दीवान हों ॥३२॥

एक कहति फूलहि को लोक। एक कहति फलहि कौ ओक॥
किधौं सुगन्धनिद्रा को गाम। कै सब सोभा हों को धाम॥३३॥

कोई कहता है कि फूलों का घर है और कोई कहता है फलों का घर है अथवा सुगध का ग्राम है अथवा शोभा का धाम है ॥३३॥

बरन्यौ जाए न ताको नेमु। मानौ अद्भुत सम को देसु॥
उज्जलता अब रालनि लसै। कुछ पिकनि के मुह मे वसै॥३४॥

उसकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता मानो वह विचित्र चद्रलोक का देश हो। सभी समय वहा पर उज्ज्वलता रहती है और कोयला के मुख की 'कुहू' सदैव लसती रहती है ॥३४॥

रजनी विदित अनँद नन्दिनी। सुरग चन्दन की जहँ चादनी॥
जहाँ सकल जीवनि कहँ सुख। केवल विरही जनकी दुःख॥३५॥

चद की चादनी केवल रात्रि में सुखदायी होती है, किन्तु सुग चदों की चादनी रात दिन आनन्द देती है। इस बाग में सब जीवों को सुख

मिलता है। यदि किसी का दुख है तो केवल विरही जनों को है ॥३५॥

सीतल मँद सुगन्ध सुवास। तिनमें आवत ही है जाव॥
आगम पवनहिं कौ जानियैं। हानि असोभा को मानियैं ॥३६॥

शीतल, मंद, सुगंध सुवास उनमें प्रवेश करते ही हो जाती है। वहाँ पर आगमन केवल पवन का होना है और हानि केवल अशोभा की ही है ॥३६॥

तृष्णा चातक ही के चित्त। संभ्रम भौरनि ही के मित्र॥
सुक सारी को विधाया वाद। गर्ब्बज्ञान सुइ यहै विसाद ॥३७॥

प्यास केवल चातक के चित्त ही में है और संभ्रम केवल भ्रमरों का ही मित्र है। सुकःसारी में केवल वाद विवाद है और गर्वज्ञान को यही ही विषाद है ॥३७॥

तरणि तापन ही के गात। दल फूल फूलनि ही अवदात ॥३८॥

तापन केवल सूर्य की गर्मी का ही है और पतन केवल फल फूलों का ही है ॥३८॥

इति श्री मत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा वीरसिंह चरित्रे वनवाटिका वर्नन नाम त्रयोविंसति प्रकाशः-२३ ॥

॥ चौपाई ॥

तिनमैं क्रीड़ा पर्वत रच्यौ। मृग पच्छिन की सोभा सच्यौ।
कृत्रिम सिखर सिला सोभियैं। तरुवरलता चित्त मोहियैं ॥१॥

उनमें एक क्रीड़ा करने का पर्वत है जो कि पशु पक्षियों की शोभा से पूर्ण है। उसके ऊपर शिला की कृत्रिम चोटी है, वृक्ष और लताएँ चित्त को आकर्षित करती हैं ॥१॥

सुवरनमय सुमेरु सौ बनौ। सहज सुगन्ध मलय मौमनौ।
सीतल हिमगिरि सौ परिसियै। उदयाचल सौ सुभ दरसियौ ॥२॥

स्वर्ण युक्त सुमेरु पर्वत की भाँति है और उसमें स्वाभाविक रीति से

हा भलयागिरि की भाँति सुगंध है। हिमालय की भाँति शीतल है। उदयाचल की भांति सुन्दर है ॥२॥

सोभा के सागर में वसै। वर मैनाक सैल सो लसै।
मयनजूथ कहुँ; जगमगै। रिष्यमूक पर्वत सो लगै ॥३॥

जिस प्रकार से मैनाक पर्वत सुन्दर सागर में सुशोभित होता है, उसी प्रकार से सुशोभित हो रहा है। कहीं-कहीं पर मयनजूथ की भाति जगमगा रहा है और ऋष्यमूक पर्वत की भाँति दिखाई देता है ॥३॥

आनदमय हृदि कैसो ओक। हँसनियुत भ्रज कैसो लोक।
वृषभ सिंह क्रीड़हि अहि मोर।।सिविगिरि सो सोहत चहुँ ओर ॥४॥

विष्णु के घर की भाति आनन्दमय है, माना हँसयुक्त ब्रह्म लोक हो। बैल, सिंह मोर, सर्प क्रीड़ा कर रहे हैं। कैलाश पर्वत की भाति चारों ओर सुशोभित है ॥४॥

गूढ़ गुफा हू दीरघ दरी। त्रिय मनु सिद्धन की सुन्दरी।
कहुँ तापर धरधारा धाम। सुभ्रक लोक बलाका बाम ॥५॥

गहन गुफाये हैं और बड़ी दरी (पर्वत के नीचे जहा नदी गिरती है) है। उसके ऊपर कहा धारा गिर रही है। बलाका वामाओं का मे सुन्दर स्थान है ॥५॥

बरसति सी दरसति जल धार। चपला सी चमकति बहु बार।
सक्र सरासन चातिक मोर। सुनिजुत बिच-२ घन की घार ॥६॥

जलधार वर्षा के समान प्रतीत होती है। अनेक बार चपला की भाति चमकती है। घन घोर बादलों के बीच में कभी-कभी इन्द्र धनुष दिखाई देता है और चातक तथा मोर की बोली सुनाई देती है ॥६॥

तीवैं प्रकटी नदीक तीनि। सरितनि का लानी छवि छीनि।
एक कुंकुमा के जल वहै। ताकी साभा को कवि कहै ॥७॥

उसस तीन नदियां प्रकट हुई हैं जिन्होने सरिताओं के रूप को छीन लिया है। एक का कुमुम के वर्ण का जल है उसकी शोभा का कोई भी कवि वर्णन नहीं कर सकता है ॥७॥

सुखद सुगन्ध स्वेत जल वहै। गगा सी त्रिभुवन पवि लहै।
सुर गज मारग मोभा भर्यो। मनो गगन तें भुव गिरि पर्यो ॥८॥

वह सरिता सुखदायी है और सुगधित जल से प्रवाहित हो रही है। गगा के समान त्रिभुवन पति को प्राप्त कर रही है। मानो आकाश से गगा भूमि पर आ गई है ॥८॥

सोमत जाकी सोभा लियै। जम्बूदीप तीलक सो कियै।
उपवन सोभा कहँ लौगनौं। तिनकी सकुल सत्व गुन मनौं ॥६॥

उसकी शोभा को लिये हुए सुशोभित है, जिससे यह जम्बूदीप तिलक सा दिये सुशोभित है। उपवन की शोभा का कहा तक वर्णन किया जाय ॥६॥

तीजी मृगमय के जल वहै। ज्यौं जमुना त्यौं जग कहै।
मो सिंगार रस कैसी धार। नील नलिन कैसी महिमार ॥१०॥

तीसरी मृगमद के वर्ण के जल से प्रवाहित हो रही है। जिस प्रकार से लोग यमुना की प्रशसा करते हैं। उसकी धारा श्रृङ्गार रस सी है। नीले कमल की भाति उसकी महिमा है ॥१०॥

सोभति सुख कैसी तरवारि। अशुभ खलनि को खण्डन डारि ॥११

शोभा की तलवार की भाँति सुशोभित होती है और दुष्टों के अशुभ गुणा का खण्डन करने वाली है ॥११॥

गिरि दिग्गज क्रीड़ा सी लगे। ताकी साँकर सी जगमगै।
तजि क्रीड़ा गिरि दिग्गज टरी। तम कैसी अवली नि. सरी ॥१२॥

गिरि रूपी हाथी को बाँधने की जंजीर है। अथवा पर्वत रूपी दिग्गज को छोड कर अधकार की अवली चली हो ॥१२॥

मागध सूत पढ़ति इह भाट। मनो प्रताप अनल की वाट।
जितनी उपवन तरुगन बसै। तिनकी मनो तमोगुन नसै ॥१३॥

मागध, सूत, भाट, बन्दी सभी बन्दना कर रहे हैं मानो वह प्रतापानल की वाट हो। जितने भी वृक्ष उपवन में निवास करते हैं मानो उनके तमोगुण का विनाश करती है ॥१३॥

और नदी कुकुम जल दुती। मानौ मन मोहै मरतुती।
बरनहि दुति कवि कोविद जनी। बोरसिंघ के उपवन बनी ॥१४॥

केशर वर्ण की सरिता सरस्वती के मन को भी आकर्षित कर रही है। वीरसिंह के उपवन में बसी हुई सरिता का कवि वर्णन कर रहे हैं ॥१४॥

जम्बूदीप इन्द्रा बसै। तासों चरनोदक सों लसै।
जल देविनि कैसो श्रम वारि। किधौं देह दुति सी सुखकारि ॥१५॥

जम्बूद्वीप में इन्द्रावास करती है उसके चरणोदक की भांति सुशोभित होता है अथवा जलदेवियों के श्रमकण हों अथवा देह की कान्ति हो ॥१५॥

ब्रह्मसूत सौं हित लेखियै। भरत खण्ड सौ द्विज देखियै।
कसी कसौटी मैं अती लीक। केसर कञ्चन कैसी लीक ॥१६॥

ब्रह्म सूत की भांति हित देखिए और भरत खण्ड के समान द्विज को देखिये। मानो कसौटी पर कसी हुई कंचन की रेखा हो ॥१६॥

राजत जितनै राज समाज। तिनकौ मनौ रजोगुन राज।
कुसुम पराग के रस सनै। पावन पुलिन दुहूँ दिसि बनै ॥१७॥

जितने भी राज्य हैं उन सभी का मानो रजोगुण हो। कुसुमों के पराग में सिक्त दोनों ओर पवित्र किनारे हैं ॥१७॥

येलाकन वालुका सावस। सेविति ललित लवँग प्रकास।
कदलि कुसुम केतकि कल कञ्ज। तिनके कीरण दल मल रंज ॥१८॥

येलाकन, वालुका, लवंग, कदली, कुसम के अनेक दल हैं, जो मन का रंजन करते हैं ॥१८॥

तिनकी सोभा सोभति खरी। सहज सुगन्ध के धन भरी।
वार पार श्रम मध्य प्रवाह। खेवत मधुकर मत्त मलाह ॥१६॥

उनकी शोभा से शोभति सुगध से भरी हुई है। किनारे और बीच में मस्त भ्रमर मल्लाह मानो नौका चला रहे हों ॥१६॥

तीन जोति जब एकति होय। वैही काल त्रिवेणी होय ॥२०॥

तीनो सरिताओं की जब ज्योति मिल जाती है तभी त्रिवेणी बन जाती है ॥२०॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर श्री वीरसिंह देव-चरित्रे क्रीड़ा गिरि वर्नन चतुर्विशति प्रकाश॥२४॥

॥ चौपाई ॥

भुम आश्रम राम के सग। श्रीमति भई रामा अँग अग।
कुसुम वार कवरी छुटी गई। लोचन वचन सिथिल गति भई ॥१॥

भ्रमर रूपी राम के साथ विश्राम करने के कारण लक्ष्मी का अंग प्रत्यंग भ्रमित हो गया। कुसुमवार कबरी के छूटने से उसके नेत्र एवं वचन शिथिल हो गये ॥१॥

छूटी मुक्तालर मिमोल। लपटी लट लटिके अति लोल।
मुखविछु सँग वजिवे रस दुहूँ। जनु भेटि पुरनिमा कुहू ॥२॥

मुक्तालर टूट गई। टूटी लट लटकती हुई बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। चद्रमा रूपी मुख का रस छूटने के भय से मानो वह उसमें लटकी हुई है जैसे पुरनिमा कुहू को भेंट लेती है ॥२॥

आनन पर श्रमसीकर घनै। वसन सरीर सुगन्धित सनै।
पाइनि तें बौंचा गिरि गये। भूषण तें फिरि दूषण भये ॥३॥

मुख पर श्रम सीकर हैं और सदा शरीर सुगंधित है। पैरों से बौंचा आभूषण गिर गया। जो कभी आभूषण थे वही अब दूषण हो गये ॥३॥

बैठ रहे इक तरु के मूल। नै लगि बावति एकनि फूल।
पिये पर एक चढ़ावति भौंह। उठि चलिवे की द्यावति सौंह ॥४॥

कोई किसी वृक्ष की जड़ के पास खड़ी हो गई और कोई फूलों प्रियतम को लेकर इधर-उधर बिखेरती है और कोई उठकर चलने का सकेत करती है ॥४॥

जानि भया श्रम सबनि अपार। चल्यो जलासय राजकुमार।
जहाँ जहां द्रुम बिरचे फूल। रवि रुचि होति तहा अनुकूल ॥५॥

राजकुमार सभी को थका हुआ जान कर जलाशय की ओर चल पड़ा। वहाँ जहाँ पर द्रुमों के फूल फैले हुए हैं वहाँ वहाँ पर सूर्य के प्रकाश का अनुभव होता है ॥५॥

ताहि निवारति बारहि बार। सोभि सब सुन्दर सुकुमार।
एक वे देत लोचन कर बोल। चम्पक दल दल जनु अति लोल॥६॥

उसको (फूलों) बार-बार दूर करती हुई सभी कुमारियां सुशोभित होती हैं। एक अपने नेत्रों के इशारे से ही बोलती है उसे देखने से ऐसा लगता है मानो चम्पक दल अत्यधिक चंचल हैं ॥६॥

एक चलि अति श्रम कै हिये। सखी चौर की छाया किये।
जनु उर करि करुना के धाम। बसे हँस सारस के काम॥७॥

एक चलने से अत्यधिक थक गई है उस पर एक सखी छाया किए हुए है मानों हृदय में करुणा धारण कर के हंस सारस के काम के लिए आकर बस गये हों ॥७॥

चली जाति इक रस आपनै। सखिन सहित पट ऊपर तनै।
बदन विराजत आनद कन्द। ज्यौं छवि मण्डल मैं वर चन्द॥८॥

कोई सखियों के साथ वस्त्र का ऊपर उठाये हुए अपने रंग में मस्त चली आ रही है। उसके मुख पर आनंद की आभा है जैसे आकाश में चंदमा सुशोभित होता है। ८।

बैठी युवति जु सबही माहिं। चलि सुसेत छत्र की छाहिं।
मनौ सोम सीतल के लियौ। सोम लग पर छाया कियौ॥९॥

सभी युवतियों में जो युवती जेठी है, वह छतुरी की छाया में चलती है। मानो चन्द्रमा शीतलता को लिए हुए उस पर छाया किए हुए है ॥९॥

घाम न ताहि लगे तन माँह। जापर पिये पलकन की छाह।
कैहूँ कैहूँ इहि रुचि रई। जुवति जलासयन मैं गई॥१०॥

उस पर धूप न लगे। इसलिए प्रियतम उस पर अपनी पलकों की

छाया किए हुए है। सभी युवतियां इस प्रकार से जलाशय को गईं ॥१०॥

भये विगत श्रम सकल सरीर। लागे सीत सुगन्ध सरीर।
आये अमल वास सुख दैन। मुख वासनि आगे ह्वै लैन ॥११॥

सभी का श्रम दूर हो गया और शरीर अत्यधिक शीतल तथा सुगंधित हो गया। सुगंधित सुखदायी वास देने के लिए मुख के आगे होकर लेने आये ॥११॥

देख्यौ जाई जलासय चारु। सीतल सुखद सुगन्ध अपार।
अमल कपोल अमोल सुगारि। चातक चारु चहूधा पारि ॥१२॥

सुन्दर जलाशय को जाकर देखा जो कि शीतल, सुखद एवं सुगंधित है। उनके कपोल अत्यधिक सुन्दर हैं ॥१२॥

प्रति मूरति युवति सुख देत। जल देवी जनु दरसन देति।
राजश्री की दर्पन मनी। किधौं गगन अब तारयौ गनी ॥१३॥

प्रत्येक युवती का स्वरूप सुखद है। मानो जलदेवी दर्शन दे रही हो। अथवा राजश्री का दर्पण हो अथवा आकाश मण्डल से तारे उतर आये हों ॥१३॥

हिमगिरि बरदव सौं परसियौ। चन्द्रा तप तन सी दरसियौ।
किधौं सरद रितु कौ आवस। मुनिजन मन कौ मनी बिलास ॥१४॥

अथवा हिमालय को सूर्य की किरणों ने स्पर्श किया हो। उनका शरीर चन्द्रमा की भाँति दिखाई दिया अथवा शरद ऋतु का आगमन हो अथवा मुनियों का विशाल अन्तःकरण हो ॥१४॥

विरहीजन ऐसे देखियें। बिसर्जलतानिवलित लेखियें।
सूक्ष्म दीरघ नीर तरग। प्रतिबिम्बित दल दुति बहु रग ॥१५॥

विरह दग्ध लोग ऐसे दिखाई देते हैं मानो लतायें हों अर्थात् लताओं की भाँति दुर्बल हो गये हैं। जल अत्यधिक स्वच्छ है और उसमें पुष्पों के अनेक रंग दिखाई देते हैं ॥१५॥

सूर कीरण करि जल परसियैं। मानौ इन्द्रचाप दरसियैं।
प्रतिबिम्बित जहँ थिरचर जन्तु। मानौ हरि कौ उदर सनन्त ॥१६॥

सूर्य की किरणें जब जल में पड़ती हैं तब ऐसा लगता है कि इन्द्र धनुष खिला हो। उसमें घूमने वाले जन्तु प्रतिबिम्बित होते हुए ऐसे मालूम होते हैं मानो भगवान का अनन्त उदर हो ॥१६॥

परमहंस सेवत देखियैं। मानसरोवर सो लेखियैं।
विपमय पय सब सुख कौ धाम। सँवररूप बढ़ायौ काम ॥१७॥

इस मानसरोवर की सेवा करते हुए दिखाई देते हैं। जल युक्त दूध सब सुखों का घर है ॥१७॥

बन्धुनजुत अति सोभावन्त। मानौ बलि राजत जसवन्त।
कमलनि मध्य मधुप सुख देत। सन्त हृदय मनु हरिहि समेत ॥१८॥

अपने बंधुओं सहित इस प्रकार सुशोभित है मानो जसवन्त बलिराज हो। कमला के बीच सुखद भ्रमर हैं जो कि सन्त हृदय को अपनी ओर खींचते हैं ॥१८॥

बीच बीच फूले जलजात। तिनमें अलिकुल उड़ि-२ जात।
सन्त हियनि तैं मानौं भाजि। चञ्चल चली अशुभ की राजि ॥१६॥

बीच में कमल खिले हुए हैं जिन पर उड़ उड़ कर भ्रमर जाते हैं। मानो अशुभ सन्त हृदयों को छोड़ कर भागे जा रहे हैं ॥१६॥

॥ दोहा ॥

क्रीड़ा सरवर मैं नृपति कै जल विधि बहु केलि।
निकसे तरुनि समेत ज्यों सूरज किरण सकेलि ॥२ ॥

अनेक प्रकार से सरोवर में क्रीड़ा करके तरुणियों सहित राजा बाहर इस प्रकार आए जिस प्रकार सूर्य निकलता है ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

तब तिहि समय विराजी बाल। विनहू भूषण भूषित लाल।
मिटे कपोलनि चन्दन चित्र। लागे कैसरि तहां विचित्र ॥२१॥

उस समय सभी बालायें आभूषणों के बिना भी सुशोभित हो रही थीं। कपोलों पर जो चंदन के चिन्ह थे वे मिट गये और उनके स्थान पर विचित्र केशरि दिखाई देने लगी ॥२१॥

जल कज्जल बिन कीनै नैन। निज छवि रोचक जानै ऐन।
मोतिन की सब छूटी छटैं। आनि उरोजनि लपटि लटैं ॥२२॥

आँखों में लगे हुए काजल को पानी ने इसलिए मिटा दिया कि वे नेत्रों की शोभा के रोचक थे। मोतियों की सभी लटें छूटकर उरोजों से आकर लिपट गयीं ॥२२॥

मनौं सिंगार हास बल्लरी। कलपलतनि भेटति सुन्दरी।
सोहत जलकन केसनि श्रम। जनु तम उगलित नखत सम्रम ॥२३॥

मानो वल्लरियाँ हास और शृंगार के लिए कल्पलताओं का आलिंगन कर रही हों। केशों के ऊपर जलकण इस प्रकार शोभा दे रहे हैं मानों आकाश नक्षत्रों को उगल रहा हो ॥२३॥

भींजे बसनि सौ तिहि काल। तिनमैं छूटत जलकन जाल।
पल पल मिलि कीनै बहु भोग। मनन करत जनु वियोग ॥२४॥

भींगे हुए वस्त्रों से जलकण छूट रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि अनेक प्रकार से भोग करके अब वे वियोग को जानकर रुदन कर रहे हैं ॥२४॥

नव नव अम्बर पहिरैं जाति। दीपति झलमलाति फहराति।
जल मैं रहे ते भूषन जाल। लियैति बागवान की बात ॥२५॥

अनेक प्रकार के नवीन वस्त्र धारण किए हैं जो दीप्त होकर झलमलाते हुए फहरा रहे हैं। जो आभूषण जल में रह गये उन्हें बागवान ने ले लिया ॥२५॥

भूषण बसन लियैं सब साजि। उठी दुदुभी तबही बाजि।

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर राजाधिराज राजा वीरसिंह चरित्रे जलकेलि वर्नन नाम पंचविंशति ॥२६॥

जब आभूषण और वस्त्रों को सजा लिया तब दुंदुभी बज उठी ॥२६॥

॥चोपाई॥

तहँ अमोक फलि फूल्यौ फल्यौ। भूतल सरस दुलीचनि भन्यौ।
मानिक कनकनि के फल फरे। बहु रग विविध सुगन्धिन भरे॥१॥

वहाँ पर अशोक फूला फला है। सारा भूतल दुलीचों से सुशोभित है। फल माणिक और स्वर्ण के सदृश हैं। फल अनेक रगों के हैं और सुगन्धित हैं॥१॥

तरुवर जून ज्वान अरु नये। मरगमल जरवाफनि मढि लये॥२॥

वृक्ष नये और युवा हैं जिन्हें जरवाफनि ने मढ लिया है॥२॥

सोभन कनक सिंघासन घन्यौ। जल जनि सहित जटाघनि जन्यौ॥
तापर बैठे भूप भुआल। मित्र कलपतरु सत्रु नमान॥३॥

सुन्दर सोने का सिंहासन बना हुआ है मानो जटाघनि ने उसे कमलों सहित जन्म दिया हो। ऐसे सिंहासन पर आकर राजा बैठे, जो कि मित्रों के लिए कल्पतरु है और शत्रु का विनाश करने वाला है॥३॥

कनक कलस गगाजल भरे। विविध फूल फलतिन महघरे॥४॥

सोने के घड़े गगा जल से भरे हुए हैं। उनमें अनेक प्रकार के फल फूल रखे हुए हैं॥४॥

सजि सिंगार आई सुन्दरी। नवल रूप नव जोवन भरी।
गोर प्रभानि प्रभासित अँग। चन्दन चर्चित चारु तरंग॥५॥

नव यौवन से परिपूर्ण सुन्दरियाँ नवल रूप में श्रृंगार करके आईं। गौर वर्ण अग प्रत्यग से दीप्त हो रहा है और सम्पूर्ण शरीर चदन से चर्चित है॥५॥

राहु ग्रसन भय उर मैं माडि। आये चन्द्र मण्डली छाडि।
नृपति सरन सोभन्त अनन्त। मानौ चन्द्रिका मूरतिवन्त॥६॥

ऐसा मालूम होता है कि राहु के ग्रसने के भय से चन्द्र तारा की मण्डली छोड़ कर चला आया है। मानो साक्षात मूर्तिवन्त राजा की शरण में अनेक (सुन्दरिया) सुशोभित हैं॥६॥

अम्ब अपद्म प्रभा मद्मिनी। देह धरें मानों पद्मिनी ॥
मुक्तहार विहारत उर। फूलनि के भाजन करि लये ॥७॥

अम्ब अपद्म की प्रभा का धारण किये हुए मानों पद्मनी हो। उसके हृदय पर मुक्ताहार विहार करता है। फूलों का भाजन कर लिया है ॥७॥

लक्ष्मी छीर-समुद्र की मनों। छींट छींट छाजत तनु घनों।
अवनत लोचन लोचन हरै। मनों ललित अरून रत धरै ॥८॥

अथवा क्षार समुद्र की लक्ष्मी हो जिसके अंग प्रत्यंग से क्षीर वर्ण सुशोभित हो रहा है। झुके हुए नेत्र दूसरों का आकर्षित करते हैं। मानो शरीर पर वह सुन्दर वस्त्रों का धारण किए हुए हो ॥८॥

अम्बर अरुन जोति जगमगै। पावक युत स्वाहा सी लगै।
सहज सुगन्ध सहित रनु लता। मलयाचल कैसी देवता ॥६॥

आकाश के समान उसके वस्त्रों की ज्योति जगमगाती है। वह पावक युक्त स्वाहा के समान लगती है। उसका शरीर स्वाभाविक रूप से ही सुगंधित है। वह मलयाचल के देवी के समान प्रतीत होती है ॥९॥

सिर सोभित अति सौरभ मौर। हितु करि धरें नृपति सिरमौर ॥१०॥

शिर के ऊपर सुन्दर मौर सुशोभित होता है जिसे हित कर के राजा ने रखा है ॥१०॥

॥ दोहा ॥

अति रति सौं अति अरति सौं पति पूजा अति रूप।
रतिही मूरति आपनी मनो रची बहु रूप ॥११॥

वह अपने पति की पूजा अनेक प्रकार (रति और अरति) से करती है। ऐसा लगता है कि रति ने स्वयं अपनी मूर्ति के अनेक रूपों की रचना की है ॥११॥

॥ चौपाई ॥

आसन बैठे नृप सिर मोर। सिर पर लसत श्याम कौ मोर ॥
धरनी सब सुगन्धमय भई। थिर चर जागन कौ सुखमई ॥१२॥

राजा आसन के ऊपर बैठे हैं। उनके शिर पर मुकुट और आम का मौर सुशोभित है। सारी पृथ्वी सगध युक्त हो गयी। थल जल के जीवन को सुखमय सिद्ध हुई ॥१२॥

नृप कर फूलनि को धनु लियौ। फूलनि फूलसर संयुत कियौ ॥
अपनें परि पहिनीति अनूप। कीना कामदेव को रूप ॥१३॥

राजा ने फूलों का धनुष लिया और उस पर फूलों का ही बाण रखा। अपनी पत्नियों के लिये उसने कामदेव का रूप धारण किया है ॥१३॥

कीनी पूजा परम अनूप। पारवती रानी रति रूप ॥१४॥

अत्यधिक सुन्दर पूजा की। पारवती रानी रति का साक्षात स्वरूप है ॥१४॥

साचन सौं मन रोचन कियौ। मोतिन की सिर अक्षित डियौ ॥
प्रगट भये जनु दोई भाल। जस अनुराग एकही काल ॥१५॥

दुखी मनों को आनंदित किया और शिर पर अक्षत लगाये, मानो दो भालयश और अनुराग—एक ही काल में प्रकट हुए हों ॥१५॥

पूजे बहुत धनुष अरुबान। बहुविधि पूज्यौ अम कृपान ॥
पूज्यौ छत्र ध्वजा सुन्दरी। पूजि चरण अरु पायन परी ॥१६॥

धनुष और बाण की पूजा की और कृपाण की अनेक प्रकार से पूजा की। ध्वजा और छत्र की पूजा करके पारवती ने चरणों का स्पर्श किया ॥१६॥

पूजा करि पद पद्मिनी परी। पदमनि की माला उर धरी ॥
जुवतिनि की जनु हृदयावली। पहिराई पिये के उर भली ॥१७॥

पूजा करके पद्मनी के चरणों पर पड़ी और उसकी माला को उर पर धारण किया। उसने युवतियों की मानों हृदयावली को प्रियतम के गले में पहनाया हो ॥१७॥

कोऊ कुमकुमा छिरकै गात। कोऊ सौंधौ उर अवदात ॥
काहू चन्दन वन्दन धूरि। मृग मद चन्दन को करि चूरि ॥१८॥

कुमकुमा, मृगमद, चंदन का चूर अनेक सुन्दरियां छिरक रही हैं ॥१८॥

मिलै गुलाबरु-कुमकुमा वारि। कीनी छिरकी सूर उनहारि॥
अब अनग पूजा करि लई। चहुँ ओर दुन्दभि ध्वनि भई॥१९॥

गुलाबरु और कुमकुमा को छिरक करके जब उन्होंने काम की पूजा कर ली तब चारों ओर दुदुभी की ध्वनि हुई ॥१९॥

बिच बिच भेरिन के भरार। झांझ झालरि संख अपार॥
तेही समय दुवौ सुखकरि। दान लोभ बरनत तरवारि॥२०॥

बीच बीच भेरी, झाझ, और शख की ध्वनि होती है। उसी समय सुखद दान लोभ तलवार का वर्णन करने लगे ॥२०॥

दान उवाच-कवित्त

देखत ही लागि जाति वैरिन कै बहु भाति,
कालिमा कमलमुख सब जग जानि जू।
जदपि जनम भरि जतन अनेक किये,
धोवत हीं छूटत न केसव बखानि जू॥
निज दल आगें जोति चल चल दूनी होति,
अचला चलनि यह अकथ कहानी जू।
पूरण प्रताप दीप अञ्जन की राजि राजि,
राजति है वीरसिंघ पानि में कृपानी जू॥२१॥

सारा संसार जानता है कि देखते ही वैरियों के कमल सदृश मुखों में कालिमा लग जाती है। यद्यपि वे जन्म भर उसे धोने का प्रयत्न करते हैं फिर भी वह कालिमा छुटाये नहीं छूटती है। अपनी सेना के सामने उसकी ज्योति चपला की भांति चमकती रहती है। वीरसिंह की कृपाण में पानी और पूर्ण प्रताप विराजमान रहता है ॥२१॥

लोभ उवाच

देखत ही मोहित है मोहत महीप मति,
सुधि बुधि हीन अति देह की दसा करी।

गज घट घोटक विकट प्रति भट ठट,
निपटि निकट कन्ठ कटिवे कौ सहरी ॥
मोई सोई बैठे पाकसासन के आसननि,
जिन्हैं ढारैं चौर मे सुकेसी ऐसी सुन्दरी।
बीरसिंघ नरनाथ हाथ तरिवारि मोहै,
हौं कहौं अपूरव विषम विषयारी ॥-३॥

जिसे देखते ही नाहन महीप मुग्ध हो गया और उसे अपने शरीर की दशा का भी ध्यान नहा रहा है। हाथी घोटक तथा वीरों के कठ को काटने के लिए उसकी कृपाण चलती है। सभी लोग धराशायी हो जाते हैं जिनके ऊपर कभी सुन्दरियां चोर ढारा करती थीं। वीरसिंह के हाथ में शोभित होने वाली तलवार जल स भरी हुई है ॥२२॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंघ कर धनु कुसुम सुमनन हा के बान ॥
देखि देखि सुकसारिक बरनत सुनौ सुजान ॥२३॥

वीरसिंह के हाथ म कुसुम का धनुष और कुसुम का ही बाण है। उसे देख करके सुक सारिक वर्णन करते हैं, उसे सुनो ॥२३॥

सुक उवाच-कवित्त

दान का तरंगिनि के तरल तरंगिनि मैं,
बौरि बौरि मारे रोर कहत प्रबीने हैं।
अकबरसाहि के अनेक मान जीति जीति,
केसवदास राजन अभय पद दीनै हैं॥
सोधि सोधि रघुसिंह कीन्हैं वनसिंह,
नरसिंह ग्राम गहि गहि ग्रामसिंह कीनै है।
चिरु चिरु राज करौ राजा वीरसिंह,
काम काम के धनुष बान कौन काम लीनैं हैं ॥२४॥

सभा प्रवीण लोग कहते हैं कि दान की तरल तरंगों में डिबो कर सभी रोगो का मार दिया है। अकबर के अनेक मानों को जीत कर

राजाओं को अभय पद दे दिया है। शत्रुओं को ढूंढ ढूंढ कर बन भेज दिया है और नरसिंह ग्राम को पकड पकड़ कर मार्गसिंह बना दिया है। हे वीरसिंह देव। तुम सदैव राज करो। काम के बाणों को किस काम के लिए धारण किया है ॥२४॥

॥ सारिका उवाच ॥

रग जल पूर दल देखि देखि कोटि कोटि,
वीर बीरि मारे एक वीर रस भीने हैं।
डारि डारि असि दण्ड लीने बहु दण्ड,
दण्ड एकनि कौं दण्डधारि दूनै दण्ड दीने हैं॥
केसौदास एकनि मुछोरि नाम ग्राम धाम,
धाम धाम वाम वेष नारिन के कीने हैं।
राजन के राजा महाराजा वीरसिंह सुनी,
काम के धनुष बान इनकर लीने हैं ॥२५॥

अनेक खलों और करोड़ो वीरों को अकले ही वीरसिंह ने मारा है। तलवार छोड़कर अनेक दण्ड धारण किये फिर भी वीरसिंह ने एक ही दण्ड में दुगुना दण्ड दिया। कुछ ने तो अपना नाम, ग्राम, धाम, स्त्री सब छोड़कर स्त्री का वेष धारण कर लिया है। राजाओं के भी राजा वीरसिंह ने काम के धनुषबाण को धारण किया है ॥२५॥

॥ दोहा ॥

गूँगे कुबजे बावरे बहिरे बावन वृद्ध।
जान लयँ जन आइयौ छोटे खण्ड प्रसिद्ध ॥२६॥

गूँगे, बहिरे लूले लगड़े बावन, वृद्ध, दुष्ट सभी अपनी अपनी सवारी लेकर आये ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

सुखद सुखासन बहु पालकी। फिर वाहिनी सुखंचाल की।
एकनि जाते दय:सोहिये। वृषभ कुरगनि मन मोहिये ॥२७॥

सुखद और सुन्दर आसन वाली अनेक पालकी हैं और उनकी चाल बड़ी सुन्दर है। कुछ ने उसमें सुन्दर घोड़े जोत रखे हैं जोकि बैलों और हिरणों के मन को आकर्षित करते हैं ॥२७॥

तिहि चढ़ि राज लोक सब चल्यौ। सकल नगर सोभा फल फल्यौ।
मनिमय कनक जाल लहिनी। मुक्तिनि के झौरनि झौवनी ॥२८॥

उन पर चढ़कर सारा राजलोक चला। इससे सम्पूर्ण नगर सुशोभित हो गया मुक्ताओं और मणियों की झालरों से युक्त स्वर्णिम लहिनी जाल है ॥२८॥

घरारा बाजत चहुं दिसि भले। बीरसिंह तिहि गज चढ़ि चले।
हंस गामिन युत कुन गूढ। मनौ मेघ मघवा आरुढ़ ॥२६॥

जब बीरसिंह हाथी पर सवार हुए उस समय चारों ओर घरटे बजने लगे। ऐसा मालूम हुआ कि हंसों की भांति चलने वाला इन्द्र हाथी पर बैठा हुआ हो ॥२६॥

चहू ओर उपवन दरबार। दीजत दीरघ दान अपार।
तहँ दारिद दुख भीनै हियै। पढ़त गीत द्विज वेदहि कियै ॥३०

चारों ओर उपवन हैं। वहा पर बड़े बड़े दान दे रहा है। वहा पर दारिद्रय और दुख भरने पड़ गये और ब्राह्मण अनेक वेदों म अध्ययन कर रहे हैं और गा रहे हैं ॥३०॥

॥ सवैया ॥

भूतल कै नृग कै बलिकै सिव कै भयभात ते हौं निकस्यौ हौं।
मारत मारत श्री वर वीर पै जानै को के सव क्यो उवलौ हौ ॥
दुख दियो हरिचन्द दधीच तुतो अजहूँ कर माह अन्यौ हो।
या जग में हमकौं दुख कौ अमरेस कहा अमरेस धन्यौ हौ ॥३१॥

इस संसार में राजा नृग बलि और सिव के बल से आया हूँ। इतनी मार पड़ने के बाद भी इस संसार में कैसे उबर सका हूँ। हरिश्चन्द्र और दधीच का जो दुख दिया है वह आज तक सबको पता है। इस संसार में हमको दुख अमरेस ने दिया है ॥३१॥

॥ चौपाई ॥

दारिद पढ़त हुतौ दुख मन्यौ । सब्द आइ नृप श्रवनिनि पन्यौ ।
या कहि उठयौ नृपति जब भीत । बोलहु ताहि यह गीत ॥३२॥

दुखित होकर दारिद्र्य का पाठ पढ़ रहा था । वे शब्द राजा के कानों में आकर पड़ गये राजा ने उसी समय कहा कि इस दुखद गीत वाले को बुलाओ ।।३२॥

लै आये जहँ विप्र बुलाए । आमिष राजहि दौनों आए ।
कह्यौ राज सुनि विप्र अभीत । पढ़त हुतौ सुपढ़हु धों गीत ॥३३॥

ब्राह्मण वहां ले आया गया उसने राजा को आशीर्वाद दिया । राजा ने ब्राह्मण से कहा कि जिस गीत का अभी पाठ कर रहे थे, उसी गीत का पाठ अब निर्भय होकर करो ॥३३॥

पढयौ सबै सो राजा सुनौ । कहि विप्र तूँ किहिं दुख धुन्यौ ।
मेरे राजन विप्र डराइ । तोहि देइ दुख मारों ताहि ॥३४॥

जिस गीत का पाठ ब्राह्मण कर रहे थे उसी गीत का पाठ उन्होंने फिर किया । इस पर राजा ने पूछा कि तुम्हें कौन सा दुख है । हे मेरे राज्य में ब्राह्मण डरे । ब्राह्मण को जो दे उस मार मैडालू ॥३४॥

तब तिहिं पढ्यौ सवैया और । लाग्यौ सुनन नृपति सिरमौर ॥३५॥

उसके बाद उसने एक सवैया और पढ़ा जिसे राजा सुनने लगा ॥३५॥

॥ कवित्त ॥

हाथिन सौं हरखि सराइत केसौदास हय
 खुर खुरनि खुदाय डारियत हैं ।
पटनि सौं बाधि बोरि सौंधे के समुद्र
 माझ, सोने के सुमेरु हैं गिरास्य पारियत हैं ।
छीर खांड़ घृतन के वीजे नक रानी दिन,
 होम की हुतासन कौ ज्वाल जारियत है ।

वीरसिंह महाराज ऐसी हैं तुम्हारे राज,
जहां वहां कहौ कौन दोष मारियत हैं ॥३६॥
हाथियों की विनय (गर्जन) आप नहीं सुनते हैं और घोड़े के खुरों को हमेशा कटाया करते हैं। वस्त्रों में बांधकर उसे सुगंधित करके समुद्र के बीच में सुमेरु की भांति गिराकर उसे पार कर रहे हैं। खीर खांड और घृत को होम के बहाने आप नित्य उसे अग्नि में जलाया करते हैं। हे वीरसिंह! इस प्रकार का तुम्हारा राज्य है, जिसमें कहो कि तुम कौन दोष मारते हो ॥३६॥

॥ चौपाई ॥

जान्यो नृप सो विप्र न होई। यह दरिद्र जानत नहिं कोई।
वोही मारन की विधि रच्यो। विप्र वेस आयौ तिहिं बच्यौ ॥३७॥
राजा ने समझ लिया कि यह ब्राह्मण नहीं वरन् दारिद्र है। उसको मारने की इच्छा हुई किन्तु विप्र वेष में आया था, इसलिये नहीं मारा ॥३७॥

अभयदान दाजे नृपति कीजे ठौर नरेस।
वैरी साहि सलैम के जाइ बसौ तिहिं देस ॥३८॥
दरिद्र ने कहा कि मुझे अभयदान देकर रहने के लिये स्थान दीजिये। इस पर वीरसिंह ने कहा कि सलीम शाह मेरा शत्रु है उसी के पास जाकर रहो ॥३८॥

॥ चौपाई ॥

बाजे नगर निसान अपार। वहवै गये नृपति भीर के भार।
आनि जुरे राजनि के राज। कौन गनै रजपूत समाज ॥३९॥
नगर में बाजे बजे। राजा के पास भीड़ इकट्ठा हो गई। अनेक राजा आकर जुट गये और राजपूतों की तो गिनती ही नहीं की जा सकती है ३९

घर घर प्रति आनन्दे लोग। बाजे सुभ सोभा संयोग।
जब ही जब निकसै नरदेव। तब हीं तहां पूजा के भेव ॥४०॥

प्रत्येक घर में सभी लोग अनन्दित शोभा के साज सजने लगे। जिस समय भी राजा निकलता है उस समय पूजा की सामग्री उपस्थित रहती है ॥४०॥

द्वार द्वार साजै आरती । गावति तरुणी मनु भारती ।
अग पर नृप सौहैं बहु भाँति । आस पास राजनि की पाँति ॥४१॥

अनेक तरुणियाँ दरवाजे पर आरती सजाये हुए इस प्रकार गान करती हैं मानो सरस्वती गा रही हो। राजा अनेक प्रकार से सुशोभित है और उसके पास राजाओं की पक्ति है ४१

जनु कलिन्द पर चन्द अनूप। सब सिंगार पर जैसे रूप ।
लोभ बसीकृत मानहु दान । बन्दी कृत तनु मानव मान ॥४०॥

मानो कालिन्द के ऊपर सुन्दर चन्द्र हो अथवा सभी शृङ्गारों के ऊपर रूप हो अथवा दान के वश में लोभ हो अथवा मानु का बन्दी शरीर हो ॥४२॥

देखन की नृप तेही घरी । प्रति मन्दिरन चढ़ी सुन्दरी ।
बरखा रितु युत मनौ बसन्त । जनु प्रलम्ब पर तन बलवन्त ॥४३॥

राजा को देखने के लिये उसी समय सुन्दरियाँ अपने अपने घरों पर चढ़ । ऐसा लगा कि बसन्त ऋतु वर्षा ऋतु से युक्त है अथवा प्रलम्ब पर तन बलवन्त हो ४३

यो सोभित सोभा सौ सनी । मोहन गिरि अमनि मोहनी ।
जनु कैलास सैल पर चढ़ी । सिद्धनि की कन्या द्युति मढ़ि ॥४४॥

शोभा से युक्त इस प्रकार सुशोभित है मानो मोहन गिरि पर अमनि मोहनी हो। अथवा कैलाश पर्वत पर चढ़ी हुई सिद्धों की कन्यायें हों ॥४४॥

देवि देवि सी सुख सद्मिनी । पद्मिनो पर मानौ पद्मिनी ।
सुभ कवित्त उक्ति सी धरै । मुक्ति तरक सबकी मन हरै ॥४५॥

देवियों के समान सुख का घर है। अथवा पद्मिनी के ऊपर पद्मिनी हो। वे सभी के मन की युक्तियों तथा तर्कों को हर लेती है ॥४५॥

मनौ छजनि पर कीरति लसै। रूपनि पर दीपत्ति मों बसै।
गृह गृह प्रति गृह जनु देवता। जनु सुमेरु सोन की लता ॥४६॥
मानो छज्जों के ऊपर कीर्ति विराजमान हो। और सौंदर्य के ऊपर दीप्ति के समान विराजमान हो मानो घर घर गृह देवता हो। अथवा सुमेरु पर्वत पर सोने की लता हो ॥४६॥
एकनि कर दर्पन नहि हरै। मना चान्द्रि का चन्द्रहि धरै।
एक अरुन अम्बर मम भिना। जन अनुराग रंगी रागिनी ॥४७॥
एक अपने हाथ से दर्पन को नहीं हटाता है माना चंद्रिका चन्द्र को पकड रही हों। एक अरुण रंग-वर्ण का है मानो अनुराग के रङ्ग में रङ्गी हुई हों ॥४७॥
एकै वर्षासित पुष्प असेष। मनौ पुष्पलता सुर वेष।
एकै सब कपूर की धूरि। डारति चन्दन वन्दन भूरि ॥४८॥
एक सभा पुष्पों की वर्षा कर रहा है मानो पुष्प लता हैं। एक शुभ कपूर चन्दन एव वंदन को छोड़ रही है ॥४८॥
बरन बरन बहु फूलनि हारि। एक कुकुमा कुंकुम वारि।
बरषत मृगमद बुन्द बिचारि। मना जमुना जल की धारि ॥४९॥
अनेक वर्ण के फूलों के हार हैं। कुकुमा, कुंकुम और मृगमद की वर्षा करती हैं। उसे देखने से ऐसा लगता है कि जमुना की मानो धारा हो ॥४९॥
मनौ त्रिबेनी जल अभिषेक। करति देव त्रिय करै विवेक।
इहि विधि गये राज दरबार। बन्दीजन जस पढत अपार ॥५०॥
मानो त्रिवेनी का अभिषेक करने के लिए देवों की स्त्रियां पूजा कर रही हैं। इस प्रकार नारसिंह अपने दरबार को गये और साथ बन्दीजन यश का पाठ पढ़ रहे थे ॥५०॥

सवैया

भूषति देह बिभूषति दिगम्बर नाहिन अम्बर अगनवीनैं ॥
दूरि कै सुन्दर सुन्दरि केसव दौरि दरीनि मैं आमान कीनैं ॥

देखिये मण्डित दण्डन सौ भुजदण्ड दुवै अमि दन्ड विहीनै।
राजनि वीर नरप्पति के उर कुमण्डल छाड़ि कमण्डल लीनैं ॥५१॥

सुन्दर विभूषित देहों पर वस्त्र नहीं हैं। उन सभी ने दौड़ करके दर्शन में अपना आसन जमा लिया था। सभी दण्डन से मण्डित हैं राजा तथा वीरों ने कुमण्डल को छोड़कर कमण्डल को धारण कर लिया है ॥५१॥

॥ दोहा ॥

कमल कुलिन में जात ज्यौं भौंर भरयो रस भेव।
राजलोक मैं त्यौं गए राजा वीरसिंह देव ॥५२॥

कमल के फूलों म जिस प्रकार से भ्रमर जाता है उसी प्रकार से राजलोक म वीर सिंह गया ॥५२॥

इति श्रीमत्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे मदन मनोत्सव वर्नन नाम षडविंशति ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

इहि विधि दान लोभ रुचि रये। बहुत ग्राम पुर देखत गये।
वासर एक तीसर जाम। देखन चले राज के धाम ॥१॥

इस प्रकार से दानलोभ ग्राम व अनेक ग्रामों को देखते हुये चले। एक दिन तीसरे याम के बाद राजधाम को देखने के लिये चल ॥ ॥

देख्यो जाइ राज दरबार। आठौं रस केसौं आगार।
आवत जात राज रनधीर। दुपद चतुपद की बहु भीर ॥२॥

उन्होंने राज दरबार को जाकर देखा जो कि आठों रसों का आगार था। अनेक राजे दरबार में आते जाते हैं और द्विपद और चतुष्पद की भीर है ॥२॥

घाटत घटित जटित मनि जाल। बिच-२ मुक्ता माल विमाल।
ऐसे प्रजा प्रजनि समेत। जामिनि करनी करनि समेत ॥३॥

बाजार मणियों के जाल से सुशोभित है। बीच बीच म मुक्ताओं की मालायें हैं। इस प्रकार की प्रजा क साथ राजा सभी कर्म करता है ॥३॥

सकल सुगन्ध सुगन्धित अंग । सुमन लसैं फूले बहुरङ्ग।
सुभग चन्द्रमय सी लेखियैं। जामैं विविध विबुधि पेखिये ॥१०॥

अनेक रंगों के सुगंधित पुष्प सुशोभित हैं। सुभग चन्द्रमा के समान दिखाई देता है जिससे अनेक विबुध दिखाई देते हैं ॥१०॥

उत्तम मध्यम अधम सयोग; मनो विविध व्याकरण प्रयोग ॥११॥

उत्तम, मध्यम अधम का सयोग इस प्रकार दिखाई देता है मानों व्याकरण के प्रयोग हों ॥११॥

जद्यपि ब्रह्म भव्य जग रहै । ब्रह्मपुत्र की निन्दा करै।
अद्भुत वार्तनि की करतार। अमल अमृत मडल कौ सार ॥१२॥

यद्यपि ससार ब्रह्म की भव्यता के लिए परेशान रहता है फिर भी ब्रह्मपुत्र की निंदा किया करता है। अद्भुत बातों का वह करतार है और अमृत मण्डल का सार है ॥१२॥

अघ की गङ्गा कैसी धार । गुनगन कौ आदर्श अपार।
सरनागत को मनो समुद्र। दुष्ट जननि को अद्भुति रुद्र ॥१३॥

पाप के लिये वह गगा की धारा है। गुणों के लिये अपार आदर्श है। शरणागत के लिये समुद्र के समान है और दुष्टों के लिए रुद्र के समान है ॥१३॥

सत्यलग कौ ताल तमाल । छमा दया का मनौ दयाल ।
जाचक चातक को धन रूप। दीन मीन जलजाल सरूप ॥१४॥

सत्यलता के लिये मानो ताल और तमाल हों। क्षमा और दया का मानो घर हो। याचक रूपी चातक के लिये धन के रूप में हैं। मछली की भांति दीनों के लिये जल के रूप में है ॥१४॥

॥ दोहा ॥

केसव दारिद दुरद कौ केहरि नख उनहारि।
बीरसिंह नरनाथ के हाथ लसति तरवारि ॥१५॥

दरिद्रता और पाप के लिये केहरि के नख के रूप में है। बीरसिंह के हाथ में सुशोभित तलवार है ॥१५॥

॥ सवैया ॥

जूझ अजूझ अध्यारिनि सी तिह काल लसी है ।
पाप कला पयवारिनि के सवको पिकुनाथन साथ गसी है ॥
वेई है वीर नरध्यति के कल करति सागर पास असी है ।
वैरिन की मव श्री जिनकी तरवारि तरगनि माझ बही है ॥१६॥

जूझ अजूझ उस समय अधकार की भाति सुशोभित हुए हैं। पाप के समूहों को पिकुनाथ के साथ ही ग्रस लिया है। उन्हीं वीर नृपति की काति सागर के पास आकर रुकी है। वैरियों की कीर्ति वीरसिंह की तलवार की धार में वह गई है ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

कवहूँ कुँवर वेष सी लसै। सोभा के सागर में बसै।
जिनकी कृपा दृष्टीअनुहारि। कामधेनु कैसी सुखकारि ॥१७॥

शोभा के सागर में बसा हुआ कभी कुवर वेश में सुशोभित होता है। उनकी कृपा दृष्टि वैसी ही है जैसी की कामधेनु का पा जाना है ॥१७॥

कहूँ कुवेर की सोभा धरैं। राज राज सब सेवा करैं।
जाकी प्रीति माझ सब कहैं। सवही कौसी भव निधि कहैं॥१८॥

कहीं कुवेर की शोभा का धारण करके राज्य की सेवा में लगा हुआ है। उसकी प्रीति का सभी लोग भवनिधि कहते हैं ॥१८॥

कवहूँ कुधर्म राज के वेष। राजनीति जहँ बसैं असेष।
सब दिन धर्म कथा सँचरै। धरमातमा जहाँ पग धरै ॥१६॥

कभी कुधर्म का वेष धारण करके सारी राजनीति वहाँ पर वास करती है। सभी समय धर्म की कथा होती है और वहा पर केवल धर-मात्मा पग रखते हैं ॥१६॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्म आदि दै कीट लौं सुनिजै दान प्रभाव।
सबही के सिर पर बसै देउ नीति की भाव ॥२०॥

ब्रह्म से लेकर वीर तक दान का प्रभाव सुन लें कि वहा पर सभी के लिए देवनीति का ही भाव रहता है ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

कबहुक वीरसिंह देउ तिहि सभा । सूरज कैसी सोभित प्रभा ।
जगत जीविका जाके हाथ । बसति रयी उर कमलानाथ ॥२१॥

कभी वीरसिंह उस सभा में सूर्य की प्रभा के समान सुशोभित होता है। संसार की जीविका जिसके हाथ में है, वही कमला उसके हाथ में निवास करती है ॥२१॥

उदै उदौ सबही को होय । वहै जगे सोवे सब कोय ।
सोई काल दिग है ठढ्यौ । सदा काल सबकौ प्रभु भयौ ॥२२॥

उदय होने पर ही सबका उदय होता है। एक वही जगता है और सब सोते हैं। जो काल सभी का स्वामी बना रहता है वही उसके पास टिक गया है ॥२२॥

कबहुक सुरनायक सौ लगै । धरै बज्र कर धनि जगमगै।
ठाढ़े कवि सैनापति धीर । कलित कलानिधि गुन गभीर ॥२३॥

कभी बज्र को धारण करने पर इन्द्र के समान लगता है। सुन्दर सभी कलाओं से पूर्ण कवि और सेनापति खड़े हुये हैं ॥२३॥

गुणी गिरापति विद्याधारी । इष्टि अनुग्रह निग्रह भारी ।
कहँ मन महादेव ज्यों हरै । अंग विभूतिनि भूषित करैं ॥२४॥

सभी विद्वान गुणी और गिरापति हैं और उनमें निग्रह अधिक है। शरीर को जब वह विभूति से विभूषित कर लेता है तब महादेव के समान मन को हर लेता है ॥२४॥

सक्ति धरै सोभियत कुमार । गुन गनपति गनपति दरबार ॥२५॥

शक्ति धारण किये हुये कुमार इस प्रकार सुशोभित होता है जिस प्रकार गणपति दरबार में सुशोभित होते हैं ॥२५॥

॥ दोहा ॥

गङ्गाजल उस भाल ससि सहित सुभगती नित्त।
मोहनि उरसि अनुक्त जू महादेव से मित्त ॥२६॥

जिस प्रकार से गंगा जी और चंद्र महादेव जी के पास नित्य शुभ गति को देने वाले सुशोभित हैं उसी प्रकार वीरसिंह के हृदय में अनुक्त महादेव के मित्र के समान वास करती है ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

पुरुषारथ प्रभु सौं सोहियौ। नल सौं दानि जगत मोहियौ।
हरिश्चन्द्र सौं सत्यावन्त। दिन दधीच सो धीरजवन्त ॥२७॥

पुरुषार्थ की शोभा प्रभु के कारण ही है। नल के समान दानी होकर उसने संसार को मोहित कर लिया है। हरिशचन्द्र के समान सत्यवान है और दधीच की भांति धैर्यशाली है ॥२७॥

श्रीपति रामचन्द्र सौं साधु। भृगुपति ज्यौं न छमैं अपराधु।
जान भोज हनुमत सौं जसी। विक्रम विक्रम सो साहसी ॥२८॥

रामचन्द्र की भांति साधु स्वभाव है और भृगुपति के समान वह भी अपराधी को क्षमा नहीं करता है। भोज और हनुमान की भांति *जसी है और विक्रमादित्य की भांति विक्रमी है ॥२८॥*

॥ कवित्त ॥

दाननि में बलि से बिराजमान जिह पहं मांगिबे को ह्वै गये,
त्रिविक्रम सुनल से। पूजत जगत प्रभु द्विजनि की मंडली में,
कैमौदास देखिजत सौनक सनक से ॥ जो धन में भरत भगीरथ
दसरथ प्रथु पारथ से विक्रम सुप्रानक बनक से। मधुकर साहि सुत
महाराजा वीरसिंह केसोदास राजनि में राजत जनक से ॥२६॥

दानियों में बलि के समान है जिसके पास मांगने के लिये त्रिविक्रम और सुनल के समान हो गये। सौनक और सनक की भांति त्यागी ब्राह्मण मण्डली उसको पूजा करती है। योद्धा के रूप में भरथ, भागीरथ दशरथ

पृथु और अर्जुन की भांति हैं। मधुकर शाहि का पुत्र वीरसिंह राजाओं में जनक की भांति सुशोभित हैं ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

यह सुनिकै तन मन रीझियौं। हाटक जटित ताहि गज दियौं।
केसव सौं यह बाल्यौं बोल। राज धर्म सबही कौ तोल ॥३०॥

यह सुनकर मन प्रसन्न हो गया और उसे सोने से जटित हाथी दिया। केशव ने कहा कि राजधर्म सभी का सार है ॥३०॥

परमानन्द पापीन कौ मूल दुख कौ फल अपजस कौ मूल।
नेकहि मोहि न नीकौ लगे। सोई मतौ जु पारैं लगै ॥३१॥

परमानंद पापियों का मूल, दुख का फल और शूल है। मुझे थोड़ा भी अच्छा नहीं लगता है। कोई ऐसी बात कहो जिससे पार लगा जा सके ॥३१॥

कह राजा ऐसोई राज। तुमकौं उलटो वचन समाज।
उदासी क्यौं हूजे चित्त। तुमकौं बल बहु सौंप्यौ मित्त ॥३२॥

हे राजन्! मैंने ऐसे ही राज्य का वर्णन किया किन्तु आपकी समझ ही उल्टी है और आप अपने चित्त में उदास क्यों होते हैं। आपको तो बल सौंप दिया है ॥३२॥

॥ दोहा ॥

दान लोभ देखे नृपति देखी सभा उदार।
मूरति धरि ठाढ़े भये जाए राज दरबार ॥३३॥

दान लोभ ने राजा और उसकी उदास सभा को देखा। मूर्तिमान राज दरबार में आकर खड़े हो गये ॥३३॥

इतिश्रीमन्सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे वरनन नाम सप्तविंशति प्रकाशः ॥२७॥

॥ चौपाई ॥

तिन्हें देखि नृप सौं प्रति हार। गुदरण आयौं बुद्धि उदार।
महाराज द्वै विप्र अपार। अद्भुत दुति ठाढ़े दरबार ॥१॥

उन्हें देखकर द्वारपाल राजा से कहने आया कि हे राजन ! आपके दरबार में खड़े हैं जिनकी कांति अद्भुत है ॥१॥

पीत धौवती पहिरें गात। ऊपर उपरैना अवदात।
मोहत उर उपवीत सुदेस। गौर स्याम वपु तरुन सुवेस ॥२॥

पीली स्वच्छ धोती पहने हैं, उनके ऊपर शुद्ध उपरैना है। हृदय पर सुन्दर यज्ञोपवीत सुशोभित है। गौर श्याम वर्ण के शरीर हैं ॥२॥

कुंमकुम तिलक अलक सब रङ्ग। सहज सुगंध सुगन्धित अंग।
हिमगिरि विन्ध्य धरै ध्वज रूप। किधौं प्रकट रस विरस सरूप ॥३॥

कुंकुम और तिलक लगाए हुए हैं। सुन्दर बाल हैं। स्वाभाविक रूप से ही शरीर सुगंधित है। ऐसा लगता कि हिमालय ने विंध्याचल का ध्वज के रूप में धारण कर लिया है अथवा रस विरस रूप में प्रकट हुआ है ॥३॥

दुख सुख दुनै कि प्रेम वियोग। पुन्य पाप अग्यान प्रबोध।
सत्य झूठ कै हाँस सिंगार। कैधौं अनाचार अचार ॥४॥

अथवा सुख दुख, प्रेम वियोग, पुण्य पाप, अज्ञान ज्ञान सत्य झूठ, अनाचार आचार हों ॥४॥

साधु असाधु कि मानामान कैधौं। जोग वियोग प्रमाण।
कृतयुग कलियुग अपजस सोभ। विष निर्द्वेष कै लोभ लोभ ॥५॥

अथवा साधु, असाधु, मान अपमान, योग वियोग हों, अथवा कृत युग और कलियुग में अपयश के समान हों, अथवा विष विदूष, लोभ और अलोभ हों ॥५॥

शुक्ल शुक्ल पद्म अनुमान। गङ्गा यमुना रूप प्रमान।
के जै अजय अर्थबन स्याम। रूप रूप मानो ससिकाम ॥६॥

अथवा शुक्ल और कृष्णपक्ष हों या गंगा यमुना हों या जय और पराजय हों अथवा अनेक रूप में शशि काम हो ॥६॥

कैधौं वर्षा सरद प्रभाउ। कैधौं भागाभाग सुभाउ।
किधौं अविद्या विद्या रूप। पुंडरीक इन्दीवर भूप ॥७॥

अथवा वर्षा और शरद ऋतु के प्रभाव हैं अथवा भाग्य अभाग्य के रूप हैं अथवा विद्या और अविद्या के रूप हों या पुण्डरीक और इन्दीवर हों ॥७॥

किधौं अनुग्रह साप प्रकार। शुक्र सनीचर के अवतार।
सत्व तमोगुन नारद व्यास। बासुकि काली रूप प्रकास ॥८॥

अथवा अनुग्रह के शाप के फल है शुक्र और शनिश्चर के अवतार हैं अथवा सत्व और तमोगुण या नारद और व्यास या वासुकि और काली के रूप हो ॥८॥

किधौं राम लछिमन द्वै साग। मन क्रम बचन किधौं अनुराग।
देखि प्रणाम कियो नर नाथ। लै गये सभा मध्य सुर नाथ ॥९॥

अथवा राम लक्ष्मण दो भाई हो अथवा मन कर्म वचन के अनुराग हो। उन्हें (दान लाभ) देखकर राजा ने प्रणाम किया और सभा के बीच में गये ॥९॥

युग सिंहासन तुल मगाई। बैठारे दोऊ सुरराई।
निजकर कमल पसारे पाई। कीनी पूजा विविधि बनाई ॥१०॥

दो सिंहासन मगाकर दोनों को बैठाया। अपने कमलवत् हाथों से पैर धोये और अनेक प्रकार से पूजा की ॥१०॥

॥ दोहा ॥

भूषण पट पहिराय तन अङ्ग सुगन्धि चढ़ाई।
बारा धरि आगे नृपति बिनती करी बनाई ॥११॥

शरीर को आभूषण और वस्त्र पहनाकर सुगंधित वस्तुओं से उन्हें सुगंधित किया। पान आगे रखकर राजा ने विनती की ॥११॥

॥ चौपाई ॥

परम अनुग्रह मोपर कर्यो। चारु चरण यह अङ्गन धर्यो।
मेरे घर सब सोभा भरे। पुन्य पुरातन उरुवर करे।
जो कछु आये चित्त विचार। कहौ कृपा केसव सुखकारि ॥१२॥

आपने बड़ी कृपा की कि मेरे घर आने का कष्ट किया। मेरे घर सभी शोभा के साज उपस्थित हैं। आपकी जो इच्छा हो उसे कहें ॥१२॥

॥ दोहा ॥

दान लोभ नृप वचन सुनि तन मन अति सुख पाई।
पढ़े गीत तब द्वै दुहुनि वदन वदन कमल मुस्क्याई ॥१३॥

दान लोभ राजा के वचना का सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। कमलवत् मुख से मुसकराते हुए दोनों ने दो गीत पढ़े ॥१३॥

॥ दान उवाच ॥ कवित्त ॥

बाड़व अनल ज्वाल साजि लाज जारी,
जिन जोर जल जाल की कराल सूग वीची है।
केसोदास पर्वत कराल अहिकालहू नैं,
कीनी देखि जाकी सदा निजआँख नीची है।
सब सर्व मद गो अखब गर्व गश्रवानि
वज्रहू की धारा धीर रीझ रस सींची है।
नाचै इभ कुम्भनि में तेरी तरवारि रन,
देखि कै तमासो वाको मीच आंख मीची है ॥१४॥

बड़वाग्नि की प्रज्वलित लपटें भी तेरी तलवार के सम्मुख लज्जित हो गई हैं। कराल पर्वत अहिकाल ने भी तुझे देखकर अपनी आँखें नीची कर ली हैं। सभी लोगों के गर्व और अहंकार को चूर करने वाली वज्र की धारा भी तुझे देखकर रस का सञ्चार करने लगती है। कुम्भनि में तेरी तलवार का तमाशा देखकर मृत्यु ने भी अपनी आखें मींचली हैं ॥१४॥

॥ लोभ उवाच ॥

रज्यौं जिहं केसौदास टूटति अरुननाम,
प्रात भट अङ्गनि तें अङ्ग परसत हैं।
सैना सुन्दरीन के विलोकि मुख मृगनीनि,
विलकी किसकी जहीं ताहीं को धरत हैं।

गाढ़े गढ़ खेलही खिलोननि ज्यौं तारि डारे,
जग जए जम चारु चन्द्र को अरत है।
बीरसिंह साहिब जू अगनि विसाल रन,
तेरी करवाल बाललीला सा करत हैं ॥१५॥

टूटना हुई चक्रनाथ का जिसने रंजित कर दिया। योद्धाओं के अंगों का ही सदैव स्पर्श किया करता है। सुन्दरियों की सेना के मुख और आभूषणों को देखकर आनादत होकर जिस तिसका आलिंगन करता है। ससार के यश को तूने खेल म ही खिलौनों की भाँति तोड़ डाला है। हे वीरसिंह! तू महाबली है और युद्ध म तेरी तलवार बाल लीला सा कर रही है ॥१५॥

चौपाई

दानलोभ अपनौ वपु गह्यो। आदि अन्त को ब्यौरो कह्यो।
देव देवि की आसन पाई। तुम पर हम आए सुखदाई ॥१६॥

दान लोभ ने अपना शरीर धारण किया और आदि से अन्त तक की सारी कथा कही। देवी की आज्ञा पाकर हे देव! मैं तुम्हारे पास आया था ॥१६॥

जेही भाँति होय निरधार। कीजे सोई चित्त विचार।
यह सुनि वीरसिंह सुख पाई। वचन कह्यौ सिव सभै सुनाई ॥१७॥

जिस प्रकार मे भी उद्धार हो वही अब विचार कीजिए। इन वचनों से मुग्ध होकर वीरसिंह ने अपनी सभा को सुनाकर कहा ॥१७॥

दोहा

विविध मित्र मन्त्रि सुना राजराज कविराज।
कौन भाँति पूरन करो दानलोभ के काज ॥१८॥

राज्य के मित्र, मत्री कविराज सुनो और बताओ कि मै दान लोभ का काम किस प्रकार पूर्ण करूँ ॥१८॥

देवी सातों दीप की सौंप्यौ सबै सयान।
दान लोभ पये यहा सुनिजै कर्‌यौ प्रमान ॥१६॥
सातों द्वीपों की देवी ने सभी प्रकार से विचार करके दान लोभ की बात कही ॥१६॥

चौपाई

दान लोभ के एकै धर्म। तातैं सुनौ दान के कर्म।
तीन प्रकार कहावत दान। सत्व रजोगुन तमो निधान ॥२०॥
दान और लोभ का धर्म एक ही है। इसलिए दान के कर्म को सुनो। दान तीन प्रकार का होता है सात्विक, राजसिक और तामसिक ॥२०॥

पाई सुविप्रहि दाज दान। देस काल सो सात्विक जान ॥२१॥
ब्राह्मण को दिया दान देश काल के अनुसार सात्विक दान होता है ॥२१॥

अनाचार साचार अगाधु। मूरख पढ्या कि साधु असाधु।
विप्र होत जग जुग अनुरूप। तातैं विप्र अतिथि कौ रूप ॥२२॥
अनाचारी आचारी असाधु साधु, में से कुछ भी ब्राह्मण हो, किन्तु फिर भी वह अतिथि होता है क्योंकि वह रूप संसार में विष्णु का रूप होता है ॥२२॥

श्लोक

साचारो वा निराचरः साधुर्वासाधुरेव च।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्रह्मणो माम की तनुः ॥२३॥
ब्राह्मण साचार हो अथवा आचार रहित, साधु हो अथवा असाधु शिक्षित हो अथवा अशिक्षित फिर भी पूज्य है ॥२३॥

चौपाई

आपु न देय देय जुग दान। तासौं कहियैं राज सुजान।
बिन श्रद्धा अरु वेद निधान। दान दहि ते तामस दान ॥२४॥

स्वयं दान न देकर युगदान दे तो उसे राजस दान कहते हैं और जब दान बिना श्रद्धा और वेद के विधान के दिया जाता है तो वह दान तामस दान कहलता है ॥२४॥

तीन्यौं तीनि तीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अधम विचार।
उत्तम द्विजवर दीजै जाई। मध्यम निज घर देई बुलाई।
मागे दीजै अधम सुदान। सेवा को मव निरफल जान ॥२५॥

तीनों ही दान उत्तम मध्यम अधम के विचारानुसार हैं। उत्तम दान तो यह है कि ब्राह्मण के घर जाकर दान दिया जाय और मध्यम दान यह है कि ब्राह्मण को घर बुलाकर दिया जाय और अधम दान वह होता है जो कि माँगने पर दिया जाता है। इस दान का कोई फल नहीं होता है ॥२५॥

श्लोक

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव च मध्यमम्।
अधमं याचमानं च सेवादानं च निष्फलम् ॥२६॥

– दान चार प्रकार के होते हैं—(१) उत्तम, स्वयं जाकर देवे (२) मध्यम में बुलाकर दिया जाय (३) अधम माँग कर दिया जाय (४), निष्फल दान ॥२६॥

श्रेष्ठ उत्तम दान वह होता है जिसे ब्राह्मण के घर पर जा कर दिया जाता है और जो दान ब्राह्मण को बुलाकर दिया जाता है मध्यम दान होता है और मागने पर जो दान दिया जाता है अधम होता है और उसका कोई फल भी नहीं होता है ॥२६॥

चौपाई

सुपनि नित्य नैमित्तिक दान। नित्य जु दीजै नित्यहि दान।
नैमित्तिक सुनिजे सुखपाई। दीजे दान सुकालहि पाई। ॥
पर्हित निमित्य नजीकहि देउ। बहुरै नगर वासिकन देउ ॥२७॥

नेम सहित जो नित्य दान दिया जाता है उसे नित्यदान कहते हैं। जो दान किसी समय विशेष (पर्व आदि) पर दिया जाता है उसे नैमित्तिक दान कहते हैं ॥२७॥

बहुरि अपने बसे जु देस। बचे जु ताकहँ देउ बिदेस।
सो सकाम जाने निःकाम। बहुरि सुजानों दक्षिण वाम ॥२८॥

दान का धन पहले निज आश्रित जनों को दो, फिर नगर निवासियों को, फिर देश वासियों को। दक्षिण:वाम दान का विचार करो ॥२८॥

सफलहि छियें स्यो . सकाम। हरि हित दीजे सो निरकाम।
धर्म निमित्त सुदक्षिण जान। तिनमें एक सुदास कुदान ॥२९॥

सफलता की इच्छा से जो दान दिया जाता है वह सकाम दान होता है और ईश्वर इच्छा से दिया जाने वाला दान निःष्काम होता है। धर्म के लिये जो दान दिया जाता है वह दाक्षणी दान होता है। एक कुदान भी है ॥२९॥

धर्म विनासी अधम बखान। विप्रनि दीनैं द्वै विधि दान।
देहु दान जिनसों बहु सुख। है कुदान जनि देख्यो मुख ॥३०॥

धर्म विनाश के लिये जो धन दिया जाता है वह अधम है। ब्राह्मणों को दो प्रकार का दान दिया जाता है। दान वहां देना चाहिये जिससे सबको सुख हो और कुदान देने वाले का मुख भी नहीं देखना चाहिये ॥३०॥

श्लोक

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥३१॥

तप की महत्ता सतयुग में कही गयी है। सतयुग में तप और त्रेता में ज्ञान और द्वापर में यज्ञ कलियुग में दान श्रेष्ठ होता है ॥३१॥

चौपाई

दान लोभ :मय जग के काज। यहै जानि मानै सुरराज ॥३२॥

ससार के कामों के लिये ही मुरराज ने दान लाभ को बनाया है ॥३२॥

छप्पे

जान लोभ कछु लहि दान को दान कहावै।
लिये दिये बिन लोग कहाँ क्यो सुख दुख पावै॥
दान लोभ में बसत लाभ पुनि बसत दान बन।
भव्य दियो भगवन्तहि दिये लिये बिनि क्यों बन॥
निज कारण सब ससार कहँ दान लाभ दोऊ जनै॥३३॥

जो कुछ भी लोभवश लिया जाता है वह सभी दान कहलाता है। यदि लेन देन समाप्त हो जाय तो लोग सुख दुख किस प्रकार पावें। दान का वास लाभ में है और लाभ दान में वास करता है। बिना लिए दिए कुछ भी होना सम्भव हो नहीं है। निज कारण ही ससार में दान लोभ है ॥३३॥

॥ पुन. ॥

जे सुख कछू अनस्य नइ लाजे।
जिहि है उपजे पाप न दीजे ताहि न लीजै॥
दावेही कहँ दानलोभ लीवे कहँ कीनै।
दोहन लेहि ते वेद कहँ सबहा ह्वै दीनै॥
सन्तति सदा समान तुम दुहं लेहु हरि देर जग।
तुम दानलोभ दोऊ जनै देव देव लागे सुमग॥३४॥

जिससे सुख हो उस वस्तु को ले लेना चाहिये किन्तु जिस वस्तु से पाप की उत्पत्ति होती हो उसे न तो लेना चाहिये और न देना ही चाहिये। लेने देने के लिये ही दान लाभ है। सभी सन्तति समान हैं उन्हें ससार में लेना देना चाहिये ॥३४॥

॥ चौपाई ॥

ऐसो वचन कहन नग मित्त। हरषि उठे सबही के चित्त॥३५॥

जगमित्त ने जब इस प्रकार के वचन कहे तब सभी हार्षित हो उठे ॥२५॥

इति श्रीमत्सकल भूमराडालाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्र दानलोभ समान तनेन नाम अष्टविंशति ॥२८

॥ चौपाई ॥

वीरसेन सुनौ मति धीर। देखहु तुइनौं सुचित सरीर।
जो कुछ होये तुम्हारे चित्त। कि कहिनै होय गै कहिजै मित्त ॥१॥

हे मतिधीर वीरसिंह ! तुम भी सुन्दर शरीर को देखो। जो कुछ तुम्हारे मन में हो उसे कहो ॥१॥

॥ महाराज उवाच ॥

राज्य रच्यो रच्यौ विधि कौ मूल। अनुकूलनि कौ है प्रतिकूल।
जाहि दैन लीजत है सुख। सोई देत हमैं फिरि दुख ॥२॥

ब्रह्मा ने राज्य को दुख का मूल बनाया है। जिसे सुख देने की इच्छा करता हूँ वही मुझे उसके बदले में दुख देता है ॥२॥

बहुत भांति हम हित हित भरी। रामदेव सौं विनती करी।
आपनु सुख मैं कीजै राज। हम करिहैं सब सेवा साज ॥३॥

अनेक प्रकार से हित का विचार करके मैंने रामदेव से विनती की। मैंने उनसे कहा कि वे सुखपूर्वक राज्य करें और मैं उनकी सेवा करूंगा ॥३॥

जाई हम उनिकौ हित करै। सोई बे उलटी जब कहै।
सोई सोई किनौ काज। जेहीं जेहीं भयौ अकाज ॥४॥

जितना ही मैं उनके हित की बात करता हूँ उतना ही वे उलटी बात करते हैं। उन्होंने वही काम किये जिनसे सदैव अकाज ही होता रहा ॥४॥

जौ हम रानी राखन लई। वाहित भागि कह्यौ कहि गई।
लरिका जानि राउ भूपाल। तिनकौ करत लयौ प्रतिपाल ॥५॥

जिस रानी को हमने रखने का विचार किया वह उसके लिए वहीं से भाग गई। नूरालराव का पुत्र जानकर उसका प्रतिपाल करने का निश्चय किया।।५।।

हम उनके सिर छाडौ धाम। उनि कीनों सब उलटौ काम।
सुनि जु हैं हैं मिगरौ आपु। जैसे बुरे राउ भूपाल ।।६।।

मैंने उनके शिर पर सारा काम छोड़ा और उन्होंने सारा काम उल्टा ही किया। आपने भी सुना होगा कि नूरालराव कितने बुरे हैं।।६।।

।। दोहा ।।

जासों कीजत पुन्य अति ताके जित मैं पाप।
सबके लिये जिय की बात तुम सब समुझत हौ आप।।७।।

जिसके लिए इतना पुण्य करते हैं उसी के हृदय में पाप है। सबके हृदयों की बात आप स्वयं समझते हैं।।७।।

।। दान उवाच ।।

महाराज मुनि वीरसिंह देव। तुम सों कहों राज के भेव।
इकहौ यह नृप कर्म कराल। दूजें वर्त्तत है कलिकाल ।।८।।

हे वीरसिंह! मैं तुमसे राज्य का भेद कहता हूँ। एक तो राजा का कर्म कठिन है और दूसरे कलिकाल है।।८।।

जमै वर्त्ति जु जानै लाय। ताकौ दुहूँ लोक सुख होय।
सोदर सुत अरु मन्त्रि मित्र। इनके हम प सुनौ चरित्र ।।९।।

जिसमें लोभ रहता है उसे दोनों लोकों में सुख होता है। भाई, पुत्र, मन्त्री और मित्र के चरित्र मैं तुम्हें सुनाता हूँ।।९।।

इनहो लग्यौ राज रो काज। इनहीं तैं सब होत अकाज।
राज भार नल मैं यह दियौ। छल बल छीनि सबै उन लियौ ।।१०।।

इन्हीं से राज्य का काम होता है और इन्हीं से सब काम खराब भी होते हैं। राज्य का भार नल राजा को दिया फिर भी छलबल से उन्होंने छीन लिया।।१०।।

तब उन आपनो राज विचारि । नल दमयन्ति दये निकारि ।
उग्रसेन सुत के हित रये । तिनके पहिरत सोवत भये ॥११॥

तब उन्होंने सोचा कि यह मेरा राज्य है और इसलिये उन्होंने नल दमयन्ती को निकाल दिया । उग्रसेन के पुत्र के लिये मारे पहुंचे सो गये ॥११॥

जनपद जन सब अपने भये । राजबन्दि खानै दये ।
राजा सुरथ राज की गाथ । सौंपो सब मन्त्रिन के हाथ ॥१२॥

जनपद के सभी लोग अपने हो गये । राजा सुरथराज की कथा प्रसिद्ध है कि उन्होंने राज्य को मन्त्रियों को सौंप दिया था ॥१२॥

सन्तति मृगया रसिक विचारि । मन्त्रिन राज दये निकारि ।
दिल्ली को नृप पृथ्वी राज नाके सबही बल को साज ॥१३॥

मन्त्रियों ने राजा को मृगया का रसिक जानकर निकाल दिया । दिल्ली के राजा पृथ्व राज में सभी प्रकार की शक्ति था ॥१३॥

तिहि नृप मित्र कर्‌यौ कैलास । सौंप्यो राज काज रनिवास ।
तिहि पापिष्टन कर्‌यौ विचार । राजलोक के रच्यौ बिगार ॥१४॥

उसने कैलाश को अपना मित्र बनाया और राज्यकर्म तथा रनिवास का सारा कार्य उसी पर छोड़ दिया । उस पापी ने राज्य के विनाश का विचार किया ॥१४॥

और भले सब राज चरित्र । मूरख भले न मन्त्रि मित ॥१५॥

राज्य की और सभी बातें अच्छी हैं । मन्त्री और मित्रों से मूर्ख भले हैं, लेकिन ये नहीं ॥१५॥

॥ दोहा ॥

सोदर मन्त्रि मित्र सुत ये नरपति के सग ।
राज करै न इनहीं लिये राखै सब दिन सग १६

सोदर मन्त्री मित्र सुत राजा साथ रहे तो सब दिन राज्य करे ॥१६॥

॥चौपाई॥

राजश्री अति चचल गत । ताहू को सब सुनिजै बात।
धन सम्पत्ति अरु जोवन गर्व । आनि मिलै अविवेक अरव ।
राजसिरी सो होव प्रसग कौन न भ्रष्ट होय यह सगा॥१७॥

हे तात ! राज्य श्री अत्यधिक चचल है । अब उसकी भी बात सुन लीजिये । धन सम्पत्ति, अहकार और यौवन के कारण अविवेक उत्पन्न होता है । राज्य श्री का सग होने पर कौन भ्रष्ट नहीं होता है अर्थात् सभी होते हैं ॥१७॥

॥श्लोक॥

यौवन धनसम्पत्ति । प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥१८॥

यौवन, धन, सम्पत्ति दासत्व और अविवेकता विनाशकारी अलग अलग तो है ही, और यदि चारों मिल जावे तो विनाश निश्चित है ॥१८॥

॥चौपाई॥

साख्र सुजल धोवत हूँ जात मालिन हेतु सब ताके गात।
जदपि अति उज्जल है दृष्टि तैऊ सृजति राग की सृष्टि ॥१६॥

शास्त्र रूपी जल से धोते हुये उस राज्य श्री के अङ्ग मलीन ही होते जाते हैं । यद्यपि राज्य श्री की दृष्टि अति उज्ज्वल है फिर भी प्रेम विषयों का सृजन करती है ॥१६॥

पुरुष प्रकृति की जाकी प्रीति हरति सुवचन चित्त की रीति ।
विषय-मरिचीका नीकी जोति इन्द्रिय हरिन हारिनी होति ॥२०॥

जैसे तेज हवा वृक्षादि को तोड़ती है वैसे हा यह राज्य श्री ईश्वरी प्रीति को तोड़ती है और यह राज्य श्री इन्द्री रूपा मृगों को विषय मृग-तृष्णा की ज्योति की ओर खींच जाती है ॥२०॥

गुरु के वचन अमल अनुकूल सुनत होव श्रवननि कौ मूल।
मैन वलति तन वसन सुवेस भिदत नहीं जल ज्यों उपदेस ॥२१॥

गुरु के विवेक युक्त और यथार्थ वचनों का सुनकर कानों को कष्ट होता है और गुरु का उपदेश चित्त में नहीं समाता जैसे मोम म डुबाये हुए सुन्दर और नवीन वस्त्रों पर पानी नहीं भिदता है ॥२१॥

मन्त्रिन के उपदेस न लेत प्रति सबदक ज्यों उत्तमन देत ।
पहिले सुनति न जोर सुनन्ति भाती करनी ज्यों गनन्ति ॥२२॥

राज्य श्री मित्रा का भी मत नहीं मानती है और प्रति शब्दक की भांति तुरन्त ही उत्तर देती है। पहले तो राजा किसी की सुनते ही नहीं और शोर करने पर सुनते भी हैं तो वे वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा मत्तहथिनी अपने पीलवान द्वारा सकेत की हुई हित की बात की ओर ध्यान नहीं देती ॥२२॥

॥दोहा॥

धर्म धीरता बिनयता सत्य सील आचार ।
राजासिरी नगनै कछू वेद पुरान विचार ॥२३॥

राज्यश्री धर्म, वीरता, नम्रता, सत्यशील आचार, वेद तथा पुराणों के विचारा का बिल्कुल ध्यान नहीं रखती ॥२३॥

॥चौपाई॥

सागर में बहुकाल जु रही सीत बक्रता ससि हैं लही ।
सुर तरग चरननि हैं तात सीखी चचलता की बात ॥२४॥

चूँकि यह बहुत काल तक सागर मे रही अतः सगति के कारण सर्दी और चन्द्रमा से वक्रता ग्रहण करली। और उच्चैःश्रवा के चरणों से चञ्चलता सीखी है ॥२४॥

कालकूट हैं मोहन रीति मनिगन हैं अति निष्ठुर नीति ।
मदिरा हैं मादकता लई मन्दर उपर भय भ्रम भई ॥२५॥

मोहनरीति समुद्र में रहने के कारण (बेसुध करने का ढग) को कालकूट से सीखा, मणिगण से प्रीति में भी निष्ठुरता का भाव सीखा, मदिरा

से मादकता का गुण लिया और समुद्र के ऊपर में मदराचलको घूमतेदेख उसमें भ्रम निमनता सीखी ॥२५॥

॥दोहा॥

सन दई वहु जिह्वता बहुलोचनता चारु।
अपसरानि तैं सीखियौं अपर पुरुप सचारु ॥२६॥

शेष नागें ने बाते बनाने के लिए अनेक जीभें और सभी ओर देखने को नेत्रों में शक्ति दी। इसने अप्सराओं से अन्य पुरुषों के पास जाने का दुर्गुण, सीखा ॥ ६॥

॥चौपाई॥

दृढ़ गुन बाधै हू वहु भाति का जानै किहि भाँति विलाइ।
गज घोटक भर कोटिन अरै खगलता खजन हूँ परै ॥२७॥

अनेक प्रकार से मजबूत रस्सी से बाधने से कौन जाने यह किस ओर विलीन हो जाती है। चाहे करोड़ों हाथी घोड़े उसे रोकें और तलवार रूपी लता से चारों ओर पिंजड़ा बना दिया जाय ॥२७॥

अपनाइवि कीनै वहु भाति न जानै कित ह्वै भजि जाति
धर्म कोप पडित सुभ देस तजत भौर ज्यौं कमल नरेस २८

और बहुत तरह से उससे प्रीति की जाय तो भी वह न जाने कहाँ होकर भाग जाती है। राज्य धर्म में पण्डित धन सम्पन्न और सुन्दर राजा को यह वैसे ही त्याग जाती है जैसे कमल, सुन्दर, करहाटक युक्त और सुन्दर स्थान में उत्पन्न कमल को भौंरे त्याग जाती है ॥२८॥

यद्यपि होय सुद्ध वरु सत्त। करै पिसाची ज्यौं उनमत्त ॥
गुनवन्तनि आलिगित नहीं। अपवित्रनि ज्यौं छाड़ति तहीं ॥२६॥

प्राणी पहले चाहे शुद्धमति वाला हो, लेकिन राज्य लक्ष्मी पाने पर वह उन्मत्त पिशाचिनी सा हो जाता है। वह गुणवानों से अपना सम्बध नहीं रखती, उन्हें इस प्रकार त्यागती है जिस प्रकार अपवित्र वस्तु त्यागी जाती है ॥२६॥

अहि ज्यौं नापति सूरति देखि । कराश्रु ज्यौं बहु साधुनि लेखि ।
साधुनि सोदर जदपि आप । सबही हैं अति कटकु प्रताप ॥३०॥

जिस तरह कोई पुरुष मार्ग में पड़े हुए सर्प पर पैर न रखकर नाप जाता है उसी प्रकार से साधु पुरुषों का अपने मार्ग कण्टक के रूप में देखती है । यद्यपि स्वयं साधुओं की बहिन है तो भी सब से अधिक इसका कटु प्रताप है ॥३०॥

यद्यपि पुरुषोत्तम की नारि । तदपि खलनि की तन मनहारि ॥
हितकारिनि की अति द्वेषनी । अहित जननि की अन्वेषिनी ॥३१॥

यद्यपि लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी है तो भी इसका स्वभाव खलों का है । हित करने वालों से शत्रुता करती है और अहित करने वालों को ढूंढ कर मिलती है ॥ ३१॥

मन मृग की सुरधिक की गीत । बिष बल्लिन की वारिद रीति ॥
मदपिसाचिका कैमी अली । माह नींद की सज्जा भली ॥३२॥

मन रूपी मृग का मोहित करने के लिये राज्यलक्ष्मी वधिक की रागिनी है, विषय रूपी बेलि को बढ़ाने के लिये बादल के समान है । मदन रूपी पिशाचिका का सहायिका के रूप में है और मोह रूपी निद्रा के लिये सुन्दर सेज है ॥३२॥

आसी बिष दोषनि की दरी । गुन सत पुरुषनि कारन छुरी ॥
कलहहंसनि की मेघावली । कपट नृत्य साला सी भली ॥३३॥

दोषरूपी सर्पों के रहने के लिये राज्यश्री गुफा है । गुणरूपी सतपुरुषों के लिये दण्डरूपी साटी है । आराम रूपा हंसा के लिये मेघमाला है और कटक नट की नाट्यशाला है ॥३३॥

॥दोहा॥

काम बाम कर की किधौं कोमल कदलि सुवेष ।
धर्मधीर द्विजराज को मनो राहु की रेष ॥३४॥

किधौं यह राजलक्ष्मी कुटिलरूपा हाथी के सुन्दर कोमल कदली वृक्ष है या धीरज और धर्म रूपी चन्द्र का ग्रसने के लिए राहु की कला है ॥३४॥

॥ चौपाई ॥

मुखरोगनि ज्यों मौने रहै। बार वचन्य एक द्वै कहै॥
बन्धुवर्ग पहिचानति नहीं। मानौं सन्यपात है गही॥३५॥

राजलक्ष्मी से प्रभावित राजा मुखरोगी की भांति सदा मौन रहता है। यदि किसी से कुछ कहने का अवसर आ गया तो एक दो बात मुँह से निकाल देता है और अपने बन्धुवर्ग को भी नहीं पहचानता है मानो उसे सन्निपात ने धर लिया हो ॥३५॥

महामन्त्र हू है तुन बोध। उभी काल अहि जर करि क्रोध॥
खान विलास उदधि ज्ञातुरी। परदारा गमनै चातुरी॥३६॥

महामंत्र से भी उनको चैतन्यता नहीं आती मानो कालसर्प के क्रोध ने डस लिया हो। खाने और विलास प्रचुर इच्छित के साक्षात उदाव हैं। पर स्त्री गमन को ही वे अपनी चतुरता समझते हैं ॥३६।

मृगया महै मूरता बड़ी। बन्दी मुखानि चाई मौं चाढ़ि॥
ज्यौं क्योंहू चितवें यह दया। बात कहैं तौ वरिनै मया॥३७॥

शिकार को ही अपनी शूरता समझते हैं, जिसका प्रशंसा वन्दीजनों के मुख से चाव पूर्वक सुनते हैं। यदि किसी की ओर देख दे तो यही उसकी सबसे बड़ी दया है। यदि किसी से बात करली तो उस पर बड़ा भारी ममता करती है ॥३७॥

दरशन दीनोंई अति दान। हसि हेरेंलो बड़ो मनमान॥३८॥

राजा लोग यदि किसी को दर्शन दे दें तो यही बहुत बड़ा दान है और यदि किसी से हँसकर बोल दें तो उसका यही बहुत बड़ा सन्मान हो गया ॥३८॥

॥ दोहा ॥

जोई जन हित की कहै सोई परम अमित्र॥

सुखवक्ई मानिमैं संतति मन्त्री मित्र ॥३६॥
राजा के हित की जो बात कहता है वही उसका शत्रु हो जाता है। चापलूस लोग ही सदा मंत्री और मित्र माने जाते हैं ॥३६॥

॥ चौपाई ॥

कहौं कहा लागि ताकी सेव । तुम सब जानत वीरसिंह देव ॥
जैसी सिव मूरति मानियै । तैसी राजसिरी जानियै ॥४०॥
हे वीर सिंह ! तुम सब कुछ जानते हो। मैं राज्यलक्ष्मी के प्रभाव को कहा तक कहूँ। राज्यश्री की मूर्ति ठीक शिव के समान है॥४०॥
सावधान ह्वै सेवै जाहि। साचौ देहि परम पद ताहि ॥
जितनै नृप याके वस भये। स्वर्ग लोक पेलि पग नर्कहि गये ॥४१॥
सावधान हो जो लोग इस राज्यश्री की सेवा करते हैं, यह शंकर की भांति उन्हें परम पद देती है और जितने राजा असावधानता वश इसके वश में हो गये वे सभी स्वर्ग को छोड़कर नर्क को चले गये ॥४१॥
जैसे कैसे यह वस होय। मन क्रम वचन करी नृप सोय ॥४२॥
हे राजन ! यह जिस प्रकार से भी वश में हो, उसे ही मन क्रम वचन पूर्वक करिये ॥४२॥

इतिश्रीमत्सकल भूमण्डलखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे राजश्री वर्नन नाम नवविंशति प्रकाश ॥२६॥

॥ चौपाई ॥

ऐसो भूप जु भूतल कोय। ताकै यह कबहु न वस होय ॥
मन्त्री मित्र दोष उर धरै। मन्त्री मित्र जु मूरख करै ॥ १ ॥
इस प्रकार का यदि कोई राजा है तो यह उसके वश में कभी भी नहीं रहेगी। मंत्री और मित्रों के दोषों को हृदय में रखता हो। मंत्री और मित्र को मूर्ख समझाता हो॥१॥
मन्त्री मित्र सभासद सुनौ। प्रोहित वैध जोतिषी गुनी ॥
लेखक दूत स्वार प्रतिहार। सौंपै सुकृत जाहि भण्डार ॥ २ ॥

मन्त्री मित्र, सभासद, पुरोहित, वैद्य ज्योतिषी, लेखक दूत, प्रतिहार और भण्डारी ॥२॥

इतनें लोगनि मूरख करै। सो राजा चिरु राज न करै॥
जाकौ मतौ दुरयौ नहिं रहै। खल प्रिय सुरापान संग्रहै॥ ३॥

यदि उपरोक्त लोगों को राजा मूर्ख समझता है जिसका विचार छिपा न रहता है अर्थात प्रकट हो जाता हो। दुष्ट और सुरा प्रियो का संग्रह करते हो तो वह बहुत समयतक राज्य नहीं कर सकता है ॥३॥

॥ कवित्त ॥

कामी वामी मूढ कोढ़ी क्रोधी कुल दोषा,
खलु कातर कृतघ्न मित्रद्रोही द्विजद्रोहियें।
कुबुरुप कि–पुरुष कलहो काहली कूर,
कुबुधी कुमन्त्री कुल हीन कैसे रोहियें॥
पापी लोभी भूठा अध बावरो बधिर गुंग,
बौर अविवेकी हठो छली निरमोहियें।
सूम सर्वभक्षी देववादी जु कुवादी जर,
अपजसी ऐसों भूमि न सोहियें॥ ४॥

कामी, वामी, मूर्ख, कोढ़ी, क्रोधी, कुल द्वेषी, कातर कृतघ्नी, मित्र द्रोही, कलही, कुबुद्धी, कुमन्त्री, पापी लोभी भूठा, अन्धा, बहिरा, गूंगा, बौरा, अविवेकी छली सूम, सर्वभक्षा, देववादी, अपजसी भूमि पर शोभित नहीं होते हैं।

॥ श्लोक ॥

सारासार परीक्षक स्वामी भृत्यस्य दुर्लभ ।
अनुकूलशुचिर्दक्ष प्रभोर्भृत्योपि दुर्लभ ॥ ५॥

ऐसे राजा जो सार और असार दोनों चीजों का ज्ञाता हो, अपने भृत्यों के लिये दुर्लभ है, लेकिन ऐसा राजा स्वामी अनुकूल पवित्र और चतुर हो वह अभृत्य रहने पर भी दुर्लभ है ॥५॥

श्री राजोवाच चौपाई

कहिजै दान कृपाकरि चित्त। राजधर्म मोसौं जगमित्त ॥ ६ ॥

हे दान कृपा करके मुझे बताइये कि संसार में राज्यधर्म क्या है ॥६॥

दानउवाच

सुनिये महाराज नृप धर्म। बाढ़े जिहि सम्पत्ति अरु शर्म ॥
राज चाहियै सांचो सूर। सत्य सुसकल धर्म कौ मूर ॥ ७ ॥

हे धर्म राज ! सुनिये। जिससे सम्पत्ति और लज्जा बढ़े, राज्य सत्य और वीरता के ऊपर आधारित हो सब प्रकार के सत्य और धर्म का मूल हो ॥७॥

जौं सूरौ तौ सबैं डराइ। साचै कौं सब जग पतियाइ ॥
साचौ सूरौ दाता होय। जग मैं सुजस जपै सब कोय ॥ ८ ॥

वीर को सभी डरते हैं और सत्यवान पर सभी विश्वास करते हैं। सत्यवान और वीर दाता भी होता है और संसार उसके सुयश का जाप करता है ॥८॥

सतंति करै प्रजा प्रतिपाल। गहै धर्म नृप कौ सब काल ॥
जोई जन अधर्महिकरै। तबही नृपति दण्ड सचरै ॥ ६ ॥

सन्तान के समान प्रजा का पालन करे। सभी कालों में राजा का यही धर्म है। यदि कोई अधर्म करता है तो राजा उसे उसी समय दण्ड दे ॥६॥

सबकौ राज्य निग्रह करै। मातु पिता विप्रनि परिहरै ॥
जौं परिजा को दण्डहि करै। तौ वहु पाप राजसिर परै ॥१०॥

राजा सभी वस्तुओं का निग्रह करे, किन्तु माता पिता ब्राह्मणों का पालन करे। जो राजा प्रजा को दण्ड देता है उसके शिर पाप लगता है ॥१०॥

यथापराध दण्ड वौ देई। लै धन बस विदा करि देई ॥११॥

जिसका जैसा अपराध हो उसको उसीके अनुरूप दण्ड दे। और धन लेकर वश के लोगों को विदा करदे ॥११॥

श्लोक

स्वदत्ता परदत्ता वा ब्रह्मवृति हरेच्च यः।
षष्टि वर्ष सहस्राणि विष्टाया जायते कृमि. ॥१२॥

ब्रह्मवृत्ति जो ब्राह्मण को दी गयी हो या किसी ने स्वयं दी हो उसका हरण करने वाला मनुष्य हजारो वर्षो तक विष्ठ के कीड़े के रूप में भुगतता है ॥१२॥

॥चोपाई॥

कृतयुग दत्ता ज्ञान यह धर्म। त्रेता इतो तपामम कर्म ॥
द्वापर पूजै गुरपुर लेई। केवल कलि भू'दानाइ देई ॥१३॥

सतयुग म ज्ञानपूर्ण धर्म था। त्रेता म तपोमय कर्म था। द्वापर में पूजन द्वारा स्वर्ग मिलता था और कलियुग म केवल भूमिदान है ॥१३॥

दोई दान बड़े जग जान। अभै दान के पृथ्वीराज दान ॥
जाहा धर्म हो राजा करै। यही धर्म मह्रै अनुसरै ॥१४॥

ससार मे दो ही दान सबसे बड़े है। एक तो अभयदान है और दूसरा पृथ्वी का दान है। जिस धर्म को राजा धारण करता है उसी धर्म का प्रजा अनुसरण करती है ॥१४॥

सुत सोदरहु न छाड़ै राज। ये जो सन्त करै अरकाज ॥
जो जियजानौ अतिहित साज। औरहु जावे पोषै राज ॥१५॥

राज्य को पुत्र और भाई भी नहीं छोड़ते हैं, ये सभी अकाज करते हैं। अपने हृदय म सदैव हित का ही विचार करना चाहिये, जिससे सभी का पालण हो ॥१५॥

मन्त्री मित्र जोतिषी राज। कर्हे विहूनति विनसे काज ॥१६॥

मन्त्री मित्र और ज्योतिषी कार्य का विनाश करने वाले होते है ॥१६॥

॥श्लोक॥

सुलभा पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिनः ॥
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ताश्रोता च दुर्लभ. ॥१७॥

हे राजन् ! सदैव प्रिय कहने वाले लोग सर्वत्र मिल जाते हैं किन्तु ऐसे वक्ता और श्रोता कठिनाई से मिलते हैं जो अप्रिय बात को सुन सके ॥१७॥

॥दोहा॥

राजा राज त्रिम मन्त्रि सुत मित्र मुख्य करि होय ।

राजा के सम देखिजै तो सन्तति सुख जोय ॥१८॥

राजा की पत्नी,मंत्री सुत मित्र और मुख्य लोगों को यदि राजा के समान समझे तो सन्तान के समान सुख वा अनुभव व्यक्ति कर सकता है ॥१८॥

॥चौपाई॥

राजधर्म अति परम प्रमान । स्वर्ग नर्कमय राजा जान ॥

सावधान ह्वै कीजे राज । लहियै सुख ही स्वर्ग समाज ॥१६॥

राज्यधर्म के आधार पर ही राजा स्वर्ग और नर्क का भागी होता है । सावधान होकर जो इसकी सेवा करता है वह स्वर्गिक समाज के आनन्द का अनुभव करता है ॥१६॥

जो उग राज विकल ह्वै करै । जीवत मरत नर्कहि परै ॥२०॥

यदि व्याकुल होकर ससार म कोई राज्य करता है तो वह जीवित नर्कगामी हो जाता है ॥२०॥

॥दोहा॥

राजधर्म उपदेश मैं जो नृप होय अजान ।

आदिराज तुम राज को जानत सबै निधान ॥२१॥

राज्य धर्म के इन उपदेशों के सभी विधानों के आदि अन्त को आप जानते हैं ॥२१॥

इतिश्रीमतसकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्री वीरसिंह देव चरित्रे दान लोभ समान वर्नन नाम दशविंशति प्रकाशः ॥३०॥

॥अथ राजकर्म—चौपाई॥

उपजावै धन धर्म प्रकार। ताकी रक्षा करै अपार।
धन बहु भांति बढ़ावै राज। धन बाढ़ै सबरो को काज।
ताको खरचै धर्मनिमित्त। प्रतिदिन दीजै विप्र निमित्त॥ १॥

अनेक प्रकार के जो धन धर्म को बढ़ाता है उसकी अनेक प्रकार से रक्षा करना है। राज में बढ़ा हुआ धन सभी के काम के लिये होता है। उस धन को धर्म के लिए खर्च करना चाहिये तथा ब्राह्मणों को प्रतिदिन देना चाहिये॥ ॥

॥श्लोक॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं धर्मेण पालयेत्।
पालितं वर्द्धयेन्नित्यं वृद्धं पात्रे विनिर्क्षिपेत्॥ २॥

नीति का वचन है कि जो अप्राप्त वस्तु है उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया जाय, यत्न से प्राप्त हुयी वस्तु की ठीक प्रकार से रक्षा की जाय तथा उसको अधिकाधिक बढ़ाया जाय और जब वह आवश्यकता से अधिक हो जाय तब किसी सुपात्र को दे दी जाय॥२॥

अथ लेखक चौपाई

परम साधु कायथ जानिये। निरलोभी साचो मानिये।
जानै धर्माधर्म विचार। जानै अगनित नृप व्यौहार॥३॥

कायस्थ को साधु समझना चाहिये और उसे सच्चा निर्लोभी मानना चाहिये। वह धर्म अधर्म तथा अगणित राजा के व्यवहारों को जानता है॥३॥

सम मित्रहु जाके सम चित्त। साचो कहै सुलेख कुमित्त॥४॥

जिसके चित्त में सभी मित्र बराबर हैं। बुरे मित्रों की भी सच्ची बात ही कहना है॥४॥

पसु पच्छि धन जन मागनो। अतिरु पाहुनो जोधा धनी।
देस नगर पुर घर जो होय। लेहि सुआगम निर्गम दोय॥५॥

पशु, पक्षी, धन, जन अतिथि, पाहुन, योद्धा आदि जो भी देश, नगर पुर घर म आते हैं उन सभी का आगमन निर्गम रूप में लेता है। ५॥

पट पर लिखै कितामै पत्र । इतनी बात लिखै एकत्र ।
दुहुँ ओर के कुल के धर्म । अपनै देवा लेवा कर्म ।
अपनौ मात पिता कौ नाम । जिहि सम्बन्ध जहा कौ धाम ॥६॥

पट पर इतनी बात एक ही साथ लिखता है। दोनों ओर के कुलों के धर्म और लेने देने के कर्मों को लिखना है अपने माता पिता का नाम और वर का जहाँ जहाँ सम्बन्ध हाता है ६

मोल दोगुनौ वर्न विधान । क्रय विक्रय ताकै परिवाण।
नृपमुद्रा कै मुद्रित करै । सभासदन की भूडा धरै ॥७॥

दोनों वर्गों का विधान लिखता है। क्रय विक्रय तथा राजा जितनी भुजायें मुद्रित करता है उसे लिखता है। सभासदन की कार्यवाही लिखता है ॥७॥

॥ श्लोक ॥

यद्देवतानृपद्देवा स्वामिन परिचिन्हितान् ।
अभिलेख्यात्मनो वश्यानात्मान च महीपते ॥८॥

॥ चौपाई ॥

सावकास जहँ सोरै लोग । जह जो जैसो पावै योग ।
राजलोक रक्षा का काम । सुभ बाटिका जलासय धाम ॥९॥

जहाँ पर जैसा योग होता है वहा अवकाश पाकर सभी लोग बैठते हैं। राज्य का कर्म रक्षा करना है ॥९॥

॥ श्लोक ॥

रम्यं प्रशास्यभाजीम्य जांगल्यं देशाभाविपेत् ।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकानात्मगुप्तये ॥१०॥

॥चैापाई ॥

अस्त्र सस्त्र बहु जन्त्र विधान । अन्नपान रस पट तन त्रान ।
कन्दमूल दल औषद जाल । सहित दान तृशा बांधो ताल ॥११॥

अस्त्र शस्त्र अनेक यत्रों का विधान, अन्न पान, वस्त्र कन्दमूल औषधि के सहित दान की ताल बाधी ॥११॥

ठौर ठौर अधिकारी लोग । राखै नरपति जाकै लोग ।
सूरे सुचि अरु होय अनन्य । प्रभु की भक्ति गहै मन मन्य ॥१२॥

राजा ने स्थान स्थान पर अधिकारियों की नियुक्ति कर रखी है, जो कि वीर है तथा स्वामी का भक्ति का मन में धारण कर रखा है ॥१२॥

॥ श्लोक ॥

प्राज्ञात्वमुपधासुद्धिरप्रमादोभियुक्तता ।
कार्य्यव्यसनतात्र प्रस्वामी भक्तस्य योग्यता ॥१३॥

स्वामि भक्त ऐसा होना चाहिये जो बुद्धिमान हो पवित्र हो, अप्रमादी और कार्यपटु हो ॥ १३ ॥

॥ चैापाई ॥

वहाँ बैठि बहु साधै देस । जीति करै सब विविध :नरेस ।
देस देस राजनि की जीति । हय गय धन लै आवहि कीर्ति ॥१४॥

वहाँ पर बैठकर राजा साधना करता है और अनेक नरेशों को जीतता है । देश देश के राजाओं को जीतकर घोड़े हाथी तथा उनकी कीर्ति को ले आता है ॥१४॥

कीरति पठवै सागर पार । धन मतोषै विप्र अपार ।
विप्रनि दै उबरै जो नित्त । मोदर सुत पावै अरु मित्त ॥१५॥

कीर्ति का सागर के पार भेज देता है और धनदार ब्राह्मण को सन्तुष्ट करता है। ब्राह्मणों को धन देने से जो बचता है उसे भाई और पुत्रों को दिया जाता है ॥१५॥

॥ श्लोक ॥

नातः परतरो धर्मो नृपाना यद्रणार्जितम् ।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्य दीनेभ्यश्चभयन्तथा ॥१६॥

राजा के लिये इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं कि विजय से सम्पत्ति प्राप्त करे, ब्राह्मण को द्रव्य दान दे और दीनों को अभयदान दे ॥१६॥

॥ चौपाई ॥

जे भर जूझत है रनरुद्र । पार होत ससार समुद्र ।
मरत आपने शस्त्रनि छेदि । जात ते सूरज मण्डल भेदि ॥१७॥

जो योद्धा युद्ध में मरते हैं, वे ससार रूपी समुद्र को पार कर जाते हैं। जो अपने अस्त्रा द्वारा छेदन करके मरते हैं वे सूर्य मण्डल को भेद-कर स्वर्ग को जाते हैं ॥१७॥

जे जूझत रनभट सुख पाइ। अपनै राजा की पहुँचाई ।
पद पद यज्ञनि की फल होय। लोक सुद्ध सुनि तिनके दोय ॥१८॥

जो लोग स्वेच्छा से युद्ध में राजा की रक्षा करते हुए मरते हैं, उन्हें यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है और उनके गुणों का सुनने से ससार भी पवित्र हो जाता है ॥१८॥

॥ श्लोक ॥

यद्रा निकुतु तल्यानि भग्नेष्वपिनिवर्तिनी।
राजसु क्रतुमादन्ते इवाना प्रिचयैपिता ॥१९॥
या सल्यरोप्यकूपान वाहकस्य दयस्य च ।
तावद्वर्ष वसेत्स्वर्गे गृहपृष्टे दता नर. ॥२०॥

घर में कोई मनुष्य धन सम्पत्ति नौकर और घोड़े आदि के कारण जितना सुखपूर्वक रहता है वही मनुष्य मर जाने पर स्वर्ग प्राप्ति के बाद तना ही हर्ष प्राप्त करता है ॥२०॥

॥ चौपाई ॥

भजे जा तिनको नहि हनै। डारि तन्यार जे हाहा भनै।
छूटे बार जे कांपत गात। पाइ पयादे तृननि चबात ॥२१॥

भगे हुए लोगों को, हथियार डाल देने वाले लोगों को नहीं मारते हैं बार छूटने पर शरीर काँपने लगता है। पैदल मिलने पर तृण चबाते हैं ॥२१॥

॥ श्लोक ॥

तथाद् यादिना क्लार निरहेव प्रसङ्गतम् ।
नहन्याद्धिनिवर्त्त च युद्धप्रेक्षणकादिकं ॥२२॥

सर्वस्व गयाँ देने वाला, अविवादी, कवि, निर्मोही, युद्ध का देखने वाले मनुष्यों को न मारना चाहिये ॥२२॥

अवध्या ब्राह्मण बालः स्त्री तपस्वी च रोगिण ।
दूत त्व तु नरकेषु मा निशेत्संचिवैः सह ॥२३॥

ब्राह्मण, [?]ना स्त्री, तपस्वी, रोगी अवध्य है। दूत को मारने वाले का सीधा नर्क होता है और मंत्रियों के साथ मैत्री का व्यवहार नहीं होना चाहिए ॥२३॥

॥ चौपाई ॥

चारि दूत पठवे दस दिसा। आवे दूतनि पूछै निसा।
चार गूढ है यहु रुप। दूत मुहीनि भाँति क भूप ॥२४॥

दूतों को दिशाओं में भेजना चाहिये और उनके पास आने पर कुशल पूछनी चाहिये। दूतों की अवस्था बड़ी ही गूढ़ है दूत तीन प्रकार के हैं ॥२४

॥ दोहा ॥

स्वानिष्टित एरे कहें पर निष्टित हैं और।
सदिष्टार्थ है तीसरे सुनौ राज सिरमौर ॥२५॥

हे राजन्! स्वनिष्ट, परनिष्टि तथा सदिष्टार्थ, ये तीन प्रकार के दूत होते हैं ॥२५॥

॥ चौपाई ॥

राजनि पै जे आवत जात। दूत प्रगट कहिवे की बात।
पत्री कर पटु परम प्रशस्त। तिनसौं कहि जतु शासन अस्त ॥२६॥

राजाओं के पास जो आते रहते हैं उन दूतों मे बात कहनी चाहिये। हाथ में पत्रों के लेने म चतुर हैं, उनसे शासन की बात कहनी चाहिये ॥२६॥

राज काज अरु जनपद काज। छटी बढ़ी जिनकौं सब लाज।
देस काल कौ उचित जु होय। तैसी कहै ते निरले कोय ॥२७॥

राज्य और जनपद के कार्यों का घटी बढ़ी की जिनका लाज है। देश काल के अनुसार बात कहने वाले कम ही होते हैं ॥२७॥

हारन हरत न सका गहैं। निष्ठितार्थ सब तिन सों कहैं।
केवल बात जु कोई कहै। सदष्टार्थ सो पद लहै ॥२८॥

हारने पर भी जो शकित नहीं होते हैं उन्हें सभी निष्ठार्थ कहते हैं। केवल जो साधारण बात कहते हैं, उन्हें सदष्टार्थ कहते हैं ॥२८॥

॥ दोहा ॥

राजा तिनकी बात सब सनौ अकलौ जाय।
आपु हथ्यारी निरहथौ एकै दूत बुलाय ॥२६॥

राजा उनकी बात को अकेले जाकर सुनता है। स्वय अस्त्र धारण किये रहता है और दूतों को नि शस्त्र बुलाता है ॥२६।

॥ श्लोक ॥

सर्वो व्याल्यन श्रवणं मन्त्रैरेर्मनि शस्त्रभृन्।
रहस्यख्यापन चैव प्रणाधीना वेष्ठितम् ॥३०॥

॥ चौपाई ॥

थोड़ी बडी बात जौ होय देखे बिन नृप करे न सोय।
उपज नकवहु पावै व्याधि। कलि गुननित बाँधे आसाधि ॥३१॥

छोटी बड़ी चाहे जैसी बात हो, उसे बिना राजा को देखे हुए नहीं करता है। ऐसी अवस्था मे कोई व्याधि उत्पन्न नहीं होने पाती है कलिकाल में भी अस धि को अपने गुणों से बाँध लेती है ॥३१॥

ऐसे वैद्य जोतिषीराज। राखहु निकट आपनै काज।
हितकारिन की कपट न करै। अरिकुल प्रति जु क्रोध सचरै ॥३२॥

ऐसे वैद्य और ज्योतिषियों को अपने पास रखा। हित करने वालों से कपट नहीं करता है और शत्रुओं के प्रति क्रोध को नहीं जगाता है।॥३२॥

भली बुरी विप्रनि की सहै। पुर ज्यों प्रजा पालि सुख लहै ॥३३॥

ब्राह्मणों की भली बुरी सभी बातों का सहन करता है और प्रजा का पालन परिवार की तरह करता है ॥३३॥

॥ श्लोक ॥

ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्म क्रोधनोऽरिषु ।
स्याद्राजा भृत्यवर्गे वै प्रजासु च पिता यथा ॥३४॥

राजा को ब्राम्हणों में क्षमा, परिजनों में स्नेह, क्रोधियों के साथ मंत्री और प्रजा के साथ पिता के समान व्यवहार करने वाला होना चाहिए।३४।

॥ चौपाई ॥

साहसीनि: त रक्षा करै। चोर यार वटपारनि हरै।
अन्याई ठग निकट निवारि। सब तै राखहिं प्रजा विचारी।॥३५॥

आमीर जनों की रक्षा करता है और चोर तथा बदमाशों को नष्ट करता है। अन्यायी तथा ठगों को दूर करता है। सभी प्रकार से प्रजा की रक्षा करता है ॥३५॥

॥ श्लोक ॥

चारतस्कर दुर्वृत्तैस्तथैव सचिवादिभि ।
पीड्यमाना. प्रजा रक्षेत् न्यायस्थैश्च विशेषत. ॥३६॥

चोर, तस्कर, दुर्वृत्त और सचिवों से पीडित प्रजा की रक्षा करनी चाहिये और कायस्थों की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिये ॥३६॥

॥चौपाई॥

जो न प्रजा की रक्षा होय। हो जनपद में बसै न कोय।
उजर भये कोप घटि जाई। बाढ़ै पाप धर्म मिटि जाई ॥३७॥

यदि जनपद में प्रजा की रक्षा न होगी तो वहाँ पर कोई भी न रहेगा। जनपद उजड़ने पर कोष में कमी आ जायेगी। अधर्म बढ़ाने पर धर्म नष्ट हो जावेगा ॥३७॥

॥ श्लोक ॥

अरक्षमाणः कुर्वन्ति यत्किञ्चित् किल्बिषं प्रजा।
तस्मान्नृपतयोऽधर्मं सम्पगृह्णन्ति सत्वरम् ॥३८॥

अरक्षित प्रजा जो कुछ भी पाप करती है उसका जो अधर्म है उसको राजा तत्काल ही अधर्म प्राप्त करता है ॥३८॥

॥चौपाई॥

अपने अधिकारिनि को राज। चारण है समुझै सब काज।
साधु होय तौ पदवी देई। जानि असाधु दण्ड को देई ॥३९॥

अपने अधिकारियों के राज्य को चारण के समान समझना चाहिये साधुओं को पदवी से विभूषित करना चाहिये और असाधुओं को दण्ड देना चाहिये ॥३९॥

॥ श्लोक ॥

चारैर्ज्ञात्वा विचोऽठत्व साधून्सम्मानयोद्बुधः।
सज्जनान् रक्षयित्वा वै विपरीतांश्च यातयेत् ॥४०॥

राजा को चाहिये कि वह चोरों का निग्रह कराये, साधुओं को सम्मानित कराये, सज्जनों की रक्षा करे, असज्जन तथा साधुओं का दमन करे ॥४०॥

प्रजा पाप तैं राजा जाए। राज जाए तौ प्रजा नसाय।
दुहूँ बात राजहि घटि परै। तातैं धर्मदण्ड को धरैं ॥४१॥

प्रजा के पाप से राजा का विनाश हो जाता है। दोनो ही अवस्थाओं में राजा को हानि होती है। इसीलिए वह धर्मदण्ड को धारण करता है ॥४१॥

॥ श्लोक ॥

प्रजापीडनसन्तापसमुद्भूतो हुताशनः।
राज्यं श्रियं कुलं प्राणदग्ध्वा न निर्वर्ते ॥४२॥

प्रजा के पीडन और सताप से उठी हुई जो अग्नि होती है वह राजा के राज्य, लक्ष्मी कुल और स्वयं उस के प्राणों को विनष्ट करके ही शान्त होती है ॥४२॥

॥ चौपाई ॥

तातैं राजा धर्महि करै। बिन डर प्रजा धर्म नहि धरै।
जो राजा अति साचो होय। ताके वस्य होय सब कोय ॥४३॥

इसीलिए राजा धर्म को धारण करता है और प्रजा बिना भय धर्म को नहीं धारण करती। यदि राजा सच्चा है तो सभी उसके वश हो जाते हैं ॥४३॥

जिहि पुर नगर देस ब्यौहार। राखै तहँ तेही आचार।
परजोधा परजन परदेस। होय वस्य बिन किये कलेस ॥४४॥

जिस ग्राम नगर, देश में व्यवहार होता है वहाँ पर आचार रखता है, ऐसे राजा के वश में दूसरों का योद्धा, दूसरों के लोग तथा दूसरे देश भी बिना कष्ट के ही वश में हो जाते है ॥४४॥

॥ श्लोक ॥

यस्मिन् देशे य आचारो व्यवहारो कुलाश्रित।
तथैव परिपाल्योऽसौ राज्ञा। स्वहितमिच्छता ॥४५॥

जिस देश का जैसा आचार व्यवहार और कुलशील है अपना कल्याण चाहने वाले राजा को उसी प्रकार पालन करना चाहिये ॥४५॥

॥ चौपाई ॥

मन्त्र मूल कहिजे नरनाथ। जैसी है राजनि की गाथ।
मन्त्रहि राखै रहै अभेद। कर्म फलोदय होय अखेद ॥४६॥

हे नरनाथ! उस मूल मन्त्र को कहिये जो राजाओं के साथ अनुरूप है। मन्त्र की रक्षा करे और अभेद रहे, ऐसे कर्म का फल सुन्दर होता है ॥४६॥

॥ श्लोक ॥

मन्त्रमूलो मतो राजा तन्वौ मन्त्र सुरक्षित.।
कुर्य्यांधलेन ताद्वद्वन् कर्मनामाघलोदयात् ॥४७॥

राजा यदि विज्ञ मन्त्रियों से सुरक्षित है, तभी तक उसकी गुप्त मन्त्रणायें सुरक्षित हैं। इसलिए कर्मनाम और फल की परीक्षा करने अच्छे विद्वानों को नियुक्त करना चाहिये ॥४७॥

॥चौपाई॥

जाके दल बल बहुत प्रकार। दुर्ग कोस बल धर्म अपार।
मित्र मन्त्र मन्त्री बल होय। बाहु दण्ड बल राजा सोय ॥४८॥

जिसके पास अत्यधिक सेना, दुर्ग, कोष धर्म और बलशाली मित्र मन्त्री हो, वह राजा बाहु बली होता है ॥४८॥

॥ श्लोक ॥

वाम्यमात्यौ जनो दुर्गः कोसो दण्डस्तथैवच।
मित्रादायेता प्रकृतयो राज्य सप्तागमुच्यते ॥४६॥

स्वामी, अमात्य, दुर्ग कोष, दण्ड, प्रजा और मित्र ये राज्य के सात अंग हैं ॥४६॥

॥ चोपाई ॥

दण्डमान जो जानै राज। तौ सब होय राज के काज।
धूत ढीठ सब प्रिय परदार। परहिंसा पर द्रव्यव्यवहार॥
झूठे ठग बटपार अनेक। तिनकौं दण्ड देय सब सेक ॥५०॥

यदि राज्य को दण्डमान समझते रहें, तो राज्य के सभी कार्य हो जाते हैं। धूर्त, धृष्ठ, परदारा रत, दूसरों जीवों की हिंसा करने वाले, दूसरों के द्रव्य को हरने वाले, ठग बटपार आदि को भी दण्ड देता है ॥५०॥

॥ श्लोक ॥

तद्धिद्वांश्च नृपो दण्ड दुर्वृत्तेषु निपातयेत् ।
धर्मो हि दण्डरुपेन ब्राह्मण निर्मित पुरा ॥५१॥

दुर्वृत्त वाले पुरुषों को राजा दण्डित करे लेकिन मनुष्य के लिये धर्म ही उसका सनातन दण्ड है ॥५१॥

॥ चौपाई ॥

यथापराध दण्ड को धरै । वेद पुरान मन्त्र उद्धरै ।
धर्मदण्ड गनि दिव्य सपर्क । होय वहुत अधरम हैं नर्क ॥५२॥

वेद मन्त्रों का उद्धरण देता हुआ यथा योग्य दण्ड देता है । अत्यधिक अधर्म होने से नर्क मिलता है ॥५२॥

॥ श्लोक ॥

अधर्मदण्डो ह्यस्वर्ग्यो लोक कीर्ति विनाशकः ।
सम्यक दण्डश्च राज्ञां वै स्वर्ग कीर्तिज्ञथावह ॥५३॥

राजा के लिये अधर्म दण्ड तर्क देने वाला और लोक कीर्ति का नाश करने वाला होता है । इसी प्रकार समुचित दण्ड राजा की कीर्ति का प्रसारक और उसको स्वर्ग देने वाला होता है ॥५३॥

॥ चौपाई ॥

राजा सबकौं दण्डहिं करै । जो जन पाई कुमैड़ धरै ॥
नातों गोगें कछु नहिं गनै । प्रीतम सगो न छोड़त वनै ॥५४॥

जो भी कुमार्ग में पैर रखता है राज उसको दण्डित करता है । रिश्ते नाते प्रियतम आदि का कुछ भी ध्यान न

॥ श्लोक ॥

भ्रार्य भ्राता सुतो वापि स्वसुरो मातुलोपि वा ।
धर्मात्मचलितः कोपि राजा दण्ड्यो न ससय ॥५५॥

भाई, पुत्र, ससुर कोई भी धर्म भ्रष्ट स्वजन हो, राजा को चाहिये कि वह उसको दण्डित करे ॥५५॥

॥ चौपाई ॥

ब्राह्मण माता पिता परिहरै। गुरु जन कौ नृप दण्ड न धरै।
रोगी दीन अनाथ जु होय। अतिथिहि राजा दूनै न कोय ॥५६॥

ब्राह्मण माता पिता को राजा दण्ड नहीं देता है। रोगी दीन, अनाथ और अतिथि को राजा नहीं मारता है ॥५६॥

जै जानि परै अपराधु। वृत्ति न दूरै निकारै साधु।

यदि इनके अपराध ज्ञात होते हैं तो उनकी वृत्ति को न छीन कर निकाल देता है ॥५७॥

॥ श्लोक ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्यमजानतः।
उत्पथप्रति पन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥५८॥

अच्छे और बुरे कार्य को न जानने वाला कुमार्ग को जाने वाला गुरु भी परित्याग करने योग्य है ॥५८॥

॥ चौपाई ॥

दण्ड करै द्विविधि नृप धीर। कै धन हरै कि दण्ड शरीर।
चारि भांति रिषि एकनि कह्यौ। सो जग मैं राजनि सगृह्यौ॥५९॥

राजा दो प्रकार से दण्ड देता है—या तो धन का अपहरण कर लेता है अथवा शारीरिक दण्ड देता है। एक ऋषि ने चार प्रकार से कहा है उसे राजाओं ने सग्रह कर लिया है ॥५९॥

॥ श्लोक ॥

धिग्दण्ड सत्वथाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा।
क्रमसो व्यवहर्त्तव्यो पराधानुसारत ॥६०॥

धिग्दण्ड, वागदण्ड, धनदण्ड और वधस्थदण्ड इनको अपराध के अनुसार बरतना चाहिये ॥६०॥

॥ दोहा ॥

धन के दण्डऽपराव विधि रिपिन कहे सुनि भूप।
सबकी केसवदास वध दण्ड क० दस रूप ॥६

धन के तथा अन्य दण्डों को ऋषियों ने दस प्रकार से कहा है ॥६१॥

॥ चौपाई ॥

धिग्दण्ड वचन दण्ड सवेध। राजलोक आगमति निषेध।
चौथे काढ़ि लेय अधिकार। पाचे दीजै देसनिकार ॥६२॥

धिग्दण्ड, वचन दण्ड, राज्य आगमन, निषेध दण्ड, अधिकार छीन लेना, देश से निकाल देना, ये पाच दण्ड हैं ॥६२॥

छठे रोकि राखै अवलोकि। सातौं बेरि देई नहि मोकि।
आठौ ताड नटाम तनु भग। दसै जीव कौ करै अनग॥
दसौं दन्ड वध के सुविवेक। जानहु धन के दन्ड अनेक ॥६३॥

छठे देखने से रोक रखे, सातवें मोकि न दे, आठवें ताड़, नवें शरीर भग और दसवें प्राण दण्ड ॥६३॥

॥श्लोक॥

योन दन्डयते दन्डयात् मान्यानथ न पूजयेन्।
अशुभं जायते तस्य पातकैः सतु लिप्यते ॥६४॥

॥ चौपाई ॥

मचला दगाबाज बहु भाति। चेरे चेरी सेवक जाति॥
भिक्षुक रिनियाँ तावीदार। अपराधी अधिकारी ज्वार ॥६५॥
ले मुख मोदर सिप्य अपार प्रजा चोर अरु रत परदार।
ये सिख देत मरै जो लाज। हत्या तिनकी नाहि न राज ॥६६॥

अनेक प्रकार के मचला, दगाबाज, चोर, दासी, सेवक, भिक्षुक, ऋणी, अपराधी, जुवारी, दूसरे की स्त्री में रत, इनको मारने की हत्या राज्य को नहीं होती है ॥६५,६६॥

॥ श्लोक ॥

शिष्यं भार्य्या सुतं स्त्रीच योगिन ग्रामकूटकम्।
ऋणयुक्त सप्तव च न हत्या दात्मपाहिनम् ॥६७॥

शिष्य, पत्नी, पुत्र, स्त्री, योगी ग्रामकूटक, ऋणी और आत्म पातकी को कभ वध नहीं करना चाहिये ॥६७॥

॥ चौपाई ॥

इहि विधि रच्छै राजा देस । अपनै मेंड़ै है जु नरेस ।
वैरी करि माने वह देस । माने ताकहँ शत्रु नरेस ॥६८॥

इस प्रकार से जो राज्य की रक्षा करता है और यदि कोई राजा अपनी सीमा पर आक्रमण करता है, तो उसे राजा शत्रु करके मानता है ॥६८॥

ताकै पैले जो क्षुधा जु भूप । मानै ताहि मित्र की रूप ।
ताकै परै जु भूपति आहि । उदासीन कै मानै ताहि ॥६९॥

यदि राजा, उसे क्षुधा पैले तो उसे मित्र के रूप मे मानना चाहिये । यदि उसके भूपति पैरों पर पड़े तो उसे उदासीन मानना चाहिये ॥६६॥

॥ श्लोक ॥

अरिमित्र मुदासीनोनन्तरस्ततत्परो पर ।
क्रमशो मण्डल मेधं सामादिभिरुपक्रमै ॥७०॥

शत्रु, मित्र, उदासीन, इनको सामाजिक भेदों से क्रमशः दण्डित करना चाहिये ॥७०॥

॥ चौपाई ॥

वहुरै शत्र त्रिविधि जानियै । पीड़ितु कसनीपु मानियै ।
छेदतु वय तीसरो वखाणि । सवही कौ समुझौ परिवाण ॥७१॥

शत्रु तीन प्रकार के होते हैं—पीडितु, कसनीपु तथा वाणों से मारने वाला । उन सभी को परिवाण समभना चाहिये ॥७१॥

मन्त्रहीन बलहीनहि मानि । अति पीड़ित सन्तत जियजानि ।
प्रबल मन्त्र वहु सैना साथ । ताकौ कर्षन कीजै हाथ ॥७२॥

पीड़ित को सभी लोग मन्त्रहीन बलहीन मानते हैं । जिसके साथ में बड़ी सेना हो और मन्त्र बल भी हो उसके हाथ का कर्षण करना चाहिये ॥७२॥

लघु सैना बहु वहु विलसति भूप । दुर्गहीन बहु होय विरूप ।
मन्त्री विरत मन्त्र बलहीन । गज वाजी अति दुर्वल दीन ॥७३॥

छोटी सेना हो और राजा विलासी हो, दुर्गहीन और विरूप हो और मंत्री विरक्त तथा मंत्रहीन हो, हाथी घोड़े दुबले हो ॥७३॥

कोस हीन जाको कुलभेत्र। ताको होय बेगि कुलछेव।
मित्रहि बहुव भाति दूजान। वर्द्ध अवर्द्धनीय मन मान ॥७४॥

जिसका कुल भेव कोषहीन हो, उसका कुल शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। अनेक प्रकार से मित्र दूजान हो, उनको मन में वर्द्ध और अवर्द्धनीव मानना चाहिये ॥७४॥

वर्द्धनीय धन बल विन होय। करपनीय बल धन होय ॥७५॥

वर्द्धनीय धन बल हीन होता है और कर्पनीय धनबल युत होता है ॥७५॥

॥ श्लोक ॥

तुल्यचारं धनेतुल्य मर्मज्ञं च प्रतारकम्।
अर्द्धराज्यहर भृत्यं यो न दन्यात् से दन्यते ॥७६॥

समान आचरण करने वाला समान धनी मर्मज्ञ, प्रतारक और आधे राज्य को जला डालने वाले भत्य को जो स्वामी नहीं मारता वह स्वामी विनष्ट हो जाता है ॥७६॥

॥ चौपाई ॥

चौहूँ दिशि के गुननि गनाई। ते रह नृप मण्डल महिपाई।
मुक्त जो करै समादि उपाय। ताके निकट दुख नहिं जाइ ॥७७॥

चारों दिशाओं के गुण जो गिनाये गए हैं वे राजा के पास होने चाहिये। यदि प्रयत्न पूर्वक राजा इनको अपने पास रखे तो उसके पास दुख नहीं जा सकता है ॥७७॥

करै मित्र सौं सम सयोग। उदासीन सौं दान प्रयोग।
सत्रु सैन मै प्रगटै भेव। करै दण्ड कै अटिकुल देव ॥७८॥

मित्र के साथ समानता का व्यवहार करे। उदासीन के साथ दान का प्रयोग करे। शत्रु सेना के साथ भेव को प्रकट करे। इस प्रकार से शत्रु कुल का विनाश करे ॥७८॥

॥ श्लोक ॥

सन्धि च विग्रह ज्ञानमाश्रय सश्रय तथा ।
द्वैधीभ्म भावो गुणानेतान्यथावन्तानुपाश्रयेत् ॥७८॥

सधि, विग्रह, ज्ञान, आश्रय, समप्रश्रय और वेधिभाव का आचरण राजा को समयानुसार करना चाहिये ॥७६॥

॥ चौपाई ॥

मित्र भूप सौ सन्धिहिं सचै। उदासीन सों आसन रचै।
आपतु सबही भाइनि चढ़ै। दल कल शत्रु भूप पर चढ़ै ॥८०॥

मित्र और राजा से सधि करे। उदासीन के साथ आसन रखे। अपने आप सब भावों से युक्त होकर दलबल सहित राजा के ऊपर चढ़ाई करे ॥८०॥

रिपु का भूमि न अनभयमानि। कोसहीन वाहन कृष जानि।
निज जनपद की रक्षा करै। दिसाति हानि सन्धि सचरै ॥८१॥

शत्रु भूमि को कभी भी भय रहित नहीं मानना चाहिये। कोष हीन वाहन को कमजोर समझना चाहिये। अपने जनपद की रक्षा करना चाहिये और जब दिशा की हानि दिखाई पड़े तब सधि कर लेना चाहिये ॥८१॥

सुखही आवे लै हितसाल। परपुर गवन करै तव नाथ ॥८८॥

जब सुख प्राप्त होता हो तब दूसरे के पुर मे जाना चाहिये ॥८२॥

॥ श्लोक ॥

यदा सत्वगुणा चित्त परराष्ट्र तदा व्रजेत् ।
परस्वहीन आत्मा च ह्यारनपूरुष ॥८३॥

अत करण जिस समय सत्व गुणो से युक्त रहे उसी समय दूसरे राष्ट्रों पर युद्ध करने के लिये प्रस्थान करना चाहिये। वही विजेता पुरुष कहा जाता है जिसकी आत्मा शत्रुओं से भयभीत नहीं रहती है ॥८३॥

॥ चोपाई ॥

अपनी फाज करै द्रमेज। युद्ध रचत है नर नर देव ।
एक कहत ऐसो रिषि राज। द्वैधि करइहि सिगरै साज ॥८४॥

अपनी सेना को द्रमेज में कर के देव युद्ध की रचना करते हैं। एक ऋषिराज ऐसा कहते हैं कि सभी साजों को द्वैधि म कर दे ॥८४॥

होय जो बड़ो एक उमराइ। ताको विसरू करावे राउ ।
कटि बहु विमरन शत्रु के जाई। युद्ध काल भागे भहराई ॥८५॥

यदि कोई उमराव सबसे बड़ा हो तो उससे विरुद्ध करना चाहिये। शत्रु को अनेक प्रकार से भुलाना चाहिये। इससे युद्ध काल में सेना भाग जावेगी ॥८५॥

कीनै सब अदृष्टि केय होई। यह गुण आरस करौ न कोई ।
यद्यपि रामचन्द्र जगनाथ। तिउहूँ उद्यम कीनौ हाथ ॥८६॥

सभी वस्तुओं को अदृष्ट करने में आलस नहीं करना चाहिये। ससार के स्वामी रामचद्र ने भी अपने हाथ से उद्यम किया था। ८६॥

लै हरि सग सुरासुर रुद्र। लक्ष्मी पाई मथै समुद्र ।
तातै राजा उद्यम करे। उद्यम किये काम तरु फरै ॥८७॥

विष्णु ने देवताओं, राक्षसों और रुद्र को लेकर समुद्र मथन किया और फलस्वरूप लक्ष्मी को प्राप्त किया। इससे राजा को उद्यम करना चाहिये। इससे ही काम वृक्ष फलेगा ॥८७॥

॥ श्लोक ॥

दैवमिति का पुरुषा वदन्ति ।
दैव निहत्य कुरु पारुष मात्मशक्त्या
यत्न कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष ॥८८॥

उद्यमी सिंह पुरुष लक्ष्मी को प्राप्त करता है, ऐसा तो का पुरुष कहते हैं कि लक्ष्मी भाग्य से मिलती है। भाग्य को दूर फेंक कर आत्म शक्ति के

अनुसार पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थ करने पर यदि कार्य सिद्ध नहीं होता तो इसमें दोष नहीं है ॥८८॥

॥ चौपाई ॥

सत्रु ही जीतैं जग जस कहै। भूमि हिरण्य मित्र को लहैं।
मित्रहि लहै और भू लहैं। ताते साचहि को संग्रहैं ॥८७॥

शत्रु का जीतने पर सारा संसार यश का गान करता है। भूमि सोने पर मित्र को पकड़े। मित्र को पकड़ने से और भूमि प्राप्त हो जावेगी। इसलिये सत्य का संग्रह करना चाहिये ॥८६॥

इहि विधि चारयौ दिश कौ लहै। तासौं जगत बड़ो नृप कहै ॥६०॥

इस प्रकार से चारों दिशाओं को देखे, उसे लोग बड़ा राजा कहते हैं ॥६०॥

जौ अति सत्रु करै अति सेव। ताकी सेव तजे नरदेव।
ताकी प्रीति बुराई होई। मारै भलो कहै सब कोई ॥६१॥

यदि शत्रु सेवा करता है तो भी नरदेव उसकी सेवा को छोड़ देते हैं। उसका प्रीति बुराई का कारण होता है। उसको मारने पर ही सब लोग भला कहते हैं ॥६१॥

॥ श्लोक ॥

शत्रौ त्वत्यन्तमैत्री च स्वोकमैत्रीं विवर्जयेत्।
अर्थयेत्तद्विराधने प्रतिष्ठा तस्य घातने ॥६२॥

शत्रुओं के साथ अत्यन्त मैत्री और क्षणिक मैत्री नहीं करनी चाहिये। उसके विरोध में अहित और उसकी प्रतिष्ठा में हानि उठानी पड़ती है ॥६२॥

॥ चौपाई ॥

अविचारी दण्डत सचरै। मन्त्र न कहूँ प्रकाशित करै।
लोभी निधन न सौंपिये जीति। अपकारिनि सौं करै न प्रीति।
लोभ मोह मद जो करै। जब तब करता कौं घटि परै ॥६३॥

विचारी को दण्डित करना चाहिये। अपने मंत्र को कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिये। विजय में प्राप्त धन लोभी और निर्धन को नहीं सौंपना चाहिये। अपकारियों से कभी प्रीति नहीं करनी चाहिये। यदि मोह और मद से कोई लोभ करता है तो कर्ता के हानि होती रहती है ॥६३॥

॥ श्लोक ॥

नापे चैव कुविदण्ड न च मंत्र प्रकाशयेत् ।
विश्वसेन्न तु लुब्धेभ्यो विश्वसेन्नामकारिपु ॥६४॥

कभी भी दण्ड की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और मंत्र का भेद खोलना चाहिये। किसी प्रकार लोभी और अपकारी मनुष्य का विश्वास नहीं करना चाहिये ॥६४॥

॥ चौपाई ॥

ऐसे नर पति होत सुजान । गुरु लघु मध्यम गुनहु निधान ।
अपने पुरुषागति की रीति । असुभ छाड़ि सुभ प्रगटत रीति ॥६५॥

ऐसे मनुष्य चतुर होते हैं। गुरु मध्यम और लघु गिनना चाहिये। अपने पुरुषार्थ के अनुसार अशुभ को छोड़ कर शुभ को प्रकट करते हैं ॥६५॥

राखै तिनकी धरनि असेष । लेहिं और बहु विक्रम वेष ।
जिनकी दांनि प्रति दिन देई । औरहि देई जीति रन लेई ॥६६॥

वे अपनी सब पृथ्वी की रक्षा कर लेते हैं और अपने पुरुषार्थ से दूसरे की भी जीत लेते हैं। वे नित्यप्रति दूसर को देकर भी रण में दूसरा को जीत लेते हैं ॥६६॥

कुल पालहि सुनि हरषें गाथ । ऐसे नरपति गुरमत नाथ ।
होंहिं जे अपने पिता समान । मध्यम तिनसौं कहत सुजान ॥६७॥

कुल का पालन करते हैं। गाथ को सुनकर प्रसन्न होते हैं। अपने को पिता के समान होते हैं। चतुर लोग उन्हें मध्यम कहते हैं ॥६७॥

जिन पर राग्यी झाईन प्रजा। दई न जाइ दुष्ट को सजा।
नाहिनकछू धर्म की बुद्धि। ऐसे लघु नृप पर है क्रुद्ध ॥९८॥
जो लोग प्रजा की रक्षा नहीं कर पाते और दुष्टों को दण्ड नहीं दे पाते हैं और जिन्हें धर्म का भी ध्यान नहीं रहता है, ऐसे लोग लघु रूप कहे जाते हैं ॥९८॥

स्वारथ परमारथ को साज। इहि बिधि राजा कीजै राज।
मारहु सत्रुनि मित्रनि राखि। बस्य करहु जग साँचो भाखि ॥९९॥
स्वार्थ और परमार्थ का सतुलन करके राजा को राज्य करना चाहिये। शत्रु को मारो और मित्र की रक्षा करो, सत्य कह कर ससार को वश में करो ॥९९॥

जिती भूमि राजा की लेहु। विष्णु प्रीति राजा को देहु।
जितनै दैन कहै है दान। ते सब दीजहि बुद्धि निधान ॥१००॥
जितनी भूमि राजा की लो उसके बदले में विष्णु प्रीति दो। जितने दान देने के लिए कहे वे सभी दान दो ॥१००॥

॥ दोहा ॥

एक एक देत न बनै तातैं नृपति उदार।
ग्राम दान सङ्ग देत सब दान एकही बार ॥१०१॥
हे उदार-राजन्! एक-एक दान देते नहीं बनता। इसलिये ग्रामदान एक ही साथ देना चाहिये ॥१०१॥

॥ चौपाई ॥

राजधर्म बहु भाँतिनि जानि। बुधि बल लीजत है पहिचान।
कहौ कहाँ लगि बुद्धि निधान। तुम सुसील सर्वज्ञ सुजान।
तुमसे राजनि को उपदेस। ज्यौं सूर्योदय जान्ह प्रवेस ॥१०२॥
राज्य धर्म को बुद्धि बल से अनेक प्रकार से जान लेते हैं। हे बुद्धि निधान! तुम सुशील सर्वज्ञ हो। तुमसे कहा तक कहा जाए। तुम्हारे ऐसे राजाओं को उपदेश देना उसी प्रकार है जिस प्रकार से सूर्योदय में चंद्र का प्रवेश हो ॥१०२॥

॥ दोहा ॥

तिनसौं कहत न बूझियै हमैं राज के कर्म ।
जिनके जानत जगत जन पुरुषागति के धर्म ॥१०३॥

वही आप मुझ से राज्य के कर्म पूछ रहे हैं जिनके पुरुषागत धर्म को सारा संसार जानता है ॥१०३॥

इति श्रीमत् सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज श्रीवीरसिंह देवचरित्रे राजधर्म वनन नाम विंशएकादसप्रकाश ॥३१॥

॥श्री वीरसिंह उवाच—चौपाई॥

दान कहत तुम अति चौपाइ । सासन हम पर भेंदी जाई ।
अपनौ कुल सब बोलहु आज । देन कह्यौ तै दीजहि राज ॥१॥

हे दान ! तुम सुखी होकर अपने कुल को कहो । जिस राज्य को कहा है उस राज्य का दो ॥१॥

नृपति काज कहिजै गुनि दान । उत्तम मध्यम अधम विधान ॥२॥

॥ दान उवाच—चौपाई ॥

देव देवरिपि सहित विवेक । ब्रह्म ब्रह्मरिपि जिहैं अनेक ।
सब जग मृत्तिकानि कौं आनि । सब औपधि मन्त्र सब जानि ॥३॥

देव, देव ऋ प, ब्रह्म, ब्रह्मऋषि औषधि आदि जितने हैं सभी मिट्टी के हैं और सभी औषधि मत्र का जानते हैं ॥३॥

करत सीस अभिषेक उदात । ते नरपति अति उत्तम होत ॥४॥

जिस राजा पर देव, देवर्षि, ब्रह्मऋषि और माया अनुकूल है, वही राजा उत्तम राज्य का अधिकारी होता है ॥४॥

॥ श्लोक ॥

देवैश्च देवार्पिमिश्च यश्च ब्रह्मर्पिमितया ।
मूर्द्धाभिषिक्तो विधिना स राजा राजसत्तमः ॥५॥

उत्तम राजा वे हैं जो कि प्रात. होते ही ब्राह्मणों का अभिषेक करते हैं ॥५॥

॥ चौपाई ॥

बेद वेत्ता विप्र अनेक । जिनकै सीस करै अभिषेक ॥६॥

वेद का जानने वाले अनेक ब्राह्मण हैं, उनमें से किसका अभिषेक किया जाय ॥६॥

महा नृपति सौ मिलि नरनाथ । तिनकी जानों मध्यम गाथ ॥७॥

महानृपति से जो मिले रहते हैं वे मध्यम होते हैं ॥७॥

॥ श्लोक ॥

मूद्धाभिषिक्तो विधिना ब्राह्मणै वेंदपारगै ।
अमैनंरदेवैश्च स राजा मध्यमोमत ॥८॥

॥ चौपाई ॥

काल देस बिन बिना बिधान । जैसे तैसे विप्र अजान ।
जिहिं तिहिं जल अभिषेकहि करै । ताकों साधु असाधु उचरै ॥६॥

बिना काल देश का विचार किये हुए, अज्ञानी ब्राह्मण का अथवा जिस तिस का जल से अभिषेक करने वाले को साधु लोग असाधु कहते हैं ॥६॥

॥ श्लोक ॥

अकुलीनैः कुलीनैर्वा ब्राह्मणैर्योऽभिषेकवान् ।
पूतापूतजलैर्येश्च सर्वे सजाधमा मतः ॥१०॥

ब्राह्मण चाहे कुलीन हो अथवा अकुलीन फिर भी उसका अभिषेक करना चाहिये । पवित्र अथवा अपवित्र जल द्वारा जो अभिषिक्त राजा करता है वह अधर्म है ॥१०॥

॥ दास उवाच—चौपाई ॥

राजा यहै कुल क्रम की राज । अरु याकौ है उत्तम साज ।
ताकौं श्रद्धा सौं सग्रहै । फल अनेक जस आपुन लहै ॥११॥

हे राजन ! यही कुल का क्रम है और इसका साज उत्तम है। इसका साज श्रद्धा पूर्वक करे और अनेक प्रकार के फलों को प्राप्त करे ॥११॥

हमैं देव जानैं सब कोय। तिनको दरसन सफल न होय।
तुमपै हम प्रसन्न है चित्त। अभिमत वर मांगहु नृप मित्त ॥१२॥

हमें सभी देव जानते हैं। मेरे दर्शन करने से किसी की मनोकामना अफल नहीं होती है। हम तुम से प्रसन्न हैं। इसलिये जो भी तुम्हारी इच्छा हो माग लो ॥१२॥

॥ वीरसिंह उवाच—चौपाई ॥

सुनिजै दान देवमति मित्त। जो प्रसन्न तुम हमसौं चित्त।
सागर तीर जे सरित अमेय। सप्तद्वीप मृत्तिका सुमेय ॥१३॥

हे दान ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो सागर के पास जितनी नदियां हैं और सातो द्वीपों की जो मिट्टी है ॥१३॥

सब औषधी सफल फल रत्न। सकल वेद के मन्त्र सजत्न।
इनहि आदि अपने परिवार। वोलो दान सबै व्यौहार ॥१४॥

और सभी औषधियाँ, सुन्दर फल, रत्न, वेद आदि के सभी व्यवहारों को उच्चार करो ॥१४॥

विधि सौं हम सों दीजै राज। हम पर कृपा भई जो आज।
या सुनि दान कह्यौ सुख पाय। करिजै नृप अभिषेक उपाय ॥१५॥

यदि आज आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो विधिपूर्वक मुझे राज्य दीजिये। यह सुनकर दान ने कहा, हे राजन ! अब अभिषेक की तैयारी करो ॥१५॥

आये धर्म सहित परिवार। बाज उठे दुन्दुभि दरबार ॥१६॥

धर्म सहित दरबार में आये उस समय, दुन्दुभी बज उठा ॥१६॥

॥ कवित्त ॥

सोहत परम हिंस जात मुनि सुखपाइ,
हति मङ्गीत मीत विबुध वखानियै।
सुखद मकृति मम समर मनेही यह,
वदन विदित जस केसौदास गानियें।

राजै द्विजराज पद भूषण विमल,
कमलासन प्रनाम परदार[1] प्रिय मानियैं।
ऐसे लोकनाथ कि त्रिलोकनाथ नाथ किय,
कामीनाथ वीरसिंह जिय जानियैं ॥१७॥

हंस की भांति सुशोभित, सुनियों के लिये सुखदायी, संगीत का प्रेमी सभी कहते हैं। युद्ध का प्रेमी सभी कहते हैं। युद्ध का प्रेमी है और उसका यश सभी को पता है। वह द्विजराज की भाँति सुशोभित है और परदार प्रिय है। ऐसे गुणों से युक्त वीरसिंह को त्रिलोकनाथ अथवा शंकर के रूप में सारा संसार जानता है ॥१७॥

॥ दोहा ॥

वीरसिंह ज्यों देखियौ सकल धर्म परिवार।
अपने अपने चित्तमय वाढे तर्क अपार ॥१८॥

वीरसिंह ने सारे धर्म परिवार को देखा। सभी के चित्तों में अनेक प्रकार के तर्क बढ़े ॥१८॥

॥ चौपाई ॥

तब कीनै आतिथ्य अनेक। श्रद्धा सहित धर्म सविवेक।
पूजा करी आठहू अंग। मन क्रम वचन मुदित अंग अंग ॥१९॥

उसके बाद श्रद्धा पूर्वक आतिथ्य किया। मन, क्रम, वचन से आनंदित होकर आठो अंगों की पूजा की ॥१९॥

ज्ञान सहित पूजे विज्ञान। पूजे देव सबै सविधान।
पूजि पाय परि ठाढे भये। अंजुलि जोरि विनय बहु ठये ॥२०॥

ज्ञान सहित विज्ञान की पूजा की और विधि पूर्वक सभी देवों की पूजा की। पैरों की पूजा करके अंजुलि बांधकर खड़े हो गये ॥२०॥

सुनहु प्रतिपालक धर्म। आजु सफल भये मेरे कर्म।
मोपै कियो हतौ अनुराग। मेरे पुरुषन कौ बड़भाग ॥२१॥

हे संसार का पालन करने वाले धर्म ! आज मेरे सभी काम पूरे हो गये। मेरे ऊपर इतना आपने प्रेम किया, यह मेरे पूर्वजों का बड़ा भाग्य है ॥२१॥

॥ दोहा ॥

पूजा करि बहु विनय करि वीरसिंह नरदेव।
बैठारे सिंहासननि सोभन देवी देव ॥२२॥

वीरसिंह ने पूजा और विनय करके देवी और देव को सिंहासन पर बिठाया ॥२२॥

॥ चौपाई ॥

तब तिहिं समय विजय सुख पाय।
कही बात नरपतिहिं सुनाय ॥२३॥

उसी समय सुखी होकर विजय ने कहा ॥२३॥

विजय उवाच

महाराज के गुन अवदात। हमको मिले दिगन्तनि जात।
तिहि त्रराइनी दीनी हमें। जो सुनिजै तु कही इहि समय॥
राजा मुनि सिर नीचो कियो।
तिनको कह्यो कहन तिन लियो ॥२४॥

महाराज के विमल गुण हमें दिगन्तों में मिले हैं। उन्हें मैंने उलहना दी, यदि उसे सुनना चाहें तो मैं अभी सुना दूँ। राजा ने इसे सुनकर शिर नीचा कर लिया ॥२४॥

॥कवित्त॥

हमही सिखाये दैन भोग भोग वन इन,
हमही सौं प्रबल प्रताप नर हारे हैं।
केसौदास हमही बढ़ायकै बड़ाई दई,
राजन के राजा आनि पाय सब पारे हैं।
ताकौं तौ हमारी बात अबही लजात सुनि,
आगे कहा करिहौं विचार यों विचारे हैं।

राजा बीरसिंह देव रावरे सकल गुन
ऐसो कहि दासहु दिसानि पाऊँ धारे हैं ॥२५॥

हमने ही भोग करना तथा भोग बन सिखाया और हमसे ६ प्रतापी मनुष्य हारे हैं। हमने हा बड़ा कर बड़प्पन दिया और राजाओं के राजा भी आ कर पांव म पड़े हैं। मेरी उस बात को सुनकर अभी लज्जित होते हो तो आगे क्या विचार करोगे ? राजा वीरसिंह म ऐसे गुण हैं कि दसों दिशाओं ने उनके पैर पकड़े हैं ॥२५॥

॥ उत्साह उवाच चौपाई ॥

नृपति मुकुटमनि वीरसिंह देव। दारिद डरपि तुम्हारे भेव।
विधि सौं विनय करयों तजि लाज। हम सब सुनी सु सुनिजै राज।

हे वीरसिंह। तुम्हारे भ्रम से दारिद्रय डर कर विधि से जो उसने प्रार्थना की उसे सुनिए ॥२६॥

॥ सवैया ॥

चोटहु जू करतारपन्यो तुम कासीनरेस वृथा कहि डारे।
आपने हाथनि नाय हुतो जनके सिर राज के अंक सुधारे।
ऐसे सुरेसनिहूँ के मिटे नहि जा उत तीरथ जाल पखारे।
है गये राजतहीं तैं जहीं नर वीरनरायति नैक निहारे ॥२७॥

हे करतार आपने काशी नरेश के सबंध में व्यर्थ ही कहा है। उसने तो अपने हाथों से ही राज्य के लोगों को सुधारा है। सुरेश भी इतना नहीं मिटा सकते जितना उस जल के तीर्थ मे धोने से मिट सकता है। जिस किसी ने थोड़ा देख भी लिया वही राजा हो गया ॥२७॥

॥ वैराग उवाच—चौपाई ॥

नृपति तुम्हारे मत्रु अनन्त। इहि विधि देखे भूमि भवन्त ॥२८॥

हे राजन ! पृथ्वी पर तुम्हारे शत्रु अनेक हैं।

जय उवाच—चौपाई

सुख दुख सहित सकल परिवार। हमहिं मिले यह भांति अपार।
बहुधा विपति सपातिन सनै। राजा तुम्हारे अरि मा गनै ॥२९॥

मुख दुख सहित सारा परिवार हमें इस प्रकार मिला । अनेक सर्पाचे वाले विरक्त युक्त लोगों की गणना शत्रु दल में होती है ॥२६॥

॥ धैर्य उवाच—चौपाई ॥

महाराज सुनिजै रनरुद्र । प्रगट करे तुम दान समुद्र ।
अति दीरघ अति सोभा सने । कहौं न जाए देखतहि बने ॥३०॥

हे रणरुद्र महाराज ! सुनिये । तुमने तो दान के समुद्र ही प्रकट कर दिए हैं । वे अत्यधिक बड़े और शोभा युक्त हैं । उनको देखने पर भी नहीं कहते बनता है ॥३०॥

॥ कवित्त ॥

केसौदास सुबरनमय मनिजल जात
तरगनि तरगनि तरगित, विभाति हैं ।
जाचक जहाज लाख लाख अभिलाख,
जानभरि भरि लै सिद्दान दिन रात हैं ।
उड़ि उड़ि जात जित देखहा सु वित हित
पचि पचि पैरि पैरि अति अकुलात हैं ।
कीरति मराली राजासिंहनि की वीरसिंह,
तेरे दान सागर में बूडिबूडि जाति हैं ॥३१॥

स्वर्ण और मणियों की तरंगें दिखाई देती हैं । याचक इच्छानुसार रात दिन जहाजों में भरकर उसे ले जाते हैं । हे वीरसिंह ! तेरे दान रूपी समुद्र में राजसिंहों की कीर्ति डूबी जा रही है ॥३१॥

आनन्द उवाच—चौपाई

महाराज तव दुग्व दुरन्त । पाप पुकारत आरतवन्त ।
विधि जौं कहत भूमि हम तजी । अब हम बसे निकट की सजी॥३२॥

हे महाराजा ! आप दुखों को दूर करने वाले हैं । दुखी होकर पाप पुकार रहा है । ब्रह्मा से यह कह रहा है कि उसने भूमि को छोड़ दिया है । अब हम सखी के निकट वास कर रहे हैं ॥३२॥

॥ कवित्त ॥

क्हाँ करतार हम कहा क्हाँ वीरसिंह,
कलजुगही में कृतयुग, अवतारयौ हैं
त्रिक्रम विटप भीम भाग बताश्रो
सैनापति तेज, `मही सौं अति पारयौ हैं
केसौदास गुनज्ञान सक्ल सायन साच
दान कै समुद्र मैं दारिद्र बोरि मारयौ है।
राज नी धुराले धीर धरी धामहा कै
वन्ध भूमि लोक्हा में मत्यलोक सुधारयौ है ॥३३॥

हे करतार ! अब हम क्या करें ? वीरसिंह ने कलियुग में कृतयुग की रचना की है। विक्रम रूपी वृक्ष, वीरों तथा सेनापतियों को बड़े ही प्रेम से पाला है। वीरसिंह ने अपने गुण, ज्ञान, चतुरता, सत्यता, दान आदि के समुद्र में दारिद्रता को डुबा दिया है। इस पृथ्वी पर ही उसने सत्यलोक की रचना की है ॥३३॥

॥ भाग्य उवाच—चौपाई ॥

जहा जहा हम गये नरेस। तहा तहा तो सुजस सुवेस।
जल थल पुर पट्टन वर बाग। सुनियतु तेरै बहु अनुराग ॥

हे राजन ! जहा जहा हम गये, वहा-वहीं तेरा सुयश मुझे मिला। जल, थल, पुर, पट्टन, बाग आदि सभी स्थानों पर तेरे ही अनुराग को सुना है ॥३४॥

॥ कवित्त ॥

केसौदास मावकास तारिकन सौं अकास,
तारनि मैं चन्द सों प्रकास ही करतु हैं।
सुधा के आम पास सागर उजागर सौं,
सागर मैं गङ्गा कैसी जल परसतु है।
नागलाक सेस जू सौ देखयतु सुरपाई,
सेपजू मैं सत्य कैसौ वेपहि धरतु हैं।

वीरसिंह तारो जस लोक लोकपूजयत,
नारद सौं सारद वै राम सो रटतु, हैं ॥३५॥

जिस प्रकार से तारे आकाश को और तारों को चद्र प्रकाशित करता है उसी प्रकार आप भी सभी को प्रकाशित करते है। वसुधा के आसपास सागर में गगा के समान जल है। जिस प्रकार से नागलोक में शेषनाग भी सत्य को धारण किए हैं उसी प्रकार से तुम भी इस पृथ्वी पर धारण किए हुए हो ॥३५॥

॥ चौपाई ॥

बात सुनि जब सुकसारिका। बूझति है सुक सौं सारिका ॥३६॥

जब शुकसारिका ने सारी बात सुनी तब शुक से सारिका ने पूछा ॥३६॥

॥ प्राक्रम उवाच—चौपाई ॥

सुनि वीरसिंह गुन ग्राम। मारै भट जु तुम संग्राम।
निसिबासर आनन्द निधान। देखे हम दिवि देव समान ॥३६॥

हे वीरसिंह! तुमने युद्ध में अनेक वीरों को माराः है। फिर भी मैंने आप को रात दिन आनंदित ही देखा और आप सदैव देव के समान ही दिखाई दिए ॥३७॥

सवैया

केलि करैं कलपद्रुम के वन मैं तिनके सग देव मुरारी।
अक्षित दासकरै जनु देह लग हरिचन्दन चित्त सुधारी॥
लोक बिलोकनि कौ सुख वोकनि मानु दियैं सुरलोक बिहारी।
वीर नरपति जू जिनके सिर तोरति वे तरवारि बिहारी ॥३७॥

उनके साथ कल्पद्रुम के वन में देव मुरारी क्रीड़ा कर रहे हैं। उनके थोड़ा भी हाथ करने से ऐसा लगता है कि उनकी देह रूपी लता को हरि नन्दन से बनाया गया हो। माना सुरलोक में विहार करने वाले ने सुख के घरों को ही दे दिया हो। हे वीरसिंह! ऐसे राजाओं को सिरों तक को तेरी तलवार तोड़ रही है ॥३७॥

॥प्रेम उवाच—चौपाई॥

देव राजपुर द्वार पुकार। दरदर की तिय सुनी अपार ॥३८॥

देवराज के दरवाजे पर मैंने दरदर के लोगों की पुकार सुनी ॥३८॥

सवैया

कोपि उठी वियहू तें सुवीर नरपति दान कृपानि किनारा।
कन्त हमारो कियौ बहु खण्ड बहाय दिये तिनकी जलधारा॥
कैसी करैं हम कासौं कहैं जु बचै करि कैसव कौन की सारा।
यौं बहु बार पुरन्दर द्वार पुकारति दारिद दुख की दारा ॥३९॥

इस प्रकार के दरिद्र की स्त्री इन्द्र के द्वार पर पुकार रही थी। वीरसिंह की दान रूपी कृपाण बीच में ही कोर उठी और उसने हमारे स्वामी के अनेक खड कर के जल की धारा में बहा दिया। अब मैं किससे जाकर कहूँ जिससे मेरे पति देव बच जायँ ॥३९॥

॥ सारिका उवाच – चौपाई ॥

कहियो सोभन सुक अवदात। वीरसिंह की मोसौं बात।
आयो सभाधर्म परिवार। जिन जिन वेदनि मांझ विचार।
बाढ्यो मेरे चित्त विचार। वीरसिंह काकौ अवतार ॥४०॥

हे शुक! मुझसे वीरसिंह की सारी बात कहो। परिवार सहित धर्म सभा में आया, जिनके मध्य में वेदों का विचार था। मेरे चित्त में यह विचार उत्पन्न हुआ कि वीरसिंह किसका अवतार है ॥४०॥

॥ कवित्त ॥

किधौं मुनि तप वृद्ध केसौदास कैऊ सिद्ध,
देवता प्रसिद्ध भूमि भूपति कहाये हैं।
गुन गन युत मोहैं मेरे तन मन मोहैं,
वीरसिंह कौहैं सुक तेरे मन आये हैं॥
जिन लगि दीजै दान तीरथनि कीजै न्हान,
सुनिजै पुरान बहु वेदन यु गाये हैं।

अरु तन मन कहि आवे न वचन कहि,
आवत न तन निते नैनिनि में आये हैं ॥४१॥

या ता वह कोई तपी वृद्ध मुनि है अथवा कोई सिद्ध देवता है जिसने इस भूमि पर राजा का अवतार लिया है। सुग्गा ने कहा मेरे तन मन को आनंदित करने वाले कौन हैं? जिनके लिए तीर्थों पर दान और स्नान किया जाय और जिनके सम्बन्ध में वेद और पुराण ने गाया है। उनका वर्णन तन मन से नहीं हो पा रहा है, ऐसे नीरसिंह मेरे नेत्रों में हैं ॥४१॥

॥ सुक उवाच—चोपाई ।

सुनि सुक कीनो चित्त विचार। अपने उर कीना निरधार।
भली कही तै बुद्धि निधान। मोपैं सुक सारिका सुजान ॥४२॥

सुक ने सुनकर अपने मन में विचार किया और हृदय में निश्चित किया। हे बुद्धि निधान! तूने मुझसे अच्छा ही कहा है ॥४२॥

कवित

याके उर अकबर माहि मेरे नसदाम
जाके नाहीं रुचि परतिय परधन की।
साधि साधि तन्त्र ते जन्त्र जपि जपि मूलमत्र,
ज्यों ज्यों लीनौं भार त्यों त्यों बाढ़ी जातितन की॥
लहुरे तैं मबहा के जेठा भया माहि कै सु,
अजहूँ न जान्यौ रे तू ऐसो मूढ़ मन की।
धर्म परिवार सब ताको इन आगा रान,
विरसिंह नरपुर कला नारायन की ॥४३॥

इसके हृदय में अकबर बादशाह है और उसे दूसरे धन और स्त्री का बिल्कुल लालच ही नहीं है। तन्त्र मंत्र को जपकर तथा मूलमन्त्र द्वारा अपने शरीर की ख्याति को बढ़ाया है। छोटे से बड़ा हो गया है अभी तक तू मूर्ख इसे न जान सकी। धर्म परिवार सहित नारायन पुर की सम्पूर्ण कला उसे देने के लिए आया है ॥४३॥

॥ दोहा ॥

मुनि मुखसारो के वचन साभन सुखद अपार।
सुख पायो मन क्रम वचन सकल धर्म परिवार ॥४४॥

शुक सारो के सुस्वाद वचनों को सुनकर मन क्रम वचन से धर्म का परिवार सुखी हुआ ॥४४॥

॥ चौपाई ॥

यही समय विप्र इक रक। आयो सभा मध्य निरसक।
फूटे बसन दुर्बलता बढ़े। नृप के दोय सवैया पढ़े ॥४५॥

निर्भय होकर इसी समय एक भिखारी ब्राह्मण सभा मे आया। फटे हुए वस्त्र हैं और शरीर से दुर्बल है। राजा के लिए दो सवैया पढे ॥४५॥

सवैया

आगेहु दीजतु पाछेहु दीजतु दीरोई ओर दूहु व्रत धार्यो।
दीजतु हैं अध ऊरधहू वर बैठहु देत दिसानि निहार्यो।
लैवहु दीजतु देयहु दीजतु केसव दीरोइ दीवो बिचार्यौ।
एकहि वीर नरपति एक जिने बड़ो दीबे को हाथ पसार्यो ॥४६॥

आगे पीछे दोनों ओर ही देता है। अध ऊरध को भी देता है। दिशायें साक्षी हैं कि तू बैठे ही बैठे लोगों को भी देता है। सभी प्रकार से तूने देने का विचार किया है। एक तूही राजा है जिसने देने के लिए ही हाथ फैला रखा है ॥४६॥

सवैया

देस परदेस से कहत सब जनपद किधौं
केसौदास वाने तन्त्र नयी नय की।
महाराज मधुशाह सुत वीरसिंह,
किधौं जगन्नाथ है दारिद छुद्र छय की ॥
सोकगत सर्णागत बिलोकि जात किधौं,
किधौं ताके तीन माझ लोक है अभय की। -

सुनहरी भागि जात वैरी सब साँची कहौं,
नाँऊ यह रावरी कि मन्त्र है विजय को ॥४७॥

देश विदेश के सभी जनपद कह रहे हैं कि राजा के पास कौन सा तन्त्र है। महाराज मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह क्षुद्र दारिद्रय को नष्ट करने का जगतन्त्र है। दुखी तथा शरणागतों को अभय दान देता है। तेरा नाम सुनते ही शत्रु भाग जाते हैं। क्या तेरा नाम विजय का मन्त्र है ॥४७॥

॥ चौपाई ॥

यह सुन रीझ रही सब सभा। प्रगटी उरझि दान की प्रभा।
महाराज सुख पाइ समोद। चितये कृपाराम की गोद ॥४८॥

यह सुनकर सारी सभा प्रसन्न हो गई और उसी समय दान की प्रभा प्रकट हुई। महाराज प्रसन्न ने होकर कृपाराम की गोद की ओर देखा। ४८॥

कृपाराम अति हरषित गात। कही प्रगट द्विज कौ यह बात ॥४६॥

कृपा राम ने हर्षित होकर ब्राह्मण से कहा ॥४६॥

॥ दोहा ॥

जा कारन आये इहां कहौ विप्र बडभाग।
हय गय हाटक हरि घट धाम ग्राम बहु बाग ॥५०॥

हे ब्राह्मण! जिस कारण से आप आये हैं उस बात को आप कहें। घोड़े हाथी, हीरे जवाहरात, धाम, ग्राम बाग आदि सभी कुछ है ॥५०॥

विप्रौ उवाच —सवैया

और न मारिबे कौं कोऊ केसव वाही कौं तातै निरन्तर मारो।
कै अब मारिबौ छाड़ियै वाकौं कै वाकहू मारौ कै मोहि उबारौ॥
बीर नरपति देवत तै वह भारत मोहि सुजाति तुम्हारो ॥५१॥

अब तुम्हारे मारने के लिए और कोई नहीं बचा है जिससे कि तुम उसे ही मार रहे हो। अब या तो उसे मारना छोड़ दीजिये अथवा मुझे उबार लीजिए। हे राजन वह मुझे भी मार रहा है ॥५१॥

॥ दोहा ॥

ग्राम चारि गन्धर्व दस हाथी बीस मँगाइ।
कृपाराम दीनै द्विजहि औरै पट पहिराइ ॥५२॥

चार ग्राम, दस गन्धर्व और बीस हाथी कृपा राम ने दिए और नये वस्त्रों को भी पहनाया ॥५२॥

शुक उवाच—कवित्त

दैन कहि आये दीनौ हरिचन्द लीनौ रिषि,
सर्णागत कैसो सारौ सिवदान कीनौ है।
केसौदास रोस बस दीनी है परसुराम,
बलिहूँ पै बदन त्यौं छल करि लीनौं है ॥
बाप कौ बिठायौ धन दीनौ भोज पडितन,
तुमहू चलायौ कछू मारग नबीनौ है।
रंकहूँ कौ राजाहू कौ गुनी अनगुनीहू कौ,
बिरसिंह ऐसा दान काहू ने न दीनो है॥५३॥

शरण में आये हुए ऋषि को दान देकर हरिश्चन्द्र ने शिवदान को सत्य कर दिया था। क्रोध वश परशुराम ने भी बलि को दान दिया था किन्तु वामन रूप में उसे छल लिया था। बाप द्वारा बढे हुए धन से भोज ने भी पतितों को दान दिया था। आपने दान देकर नवीन मार्ग ही चला दिया है। राजा रंग गुणी अवगुणी सभी को वीरसिंह दान देता है। ऐसा दान किसी ने भी नहीं दिया था ॥५३॥

सारिका उवाच—कवित्त

कारे कारे तम कैसे प्रीतम सँवारे विधि,
बारि बारि डारौ गिरि केसौदास भाषे हैं।
थोड़े थोड़े मदनि कपाल फूल थूले थूले,
सौहैं जल थल बल थानसुत नाघे हैं॥
घण्टा ठननात नाद घने घुरघानि,
भौंर भननात भुवपति अति अभिलाषे हैं।

दुरजन मारिबे को दारिद बिदारिबे को,
वीरसिंह हाथी यों हथ्यार करि राखे हैं ॥५४॥

वीरसिंह के काले काले अन्धकार समान हाथी हैं। विधि ने उन्हें अच्छी प्रकार सँवारा है। उनके ऊपर पर्वतों को निछावर किया जा सकता है। उनके कपालों पर सदा मद बहा करता है उनके नाद से घनघन का शब्द होने लगता है। घूँघरों की ध्वनि भ्रमरों की गुन्जार के समान है। दुष्ट लोगों को मारने के लिए वीरसिंह ने हथियार के रूप में हाथियों को धारण कर रखा है ॥५४॥

॥ चौपाई ॥

यह मुनि कहि सुखपायौ दान। दारू सुकमारिग सुजान।
कीनो बहुत अशुभ को भोग। ताहि रोग ये उनके संयोग ॥५५॥

दान, सुकमारिका यह सुनकर सुखी हुए। अशुभ वस्तुओं का बहुत भोग किया है। उसी रोग के ये उनके हैं ॥५५॥

॥ सारिका उवाच —सवैया ॥

कामगवी कलपद्रुम कामना पाइयें दान जु दान दियें को
साधन साधन होय जो है सर्व काम की पारस पुञ्ज छियें को ॥
जागत औ जरिजाई जरागुन केमन को जनु एक पियें को।
भागेहो भी भगिहैं भवती परिमान कहा हरिनाम लियें को ॥५६॥

कल्पवृक्ष वृक्ष के नीचे जाने पर इच्छा पूरी हो, दान देने पर यदि दान मिले, साधन होने पर सभी साधन सुलभ हों, पारस को छूने पर इच्छित वस्तु मिले, जलाने पर जरागुन जलें भाग्य से ही सांसारिक बाधायें भगेंगी, तो ऐसी अवस्था में हरि का नाम लेने से क्या लाभ है ॥५६॥

॥ चौपाई ॥

यह सुनि बोल्यो धर्म प्रधान। साधु साधु सारिके सुजान।
हरि की नगदी अब बल भई। इतनौ कहति सबध्वनि भई ॥५७॥

यह सुनकर सारिका को सम्बोधित करके धर्म बोला। हरि की नगरी अब शक्तिशाली है। इतना कहते ही शखध्वनि हुई ॥४७॥

आई राज लैन की घरी। आइ गनिक यह बिनती करी ॥४८॥

गणक ने आकर बिनती की कि अब राज्य ग्रहण करने का शुभ समय आ गया है ॥४८॥

इति श्रीमत सकल भूमण्डलाखण्डलेश्वर महाराजाधिराज राजा श्रीवीरसिंह देव चरित्रे धर्म समागम वर्नन नाम विंशद्वादश प्रकाश ॥४८॥

॥ चौपाई ॥

झालरि भेरि सजावरि बजैं। जहँ तहँ दुन्दुभि दीरघ सजैं।

जहँ तहँ प्रमुदित लोग अभीन। जहँ तहँ सुनियत मगल गीत ॥१॥

मगल भेरी तथा दुदुभी फिर बज उठी। जहा तहा लोग निर्भय तथा आनन्दित थे और जहा तहा मङ्गल गीत सुनाइ देत था ॥१॥

जहँ तहँ बेद पढै द्विज पाति। जहँ तहँ होम होत बहु भाति।

लीपी घर चन्दन जल चारु। उपरि वितानन्नि को परिवारु ॥२॥

यत्र तत्र ब्राह्मण वेद पढ़ते थे और अनेक विधि से होम होता था। घर सुन्दर चदन और जल से लिपे हुए हैं और ऊपर वितान तने हुए हैं॥२॥

हेम दलनि मरक्त मनि खची। तिनके बदन माफ है सची।

बिच बिच होरा मानिकलरें। बिच बिच मुक्तनि की भालरी॥३॥

सोने और मरक्त मणि से जड़े हुए हैं। बीच बीच में हीरे माणिक माणि की लड़िया और मुक्ताओं की झालर है ॥३॥

कञ्चन कलस जरयनि जरे। उज्जल झलक दिव्य जल भरे।

सिंहासन दुति मन मोहियो। सोभन सभा मध्य सोहियो ॥४॥

सोने के घड़े जरायनि से जड़े हुए हैं। स्वच्छ जल से घड़े भरे हुए हैं। सिंहासन की काति मन को मोहित कर लेती है। सभा के मध्य शोभा स्वय सुशोभित है ॥४॥

स्नान दान कीनौं सुभ कर्म । तापर नृप बैठारे धर्म ।
छत्र शीस पर धीरज धरयो । सास सौं अमृत मयूपनि भरयौ ॥५॥

स्नान दान आदि शुभ कर्म किए। फिर राजा को धर्म ने बिठाया। धैर्य रूपी छत्र शिर के ऊपर धारण किया, उसे चद्र के समान अमृत रूप मयूखों न कहा ॥५॥

रूप प्रेम कर दर्पन लियै। मानो निर्मलता के हियैं।
बल विक्रम कर लियैं हथ्यार। बाने आनद के परिवार ॥६॥

सौंदर्य और प्रेम का दर्पन हाथ में लिया, मानो वह ह्रदय की निर्मलता हो। बल और विक्रम रूपी हथियारों को हाथ में धारण कर लिया है ॥६॥

रानी पारवती तिहि काल। बोलो सुमति सखि तिहि बाल।
जोरी गाठि विवेक बिचारि। बाम अग साभी सुखकारि ॥७॥

उस शुभ काल में रानी पारवती की गाँठ विचार करके राजा से जोड़ी गयी है और सुखद रानी बाम अग में सुशोभित हुई ॥७॥

अति उतसाह तेज करि धरि। जयहू विजय छबीली छरी।
भोग भाग करि सुमन विधान। अति आचार खवावत पान ॥८॥

अत्यधिक उत्साह से तेज को धारण किया और हाथ में विजय की सुन्दर छड़ी ली। अनेक प्रकार से भोग किया और उसके बाद आचार सहित पान खिलाया ॥८॥

विघ्या अरु श्री ढारति चौर। वीरसिंह नृपति सिरमौर॥
छमा दया सजनी सुख सिद्ध। श्रद्धा मेधा सुचि रुचि वृद्धि।
रानिहि देखि सकल सुख बढ़ी। मानौ सुखद सारिका पढ़ी ॥६॥

विद्या और श्री वीरसिंह के ऊपर चौर चला रही हैं। क्षमा, दया, सिद्धि, श्रद्धा, मेधा शुचि आदि सभी रानी को देख कर आनंदित हुई ॥६॥

॥ सवैया ॥

भाजन भूषण भूषित भूपति दुःख दसा सबही को हतीसी।

प्रात तैं दीजतु है अधि राति लों कोटि करी जिन एक रतीसी।
देव सराहत देवी मनै रन देवी मराहति इन्द्रमति सी।
होय न ऐसी जौ फेरि रचे विधि पारवती सम पारवता सी ॥१०॥

भोजन और आभूषणों से विभूषित होने पर सभी प्र। दुख कम हो गया। प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक करोड़ों हाथियों का दान एक रत्ती की तरह देता रहता है। देव, देवी, रणदेवी आदि सभी सराहना करती हैं। अब विधि फिर से पारवती समान पारवती की रचना नहीं करेगा ॥१०॥

॥ दोहा ॥

दे धर्म सकल परिवार सों सजुत ज्ञान विवेक।
अपने अपने अस दै किये तिलक अभिषेक ॥११॥

धर्म ने अपने परिवार सहित तथा ज्ञान और विवेक के साथ अपने-अपने अश का तिलक किया ॥११॥

॥ चौपाई ॥

जय अभिषेक धर्म करि लयौ। जय जय शब्द सकल जग भयौ।
प्रथमहि पहिराये द्विजराज। छीतर मिश्र अमित कविराज ॥१२॥

जब अभिषेक का कार्य पूरा हो गया तब सभी ने जयजय कार का शब्द किया। सर्वप्रथम द्विजराज, कविराज छीतर मिश्र ने पहिनाया ॥१२॥

श्रुति सुधर्म तरु विप्र बुलाई। कुक्ति उक्ति जोगा सुखदाई।
पहिराये गनि पर पवित्र। जानि मानि, सब गुननि विचित्र ॥१३॥

सभी गुणों में विचित्र समझ कर श्रुति और सुधर्म ने ब्राह्मणों को बुलाया जिन्होंने गनि पर पवित्रता के साथ पहनाया ॥१३॥

सिगरे प्रोहित गन कविराज। देत असीस चिरञ्जिय राज।
पहिराये मानसाहि बुधिवन्त। पहिराये भैया भगवन्त ॥१४॥

राजा को सभी पुरोहित और मनराज आशीर्वाद देते हैं। मानसाहि और भैया भगवन्त ने भी पहनाया ॥१४॥

दै दै वर अम्बर कविराज। पुरी परगनैं भूषन साज।
बोलि जुझार राइ सुख साज। पहिराये कीन्हें जुवराज ॥१५॥

अम्बर कविराज को वर दिया और पुरी, परगनों तथा भूषणों से भूषित किया। जुझार राय ने कहा कि आप राजन सभी सुखों के साज है, ऐसा कहकर उन्होंने पहना कर युवराज बनाया ॥१५॥

पहिराये हर धीर कुमार। प्रबल पहार स्यान बल मार।
बोले बाघ राज रनधीर। चारु चन्द्रमनि बुधि गम्भीर ॥१६॥

शक्तिशाली हरधीर कुमार ने पहनाया। रणधीर बाघराज ने कहा कि हे राजन ! आप सुन्दर चंद्रमणि की भांति बुद्धिमान और गंभीर है ॥१६॥

अरु भगवानदास सुख पाइ। पहिराये बहुवै सुखपाई।
पुनि पहिराये नरहरि दास। कृष्णदास अरु माधौदास ॥१७॥

भगवान दास ने सुखी होकर पहनाया। फिर नरहरिदास, कृष्णदास और माधवदास ने पहनाया ॥१७॥

हँसि पहिराये बेनीदास। अति हुलास सौं तुलसीदास।
बहुरि बसन्तराइ पहिराइ। पुनि पहिराइ खाडेराइ ॥१८॥

हंस कर बेनीदास ने और आनंदित होकर तुलसीदास ने पहनाया। इसके बाद बसन्त राय और खण्डेराय ने पहनाया ॥१८॥

बोले ई कृपाराम सुखकारि। पहिराये पट भूषण धारि।
कटि बाधी अपनी तरवारि। पहिरायौ तिहिं कौ परिवार ॥१६॥

सुखद कृपाराम ने आभूषणों को पहनाया। कमर मे अपनी तलवार बाधी और उनके परिवार ने पहनाया ॥१६॥

करि अपनैं मन प्रेम प्रकास। पहिरायो द्विज कन्हरदास।
जैनसानु पहिरायौ गौर। बोलि बसन्तराइ तिहि ठौर ॥२०॥

अपने प्रेम को व्यक्त करके कन्हरदास ने पहनाया। जैन साधु ने पहनाया और बसन्त राई उस जगह बोला ॥२०॥

पहिराये बड़ गूजर सूर। चम्पति केसवराय समूर।
आदि प्रधान अलोभ अभूत। पहिराए सुन्दर के पूत ॥२१॥

शूर गूजरों और चम्पति ने पहनाया। लोभ रहित प्रधानों तथा सुन्दर के पूत ने पहनाया ॥२१॥

ईं मुराउर सुतनि समेत। पहिराये सब कारज देत।
सुबुधि दसौंधी साहिबराई। पहिराये बहु भांति बनाई ॥२२॥

मुर ने अपने सभी पुत्रों सहित कार्य सिद्धि के लिए पहनाया। दसौंधी के साहिबराइ ने अनेक प्रकार से बनाकर पहनाया ॥२२॥

कायथ पहिराये सुवि वास। कमलपानि नारायन दास।
पहिराये सब सुजन समाज। सिगरे देस देस के राज ॥२३॥

कायस्थों ने सुविवास तथा नारायणदास ने कमलपानि पहनाया। सम्पूर्ण समाज और देश विदेश के राजाओं ने भी पहनाया ॥२३॥

नेगी दल परिगह उमराउ। पहिराये अति उपज्यौ चाउ।
पहिराये मरहरिया भारि। महत्ते बहु मगने विचारि ॥२४॥

नेगी दल, परिगह क उमराव ने भी आनंदित होकर पहनाया। मरहरिया भारि ने भी पहनाया ॥२४।

एक द्विजनि पादारघ दये। एक निवृति दान रुचि रये।
तब सब लोग लये पहिराय। बोलो कृपाराम सुखपाय ॥२५॥

एक ब्राह्मण ने पादारघ दिया। एक ने निवृत्ति दान में अपनी रुचि दिखायी। जब सभी लोगा ने पहना लिया तब सुखी होकर कृपाराम बोले। २५॥

जाके मन जैसी रुचि होय। लोग असीस देहु सब कोय ॥२६॥

जिसके मन म जैसी रुचि हो, उसा के अनुरूप सभी लोग आशीर्वाद वदो ॥२६॥

सदाचार उवाच—सवैया

राम के नामनि प्रात उठौ पढ़ि ह्वै सुचि सव्वई जु मन्दैजै।
पूजि जथा विधि केसव की पुनि दान दै राज सभा मह वैसै ॥
भोग लगै भगवन्तहि भूपति भोजन कै निज मन्दिर अँजै।
राज करौ चिर वीर नरेसनि लै जगती बस दैजै ॥२७॥

राम का नाम लेकर प्रातःकाल उठिये और सतों को आनन्दित कीजिये। यथाविधि पूजन कीजिये और राजसभा में दान दीजिये। भगवान को भोग लगा कर भोजन के लिए घर जाइये। हे नरेश! राजाओं को लेकर संसार में राज्य करके वश लीजिये ॥२७॥

॥ सत्य उवाच—दोहा ॥

सत्य सर्व हरिचन्द ज्यों वीरसिंह नरनाथ।
पति पाल्यो पालहु जगत ज्यौं राजा रघुनाथ ॥२८॥

हे वीरसिंह! सत्य का उसी प्रकार पालन करना जिस प्रकार हरिश्चन्द्र ने पालन किया था। जिस प्रकार से राजा रघुनाथ ने पालन किया था उसी प्रकार से संसार का पालन करिये ॥२८॥

॥ ज्ञान उवाच—कवित्त ॥

भव कौ उतान्यौ :भार उतर्यौ ज्यों निजु,
भार धर्यौ भूमि भार १नपति के फनकज्यौं।
साधि जय सभै साधु साजत ज्यों मत्र सब,
साधि साधि सिद्ध वस करहु गनकज्यों ॥
ग्रन्थ छोरि तौलि ताप ताडिजै तरुन मनु,
छेदि छेदि केसौदास कमिजै कनक जय ज्यों।
महाराज मधुकुर साह सुत वीरसिंह वीर,
चिर राज करौ राजा जू जनक ज्यों ॥२९॥

संसार के भार को उसी प्रकार से उतार दीजिये जिस प्रकार से आपने अपना भार उतार दिया है और पृथ्वी का भार धनपति की भांति आप भी धारण कीजिये। साधुओं की भाँति जप की साधना करो और गनक की भांति शत्रुओं को मिलाओ। अपने तरुण मन की ग्रंथियों को खोल करके उसे उसी प्रकार कसौटी पर कसिये जैसे सोने को कसौटी पर कसा जाता है। हे मधुकर शाहि के पुत्र वीरसिंह! तुम युग-युग तक राजा जनक की भांति राज्य करो ॥२६॥

॥ लोभ उवाच—दोहा ॥

प्रभु ज्यों पृथ्वी पालिजैं सबै रतन दुहि लेहु।
लोभ बड़े हरि भक्ति को जस सौं करौ सनेहु ॥३०॥

राजा पृथु के समान पृथ्वी का पालन करो और उसके सभी रत्नों को दुह लो। लोभ केवल हरिभक्ति का करो और यश से स्नेह करो ॥३०॥

पराक्रम

काल कैसौ दण्ड असिदण्ड भुज दण्ड गहि,
विक्रम अखण्ड खण्ड नवखण्ड मण्डियै।
मत्त गज मुण्डन के बलिखण्ड सुण्डादण्ड,
कुण्डली समान खण्ड खंड नव खंडियै ॥
तरल तुरग तुग कवच निखग संग,
चमू चतुरग भट भग कर छंडियें।
राज करौ चिरु चिरु वीरसिंह रनसिंहजीति,
जीति दीह देस मत्रनि कौं दंडियै॥ १॥

अपनी शक्तिशाली भुजाओं तथा विक्रम से नवें खण्डों को मण्डित कर दीजिये। मस्त हाथियों के झुण्डों को जिस प्रकार सिंह खंड-खंड कर देता है उसी प्रकार आप भी नवों खण्डों को खंड खंड कर दीजिये।

कवच, तलवार, चतुरंगिनी सेना को खंड खंड कर दीजिये। देशों को जीत कर तथा शत्रुओं को दंड देकर युग-युग तक वीरसिंह राज्य करो ॥३१॥

॥आनन्द उवाच—दोहा॥

राज करौ आनन्दमय वीरसिंह सबकाल।
महि केसव सकलित कुल भूतल के सुरपाल ॥३२॥

सभी समय आनंद से वीरसिंह देव राज्य करो और पृथ्वी का पालन करते रहो ॥३२॥

उधम उवाच—सवैया

तेरह मंडल मंडित है भुव मंडल की सुरराज साधन कीजै।
राज बढ़ौ धन धर्म बढ़ौ जिनही त्रिमि बैरनि की कुल छीजै ॥
मित्रनि सौं मिलि मित्रनि सौ मिलि केसव उधम कौ मन दीजै।
वीर नरपति श्रीपति सौं जब श्री रनसागर सों मथि लीजै ॥३३॥

तेरह मंडल हैं उन सभी को सुख साधनों से पूर्ण कीजिये। राज्य में धन धर्म बढ़ता रहा जिससे शत्रुओं का कुल विनष्ट होता जाए। मित्रों से मिलकर रन सागर से जयश्री को मथ लीजिये ॥३३॥

॥ विजय उवाच—दोहा ॥

राजा बिरसिंह देव चिरु राज करौ भर वाक।
कुसलव ज्यों जह जाउ तह विजय हाथ सब लाक ॥३४

हे राजा वीरसिंह ! तुम समर में उसी प्रकार विजयी होकर राज्य करो जिस प्रकार कुश और लव करत रहे ॥३४॥

॥ प्रेम उवाच सवैया ॥

देवन की भुव देवन की दिन सेवन की रुचि चित्त बढ़ौ जू।
हय की जय की जस की सिगरो जग जोति समूह मढ़ौ जू ॥
धर्म विधाननि श्री हरिदाननि वेद पुरानति जौव पढ़ौ जू।

तीरथ न्हान सों सुद्ध सयान सों युद्ध विधान सों प्रेम बढ़ौ जू ॥३४॥

देवताओं और ब्राह्मणों की सेवा में तुम्हारी रुचि दिन प्रति दिन हो। घोड़े, जम और यश को सारे संसार से जीत लो। धार्मिक विधान, हरिदान तथा वेद पुराणों आदि का पाठ होता रहे। तीर्थ में स्नान करने से चतुरता, शुद्धता और युद्ध के विधानों में तुम्हारी अनुरक्ति बढ़ती रहे ॥३४॥

॥ भोग उवाच—दोहा ॥

आखंडल ज्यों भोगिवौ भूमंडल के भोग।
बलि यौं बावन बाँधि कै दूरि करोगे रोग ॥३६॥

इसी पृथ्वी मंडल का भोग करना और रोगों को बाल और बामन की तरह बाँध देना ॥३६॥

॥ दान उवाच—कवित्त ॥

ऐसे दीजे दासनि अभय दान वीरसिंह,
जैसे नरसिंह प्रह्लाद राखि लीने हैं।
ऐसे दीजे भूषण औ भोजन भवन हरि,
जैसे दिये हरषि सुदामा को नवीने हैं॥
ऐसैं सरणागतन दीजै जो बड़ाई वटू,
जैसे रामदेव बडे विभीषन कीनै हैं।
ऐसे दीजै नागनि बसन दान केसौदास,
जैसे मेरे दीनानाथ द्रौपदी कौ दीनै है ॥३७॥

जिस प्रकार से नरसिंह ने प्रहलाद को अभय दान दिया था उसी प्रकार से आप भी अपने दासों को दीजिये। आभूषण, भोजन भवन भी उसी प्रकार दीजिये जिस प्रकार कृष्ण ने सुदामा को दिए थे। शरणगतों को उसी प्रकार बड़ाई दीजिये जिस प्रकार राम ने विभीषण को दी थी।

नग्न लोगों को उसी प्रकार वस्त्र दीजिये जिस प्रकार दीनानाथ ने द्रोपदी को दिए थे ॥३७॥

॥ उदय उवाच—दोहा ॥

राज तुम्हारे राज कौ उदय होय सब काल।
प्रभु पियूषनिधि कौ प्रगट ज्यौं प्रभाव भुव भाल ॥३८॥

तुम्हारे राज्य का सभी कालों में उदय उसी प्रकार होता रहे जिस प्रकार पियूषनिधि का प्रभाव सभी को प्रकट है ॥३८॥

॥ विवेक उवाच—कवित्त ॥

तुमकौ जु देय मन ताकौं तुम देउ धन,
चाहे तुम्हैं चित्त मैं सु चहु ओर चाहिये।
तुमकौं बड़ो कै जानै ताकहँ बड़ाई देउ,
सपनैंही देहि दुख दुखही सुदाहियैं ॥
जोई जोई जैसे भजै ताही ताहा तैसे भजो,
केसौदास सबही की मति अब गाहियै ॥
वीरसिंह जुग जुग राज करो दहि विधि,
थिर चर जीवनि की जीविका निबाहियैं ॥३६॥

जो तुम्हें अपना मन दे उसे आप धन दें। यदि तुम्हें कोई चित्तसे चाहता है तो उसी तरह तुम सब समय चाहते रहो। तुम्हें बड़ा करके जो माने तो तुम उसे बड़ाई दो और यदि कोई स्वप्न में दुख देने की इच्छा करता है तो उसे दुख दो। जो जिस प्रकार से तुम्हारे साथ व्यवहार करता है उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करो। लोगों की जीविका का निर्वाह करते हुए वीरसिंह युग-युग तक राज्य करो ॥

॥ भाग उवाच—दोहा ॥

राज तुम्हारो भाग कौ भव मैं बढ़ै प्रताप।
सब कोई वन्दन करै गंगा के सम आप ॥४०॥

तुम्हारे राज्य में प्रताप बढ़ता रहे। आपकी सभी लोग वन्दना गंगा के समान करें ॥४०॥

कवित्त

बैठे एक छत्र तर छाँह सब छिति पर,
सूरज कमल कुल हरिहित मति है।
तिक्तधाम लोचन कहत गुन केसौदास
विद्यमान लोचन ह्वै दुखियतु अति है॥
अकर कहावत धनुष धरै केसौदास,
परम कृपाल पै कृपानि कर पति है।
चिरु चिरु राज करौ राजा वीरसिंह,
तुम लोग कहैं नरदेव कैसी गति हैं॥४१॥

जिस प्रकार सूर्य सभी कमलों का समान रूप से हित करता है उसी प्रकार आप भी सिंहासन पर बैठ कर सभी का हित करें। तिक्त लोचन तुम्हारे गुणों का पान करते हैं और उन्हें विषमा नेत्रों से देखते हैं। धनुष धारण किए हुए भी अकर कहाते हैं। कृपाण के स्वामी होने पर भी कृपाल कहाते हैं। हे वीरसिंह ! तुम युग युग तक राज्य करो और तुम्हें सभी लोग नरदेव कहें ॥४२॥

चित्रहीं मैं मित्र वर्ण सकर बिलोकियत,
ब्याह ही मैं नारिनि कै गारिन कौ काज है।
ध्वज कम्प जोगिनी सी चक्र है वियोगी,
कहैं केसौदास मित्र जागी कुमुद समाज हैं॥
मेघै तो घरनि पर गजत नगर घेरि,
अपजस डर जसही कौ लोभ आज है।
राजा मधुकुरसाहि सुत राजा बीरसिंह,
चिरु चिरु राज करौ जकौ ऐसौ राज है॥४३॥

चित्रों में ही मित्र वर्ण सकर दिखाई देता है और व्याह के अवसर पर ही स्त्रियों की गालियाँ सुनाई पड़ती हैं। कम्पित ध्वज योगिनी के चक्र के समान है और वियोगी कहते हैं कि मित्र योगी कुमुद समाज है।

घरों पर गर्जना केवल मेघों की ही होती है और डर केवल अपयश का है और लोभ केवल यश का है। इस प्रकार का जिसका राज्य है वह वीरसिंह युग-युग तक राज्य करता रहे ॥४३॥

॥ कन्हरदास—उवाच ॥

अमल चरित तुम बैरिन मलिन करो,
शुद्ध कहे साधु पर दार पिय अति है।
एकाथलत पै जग जन जिय द्विपद,
बिलोकि थित जबहु पद गति ॥
भूषन बसन युत सास धरैं भूमि भार,
भू पर फिरत सुभ्रभूत भुवपति है।
रजसिह लीन्हे साथ राखौ गाय ब्राह्मननि,
चिरजीवै वीरसिंह अद्भुत गति है ॥४३॥

तुम्हारा चरित्र स्वच्छ है, मलिन शत्रुओं का तुम शुद्ध कर दो। साधु कहते हैं कि दूसरी स्त्रियों को अत्यधिक प्रिय है। सारे ही लोग एक पथ गामी हैं किन्तु द्विपद गामियों को भी अच्छी गति प्राप्त है। भूषन वस्त्रों को सास भूमि का भार धारण किए हुए पृथ्वी पर घूमती हुई सुभ्रभूत भुवपति है। रानसिंह को साथ में रखते हुए गाय और ब्राह्मणों की रक्षा करते हुए आप चिरजीवी रहें ॥४४॥

॥ छीतर मिश्र—उवाच ॥

जीवै चिर वीरसिंह जाको जस केसौदास,
भूतल है आस पास सागर कौ बास सो।
सागर कौ बड़ भाग सेष सेष नागनि को,
सेष जू मैं सुरदानि विष्णु कौ निवास सो॥
विष्णु जू मैं भूरिभाव भव को प्रभाव जैसौ,
भव जू के भाल मैं विभूति के विलास सो।

भूति माह चन्द्रमा सौं चन्द्र मैं सुधार कौअसु,
अमनि मैं सोहै चारु चन्द्र कौ प्रकास सौं ॥४५

वह वीरसिंह चिरजीवी रहे जिसका यश पृथ्वी से लेकर सागर तक फैला हुआ है। सागर का बड़ा भाग है कि उसमें शेष नाग जी वास करते हैं जिनके कारण विष्णु जी भी वहां निवास करते हैं। विष्णु जी में भूमिभाव भव के प्रभाव के समान है और भव जू के भाल में विलास के समान है। भूति में चन्द्रमा और चन्द्रमा में अमृत का अंश चन्द्रमा के प्रकाश की भाँति शोभित होता है ॥४५॥

राजा वीरसिंह नरसिंह जीति राजसिंह,
दीरघ दुमह दुख दासन विदारिये।
केसोदास मन्त्र दोष मित्र दोष ब्रह्मदोष,
वेद दोष दीन दोष देस तैं निकारियें ॥
कलह कृतघ्नी क्रूर सारे महि मण्डल के,
बलिखंड खंड खंड खंड करि डारियें।
वञ्चक कठोर ठेलि कीजै वार आठ आठ,
झुंड पाठ कराठ पाठ कारी काट मारियें ॥४६॥

हे राजा वीरसिंह! युद्ध में राजसिंह को जीत करके दुखों को मिटा दो। मन्त्र दोष, मित्र दोष ब्रह्मदोष, वेद दोष, दीन दोष को देश से निकाल दीजिये। कलह और कृतघ्नी लोगों के खंड-खंड कर दीजिये वञ्चक तथा कण्ठ पाठ कारियों को काट-काट करके मार डालिये ॥४६॥

॥ साहिबराय—उवाच ॥

बैरी गाई ब्राह्मन को काल सब काल जहाँ,
कवि कुलही के सुबरन हर काजु हैं।
गुरु सेज गामी एक वल के बिलोकियत,
मतगिनी के मतवारै कैसो साजु है॥
अरिनगरिनि प्रति करत अगम गौन,

दुर्गनिहीं केसोदास दुर्गति सी आजु है।
राजा मधुकरसाहि सुत राजा बीरसिंह,
चिरु चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है ॥४७॥

गाय और ब्राह्मणों से द्वेष रखने वालों का जहाँ सदा काल ह्रास और कवियों के कुल का मान है। गुरु तेज मार्गों ही केवल दिखाई देते हैं और मातंगिनी के मतवारे की भाँति राज है। अगम शत्रुओं की कदराओं और दुर्गों में तू जाता है। हे मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह। तुम युग-राज्य करते रहो ॥४७॥

॥ उदैमनि मिश्र—उवाच ॥

सब सुखदायक हौ सब गुन लायक हौ,
सब जगलायक हो अरिकुल बन हर।
आखर दुहू कै रीझ पाखर बनाये गज,
बाखर बनाय गजराज देय राज वर॥
चिरु चिरु जीवौ राजा बीरसिंह तुम,
केसौदास दीबौ करै आसिखा अमेय नर।
हय पर गय पर पलिग सुपीठि पर,
अरि उर ऊपे अवनीसनि के सीस पर॥४८॥

सभी को सुख देने वाले, सभी गुणों से युक्त शत्रुओं का विनाश करने वाले हो। दो चहुरों की कविता पर भी प्रसन्न होकर दान में हाथियों का दे देते हो। हाथी घोडों की पीठ पर शत्रुओं के हृदय पर, पृथ्वी के शीश पर बैठ कर तुम युग-युग तक राज्य करते रहो ॥४८॥

दुर्जन कमल कुम्हलानेई रहत मित्र,
फूलेई रहत कुवलय सुखधाम जू।
बिछुरेई रहे चक चकई ज्यों आठौ जाम,
चौंक चौंक परैं चित्त चौहू कोध त्रास जू॥
बीरसिंह राजचन्द्र तेरे सुख चन्द्रमा की,
चन्द्रिका की चारु निसिवासर प्रकास जू।

सोई कीजै साहिब समुद्र मधुसाहि सुत'
देखिबोई करै जू चकोर केसादाम जू ॥४६॥

दुर्जन कमल सदा कुम्हलाया हुआ ही रहता है और कुवलय सदा खिला रहता है। जिस प्रकार से चकवा चकवी आठौ याम बिछुड़े रहते है और बार-बार भय से चौंक पड़ते हैं। तुम्हारे चद्रवत मुख का रातदिन प्रकाश फैला रहता है। हे वीरसिंह अब कुछ ऐसा ही कीजिये जिससे चकोर चकवी को देखा करें ॥४६॥

॥ धर्म उवाच—सवैया ॥

करौ चिरु वीर नरपति बामन के पद सौं पद बाढ़ौ।
दु.ख हरौ नित दाननि के नृप विक्रम ज्यौं करि विक्रम गाढ़ो ॥
भूतल तै कहि केसव वेगि दै दारिद दुष्टन कों गहि काढ़ौ।
ऐसहि भांति सदा तुमसौं हरहो हरि सो गुरु सों पूवि बाढ़ौ ॥५०॥

तुम सदैव राज्य हो किया करो और तुम्हारा बामन की भाति पैर बढ़ता ही रहे। विक्रमादित्य की भाति विक्रम करो और दानों के दुखों को हर लो। इस पृथ्वी स पकड़ कर दुष्टों को निकाल दो। इसी प्रकार तुम सदा फलते फूलते रहो और गुरु का प्रति तुम्हारा अनुराग बढ़ता रहे ॥५०॥

दोहा

सबके लै सब आसिखनि सब सुख दै सुख पाई।
सिहासन तै उतरि प्रभु गहे धर्म के पाई ॥५१॥

सब के आशीर्वादों को लिया और सभी को सुख देकर सुखी हुई। सिंहासन से उतर कर वीरसिंह ने धर्म के पैर पकड़ लिये ॥५१॥

धर्म कह्या सुखपाई कै माँगा वर वर मित्त।
देहु मया कै तानि उर जौ प्रसन्न हौ चित्त ॥५२॥

धर्म ने कहा कि हे मित्र ! तुम वर माग लो। यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपा करके मुझे तीन वर दे ॥५२॥

बीर चरित सन्तन सुनत दुख की बंस नसाय।
मो उर वसहु बढ़ाय जों जहांगीर को आय ॥५३॥

संतो का वीर चरित्र सुनते ही दुख का वंश नष्ट हो जाय। दूसरे मेरे हृदय में वास करते रहो ॥५३॥

आसिष दै वर तीन दै दै सिष परम प्रधान।
धर्म भये सुख पाई के केसव अन्तरध्यान ॥५४॥

धर्म तीना वर आशीर्वाद और शिक्षा देकर अन्तर्धान हो गया ॥५४॥

इति श्रीमत् सकल भूमंडलाखंडलेश्वर महाराजाधिराजा राज बीरसिंह देवचरित्रे त्रिशन्त्रिदशमो प्रकाशः ॥३३॥

॥ इति समाप्त ॥